अहिंसा की बोलती मीनारें

अहिंसा
की
बोलती मीनारें

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा-२

सन्मति साहित्य रत्नमाला का १०६ वां रत्न

पुस्तक	लेखक
अहिंसा की बोलती मीनारें	गणेश मुनि, शास्त्री

प्रकाशक

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

भूमिका	आशीर्वचन
श्री यशपाल जैन	उपाध्याय अमरमुनि

विषय	पृष्ठ
अहिंसा का ऐतिहासिक पर्यालोचन	दो सौ बत्तीस

मुद्रक

श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, राजामंडी, आगरा

प्रथम संस्करण	मूल्य
मई, १९६८	चार रुपए

समर्पण

निस्सीम श्रद्धा और भक्ति के साथ

तपोमूर्त्ति, मधुर प्रवक्ता

परम श्रद्धेय गुरुदेव

श्री पुष्करमुनिजी

महाराज के

चरणों मे

सादर

—गणेश मुनि, शास्त्री

आशीर्वचन

वर्तमान युग समस्याओ का युग है। समस्याएँ भी विभिन्न! विचित्र! कही छात्र आन्दोलन! कही तोड-फोड, हडताल, कही हत्याएँ! वर्ग विग्रह, साम्प्रदायिक सघर्ष, प्रान्तीय एव जातीय सघर्ष आदि। राष्ट्रीय जीवन समस्याकुल है और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन भी। विश्व के सुदूर क्षितिज आज आशका, भय एव अविश्वास से प्रकम्पित है, प्रताडित है।

समस्याओ के समाधान खोजे गए है, खोजे जा रहे है, विश्व सरचना के इतिहास मे इन समस्याओ का समाधान जो सर्वाधिक श्रेष्ठ एव प्रभावशाली प्रमाणित हुआ है, वह है 'अहिंसा!' भारत व विदेश मे अहिंसा आज विश्वशान्ति, और विश्वबन्धुत्व का अमोघ-मत्र मान लिया गया है।

अहिंसा की व्यावहारिक पृष्ठभूमि को स्पर्श करते हुए उसके विभिन्न अगो का विशद-विवेचन श्री गणेश मुनि जी, शास्त्री ने प्रस्तुत पुस्तक मे किया है। अहिंसा के सम्बन्ध मे लेखक निष्ठावान है, और साथ ही व्यावहारिक बुद्धि से युक्त भी! अध्ययन एव अनुभव के आधार पर की गई उनकी विवेचना अहिंसा मे निष्ठा रखने वाले प्रत्येक पाठक के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

अपनी चिन्तनशील प्रज्ञा एव प्रवाहपूर्ण लेखनी के द्वारा श्री गणेश मुनि जी इसी प्रकार साहित्य समृद्धि की ओर सतत गतिमान रहेगे—यही मगल कामना!

३०-५-६८
जैन भवन, आगरा

—उपाध्याय अमर मुनि

प्रकाशकीय

'अहिंसा की बोलती मीनारें'—अहिंसा के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण विचार-चिन्तन एव ऐतिहासिक पर्यालोचन है। आज के युग मे अहिंसा के विकास की जितनी अधिक सम्भावनाएँ है, तथा प्रचार-प्रसार की जितनी अधिक आवश्यकता है, उतनी सम्भवत पिछले युग मे कभी अनुभव नही की गई होगी। आज का विश्व—युद्ध के कगार पर खडा है—जिसके एक ओर है—अशान्ति की धधकती ज्वाला, और दूसरी ओर है—सर्वनाश का भयानक दृश्य! वर्तमान परिस्थितियो मे विश्व के त्राण का कोई अमोघ साधन है तो, अहिंसा ही है। इसीलिए समस्त ससार की दृष्टि आज अहिंसा पर टिकी है। शान्ति, सहयोग, सद्भाव, पचशील अणुशक्ति का शान्ति व विकाश कार्यो मे प्रयोग—ये सब अहिंसा के ही विभिन्न रूप हैं। मानव जाति के कल्याण के लिए अहिंसा ही अमृत-जडी है।

प्रस्तुत पुस्तक मे विद्वान् विचारक श्री गणेश मुनि जी ने अहिंसा के विभिन्न पहलुओ पर काफी विस्तार के साथ विश्लेषण किया है, और अहिंसा-अपरिग्रह तथा अनेकान्त को जीवन मे उतारने के लिए बडी तीव्र प्रेरणा के साथ प्रतिपादन किया है।

श्री गणेश मुनि जी, श्रमण सघ के उपप्रवर्तक श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के सुयोग्य शिष्य है। आपकी 'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' नामक पुस्तक कुछ समय पूर्व आत्माराम एण्ड सन्स, देहली से भी प्रकाशित हो चुकी है। मुनि श्री लेखक भी है, कवि भी हैं, प्रवक्ता भी है। स्थानकवासी समाज के एक होनहार मेधावी सन्त है। हमे उनसे बहुत आशाएँ है।

हमारे आग्रह पर पुस्तक की भूमिका लिखने का कार्य सुख्यात गाधीवादी विचारक व लेखक श्री यशपाल जी जैन ने स्वीकार किया तथा समय पर भूमिका लिखकर भेज सके, एतदर्थ हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञ है। साथ ही आदरणीय आचार्य पुष्पराज जी का आभार मानते है जिन्होने स्नेहपूर्वक सहयोग नही किया होता तो सम्भवत. श्री यशपाल जी की भूमिका इस पुस्तक मे नही जुड पाती।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक अहिंसा के सम्बन्ध मे पाठको को अनेक प्रकार की रुचिकर व जीवन-निर्माणकारी विचार सामग्री प्रस्तुत करेगी, व अधिकाधिक लोकोपयोगी सिद्ध होगी।

—मत्री

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

भूमिका

कई साल पहले की बात है। हमारे देश मे विश्वशाति परिषद् हुई थी, जिसमे देश-विदश के बहुत-से शातिवादियो तथा अहिसा-प्रेमियो ने भाग लिया था। यह परिषद् पहले पन्द्रह दिन शाति-निकेतन मे हुई थी, बाद मे उतने ही दिन सेवाग्राम मे। परिषद् मे शाति से सबधित अनेक विषयो पर तो विचार-विमर्श हुआ ही, लेकिन उससे भी बडा लाभ यह हुआ कि इतने देशो के लोग एक परिवार की भाति साथ रहे और उनके बीच घनिष्ठ सपर्क स्थापित हुए।

एक दिन सेवाग्राम मे एक अमरीकी सज्जन से बात होने लगी। वह हार्वर्ड विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। मैंने उनसे पूछा, 'कहिये, यहा आने का आपका मुख्य उद्देश्य क्या है?'

स्पष्ट था कि वह परिषद मे शामिल होने के लिए यहा आये थे और यह उद्देश्य अपने आप मे बड़ा महत्त्वपूर्ण था, लेकिन मैं तो यह जानने का इच्छुक था, कि भारत के विषय मे उनकी क्या भावना है।

उन्होने कहा, "बात यह है कि हमने आपकी अहिसा के बारे मे बहुत-कुछ सुन रखा है। हमे यह भी पता है कि महात्मा गाधी ने अहिसा के द्वारा ही भारत को आजाद कराया था। हम यहा यह देखने के लिये आये है कि आप लोग अपनी दैनिक समस्याओ को अहिसात्मक ढग से कैसे सुलझाते हैं।"

उन सज्जन ने जो कहा, वह स्वाभाविक था। भयकर-से-भयंकर आणविक अस्त्रो का निर्माण और कुछ अशो मे उनका प्रयोग करके दुनिया ने देख लिया कि छोटी-बडी किसी भी समस्या का स्थायी समाधान हिसा से कदापि सभव नही। लेकिन अहिसा का वास्तविक स्वरूप क्या है और वह व्यवहार मे किस प्रकार कारगर हो सकती है, यह समझना शेष है।

अपने देश मे और बाहर, मुझे बहुत-से ऐसे व्यक्ति मिले जिनकी अहिसा मे गहरी दिलचस्पी है और वे ऐसा साहित्य चाहते है, जो अहिसा के तात्विक पक्ष की तो जानकारी दे ही, साथ ही उसमे अहिसा के व्यावहारिक पहलू पर भी प्रकाश डाला गया हो।

अहिसा के विषय मे हमारे देश मे बहुत-सा साहित्य उपलब्ध है, किन्तु अधिकाश पुस्तके इतनी दुरूह है कि जिनकी धार्मिक अथवा आध्यात्मिक पृष्ठभूमि नही है, वे उन्हे समझ नही सकते। उन पुस्तको मे प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली तो ग्रीक-लेटिन जैसी कठिन होती है। दूसरी बात यह है कि वे अहिसा का विवेचन वर्तमान समस्याओ के सदर्भ मे चाहते है, जो उन्हे इन पुस्तको मे प्राय नही मिलता।

अपने बहुत-से लेखो तथा भाषणो मे मैंने इस बात पर बराबर जोर दिया है कि हमे सरल सुबोध भाषा मे कुछ ऐसी पुस्तके तैयार करनी चाहिए, जो सामान्य बुद्धि और सीमित ज्ञान रखने वाले व्यक्तियो की भी समझ मे आ जाए और वे उन्हे पढकर जान सके कि अहिसा की शक्ति कितनी तेजस्वी है और उस पर आचरण करके किस प्रकार राष्ट्रीय एव अतर्राष्ट्रीय जगत मे स्थायी शाति और सुख स्थापित किया जा सकता है।

इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। इसके लेखक जैन मुनि हैं और उन्होने अहिसा तथा उससे सबधित सभी विषयो का सूक्ष्म अध्ययन एव चितन किया है, लेकिन इस पुस्तक मे उन्होने अहिसा या और किसी विषय का शास्त्रीय विवेचन नही किया। सात खण्डो मे उन्होने अपनी बात इस ढग से कही है कि सामान्य पाठक भी उसे हृदयगम कर सकता है। पहले खण्ड मे उन्होने अहिसा के आदर्श को समझाया है, दूसरे मे बताया

है कि मानव-जाति एक है, तीसरे मे इस बात पर प्रकाश डाला है कि अहिंसा की साधना किस प्रकार की जा सकती है। इस खण्ड के अन्तर्गत उन्होने अपरिग्रह की विस्तार से चर्चा की है और दिखाया है कि विषमता की जननी सग्रहवृत्ति है। मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह 'सादा जीवन, उच्च विचार' के आदर्श को सामने रखकर जीवन यापन करे।

बाद के चार अध्यायो मे लेखक ने अहिंसा के बुनियादी सिद्धातो का बडा ही सरल भाषा मे विवेचन करते हुए उन चीजो को लिया है, जिनका सबध हम सबके जीवन के साथ आता है। उदाहरण के लिए आज मानव-समाज के सामने एक प्रश्न है कि वह शाकाहारी क्यो और किस प्रकार रहे। इस प्रश्न का समुचित उत्तर पाचवे खण्ड मे मिल जाता है।

इसी प्रकार एक प्रश्न है कि अहिंसा और विज्ञान का किस प्रकार समन्वय हो। छठे अध्याय मे लेखक ने रेडियो-सक्रियता, आणविक शक्ति, अणु-परीक्षण आदि का उल्लेख करते हुए प्रतिपादित किया है कि विज्ञान पर अहिंसा की किस प्रकार विजय होती जा रही है।

अतिम खण्ड मे अहिंसा एव विश्वशाति के ज्वलत प्रश्न पर विचार किया गया है और यह बताते हुए कि इस दिशा मे भारत ने क्या योग दिया है, यह विश्वास प्रकट किया गया है कि अहिंसा की आधार-शिला पर ही विश्वशाति का भवन खडा रह सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक सस्कृत, प्राकृत, हिंदी आदि भाषाओ के ज्ञाता हैं और अपनी अध्ययनशील वृत्ति के कारण उन्होने इन भाषाओ के साहित्य को बारीकी से पढा है। अपनी बात को समझाने के लिए उन्होने अन्य धर्मावलम्बियों के मतव्य देने मे सकोच नही किया।

सभव है, विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले व्यक्ति लेखक की कतिपय मान्यताओ से सहमत न हो, लेकिन कुल मिला कर पुस्तक अहिंसा की महिमा और उसके व्यावहारिक पक्ष पर सुपाठ्य सामग्री प्रदान करती है।

आज संसार मे हिंसा का बोलबाला दिखाई देता है। अमरीका, रूस आदि देशो मे अधिकाधिक आणविक शक्ति उपार्जित करके अपने प्रभुत्व के विस्तार की होड लगी है, लेकिन यह असामान्य स्थिति है। कोई भी राष्ट्र हिंसात्मक बल से दूसरे को अधिक समय तक दबाकर नही रख सकता। विज्ञान ने दुनिया को इतना छोटा बना दिया है कि यदि आज कही कुछ होता है तो उसकी प्रतिक्रिया अन्य स्थानो पर तत्काल हो जाती है। स्वाधीनता की चेतना आज सभी राष्ट्रो मे व्याप्त है।

ऐसी दशा मे आज भारत का ही नही, अन्य देशो का भी चिंतन चल रहा है कि अहिंसा के मार्ग का किस प्रकार अवलम्बन करे, जिससे मानव-जाति को व्यथित करने वाली अशाति दूर हो और छोटे-बडे सभी राष्ट्र मिल कर एक-दूसरे के विकास मे सहायक हो।

इस चिन्तन को प्रस्तुत पुस्तक प्रोत्साहित करती है। मैं इसके लिए लेखक को हार्दिक बधाई देता हू और आशा करता हू कि इस रचना का सभी क्षेत्रो मे स्वागत होगा।

७/८ दरियागज, दिल्ली
२० मई १९६८

यशपाल जैन

मीनारों की भाषा

•

अहिंसा के सम्वन्ध मे अव तक वहुत कुछ लिखा जा चुका है वर्तमान मे वहुत लिखा जा रहा है, और आने वाला भविष्य, नवीन स्थिति परिस्थितियां उस सम्वन्व मे अविक लिखने को प्रेरित करती रहेंगी।

'अहिंसा' एक तीन वर्ण का छोटा-सा शब्द है, किन्तु यह विष्णु के तीन चरण से भी अविक विराट् व व्यापक है। मानव जाति ही नही, किन्तु समस्त चर-अचर प्राणि जगत इन तीन चरणो में समाया हुआ है। जहाँ अहिंसा है, वहाँ जीवन है, जहाँ अहिंसा का अभाव है, वहाँ जीवन का अभाव है। जिस दिन इस सृष्टि पर जीव ने जन्म लिया था, उसी दिन अहिंसा का भी जन्म हुआ था। और जव तक इस सृष्टि पर अहिंसा नाम का तत्त्व रहेगा, जीव का अस्तित्त्व भी सुरक्षित रहेगा। जैन दर्शन के अनुसार सृष्टि पर प्राणी का अवतरण अनादि है, इसलिए वह अहिंसा को भी अनादि मानता है। जीवन और अहिंसा का अनादि सम्वन्ध है। अभिप्राय यह है कि जहां अहिंसा है, वहा जीवन है और जहा जीवन है वहा अहिंसा है—यह व्याप्ति नित्य-सत्य है।

अहिंसा एक विराट् शक्ति है। जीवन के विविव पक्षो मे इसके विविव प्रयोग मानव अनादिकाल से करता रहा है। जिन परिस्थितियो मे जिस प्रकार के समावान की आवश्यकता हुई—अहिंसा ने वह समाधान प्रस्तुत किया है। जीवन की सरल से सरल एव कठिन से कठिन हर परिस्थिति मे अहिंसा ने मनुष्य का साथ दिया है, उसके अस्तित्त्व की रक्षा की है, उसके जीवन की समस्या को सुलझाया है, और उसके कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है।

जिस युग मे एक कवीला दूसरे कवीलो से लडता था। एक जाति-दूसरी जाति के साथ सघर्ष, युद्ध और विग्रह खड़े करती थी, आर्य-अनार्य

परस्पर एक दूसरे के खून से नहाते थे, और विजयी जाति पराजित जाति को दास बनाकर उस पर शासन करती थी, उस समय मे अहिंसा ने मैत्री का मधुर सन्देश दिया। उसका स्वर मुखरित हुआ—'**मित्रस्य चक्षुषा समीक्षमहे**'—हम परस्पर एक दूसरे को मित्र की आँखो से देखे। पराजित विजेता को अपना मित्र माने और विजेता भी पराजित को अपना स्नेह, सद्भाव अर्पण करे। घृणा और द्वेष से दूर रहे मा विद्विषावहै—कोई किसी से द्वेष नही करे। ये उस युग के स्वर हैं जब कि मानव, सभ्यता की प्रथम देहली पर चरण घर रहा था। वेदो मे अहिंसा का यही मैत्री और अभय-रूप व्यक्त हुआ है। उस युग मे मानव को प्रगति और विकास के लिए सबसे पहली आवश्यकता थी मनुष्य-मनुष्य परस्पर एक दूसरे से लडें नही, मैत्री पूर्वक रहे, और जीवन के भौतिक एव आध्यात्मिक विकास का अवसर प्राप्त करें। मानव सभ्यता के आदि युग मे अहिंसा—मैत्री के रूप मे विकसित हुई थी। और मनुष्य जाति को मैत्री के एक सूत्र मे बाघने का प्रयोग चल रहा था। ऋग्वेद कालीन सभ्यता मे मैत्री भावना की यह गू ज स्पष्ट सुनाई देती है।

युग बदला, परिस्थितियाँ बदली। मानव जाति सगठित होकर विकास के पथ पर आगे बढने लगी। परस्पर एक दूसरे से लडने वाले मनुष्य एक ही स्थान पर नगर का निर्माण करके साथ-साथ रहने लगे। पारस्परिक सहवास से मनुष्य-मनुष्य के प्रति उतना क्रूर नही रहा, किन्तु उसकी यह क्रूरता धीरे-धीरे पशु जाति के प्रति प्रवाहित होती गई। उसकी मनोग्रन्थियो का रूप बदल गया। कुछ स्वार्थीतत्त्व भी इस रूपमे सहयोगी बने और देवी-देवता, धर्म-स्वर्ग और मोक्ष के नाम पर पशुयज्ञ, पशु-बलि का एक प्रवाह-सा उमड पडा। मनुष्य के अत करण मे छिपी हुई क्रूरता, द्वेष, घृणा एव सघर्ष की ग्रथिया मूक पशु जाति एव उस मानवजाति के प्रति जोकि बुद्धि, बल एव ऐश्वर्य मे उससे हीन थी, क्रूरता, घृणा और द्वेष के रूप मे बदल गई। मूल रूप मे मानव-मानव समान होते हुए भी मानव को उसने दास बनाया, उसके छोटे से अपराध पर क्रूरतम दड की व्यवस्था की और मास-लोलुप होकर धर्म के नाम पर पशुवध तथा प्राणि हिंसा को उचित ठहराया, उसे शास्त्राज्ञा का रूप भी दिया। इस प्रकार आभिजात्यता के आवरण मे घृणा, एव धर्म व देव पूजा के आवरण मे क्रूरता पलने लगी। जो हिसा विद्वेष के रूप मे प्रबल हो रही थी वह इस युग मे घृणा एव क्रूरता का मुखौटा लगाकर चलने लगी।

हिंसा का एक दूसरा रूप भी समाज में धीरे-धीरे प्रबल हो रहा था—वह था बौद्धिक-विग्रह। आर्थिक असमानता का रोग प्रारम्भ से ही समाज

के शरीर को गलाता जा रहा था, अब बौद्धिक असमानता भी उसी प्रकार एक रोग के रूप मे समाज के स्वास्थ्य को निगलने लगी।

एक ओर श्रीमतो के महलो मे अपार वैभव जमा पडा था, सुख-सुविधाओ के अगणित साधन उनके पास थे और रात दिन भोग विलास मे डूबे रहते थे, तो दूसरी ओर समाज में गरीबी और दरिद्रता फैल रही थी। जीवन-यापन के साधनो के अभाव मे मनुष्य अपने को बेच रहा था—अपने बच्चो को और अपनी पत्नी तक को बेच डालता था। और एक पशु से भी गया-गुजरा जीवन बिताने को मजबूर हो रहा था। जैन एव बौद्ध आगमो मे उल्लिखित घटनाएँ उस युग की मानवजाति व सभ्यता के इस कृष्ण पक्ष को हमारे समक्ष आज भी खोलकर रख देती है। जब एक-एक श्रीमत गृहस्थ पशुओ की तरह सैकडो दास-दासियो को खरीद कर अपने अधीन रखता था। एक-एक नगर-गणिका के अधीन हजारो सुन्दरियाँ रहती थी, और वे चन्द चादी के टुकडो पर अपना, रूप, यौवन और सुन्दर देह समाज के विलासी श्रीमतो को लुटाती थी। किसी एक नगर मे हजारो गणिकाओ का होना, और किसी एक श्रीमत के अधीन सैकडो दास-दासियो का रहना समाज की श्रेष्ठता और समृद्धि का चित्रण नही, किन्तु उसकी आर्थिक विषमता, विवशता, एव दमतोड दरिद्रता का ही चित्रण हो सकता है। हाँ तो इस आर्थिक वैषम्य से मानव समाज को मुक्त करने के लिए अहिंसा का 'अपरिग्रह के रूप मे प्रयोग हुआ। जो अहिंसा मैत्री व अभय के रूप मे विकसित हो रही थी, युग की आवश्यकताओ ने उसमे 'अपरिग्रह' का एक नया रूप भी जोड दिया।

आज से तीन सहस्राब्दी पूर्व के मानव समाज का इतिहास देखने से ज्ञात होता है उस समय समाज मे चार प्रमुख रोग थे—क्रूरता, घृणा, गरीबी एव बौद्धिक-विग्रह।

समर्थ एव धर्माधिकारी वर्ग क्रूर होरहा था, आभिजात्य वर्ग निम्न वर्ग के प्रति घृणा एव द्वेष की भावनाओ से ग्रस्त था। श्रीमत समाज अपने भोग विलास मे डूबकर समाज की गरीबी का अनुचित लाभ उठाता हुआ मनुष्य को पशु की तरह उत्पीडित कर रहा था और समाज का बुद्धिमान वर्ग अपनी-अपनी बात को सिद्ध करने के लिये परस्पर बौद्धिक विग्रह के अखाडे जमाए बैठा था। वह अल्प बुद्धि वालो को पशु की तरह हाक रहा था।

इस प्रकार हिंसा के ये चार रूप मानव समाज के लिए चार महारोग थे। इन चारो रोगो को दूर करने के लिए युग के महान चिन्तको ने चार उपचार

प्रस्तुत किए—क्रूरता एव पशु हिंसा को मिटाने के लिए करुणा और दया का का प्रचार हुआ। जातीय घृणा एव द्वेष के उच्छेद के लिए समानता की भावना, समता—आत्मौपम्य दृष्टि का विकास किया गया। आर्थिक विषमता और तज्जनित अनर्थों को रोकने के लिए अपरिग्रह या इच्छापरिमाण का सिद्धान्त सामने आया, और बौद्धिक विग्रह एव वैचारिक दुष्चक्रो को समाप्त करने के लिए अनेकान्तवाद का सुन्दर प्रयोग हुआ।

गीता की भाषा मे कहे तो उस युग मे अहिंसा भगवती का इन चार रूपो मे अवतार हुआ और समाज के दु ख, दारिद्र्य, विग्रह एव सघर्षों के उपशमन का एक नया युग प्रारम्भ हुआ।

भगवान महावीर और तथागत बुद्ध इस नवयुग के सूत्रधार थे। महावीर का प्रत्येक उपदेश समता, (सामायिक) त्याग (अपरिग्रह) और सम्यग् दृष्टि (अनेकात) की भावना से ओत-प्रोत रहता था। तो तथागत बुद्ध भी करुणा के मसीहा बनकर जनता के कष्टो और दु खो का मैत्री और स्नेह की भावना से उपचार करने मे सलग्न हो जनपद मे पादचारिका करने लगे।

यह निश्चित मत है कि—जब-जब समाज मे हिंसा का प्राबल्य होता है, तब तब अहिंसा के विकास का अधिक-अधिक अवसर होता है। उसके विकास की अधिक सभावनाएँ एव अत्यधिक आवश्यकता भी रहती है। ढाइ हजार वर्ष पूर्व का भारत जब हिंसा की विविध रूपो मे प्रस्फुटित व्याधियो से सत्रस्त था, धार्मिक, बौद्धिक, तथा सामाजिक कुण्ठाओ से जकडा हुआ था, तब अहिंसा का शखनाद करने वाले दो देवता भारत भूमि पर अवतरित हुए थे। उनके अमृत तुल्य उपदेशो से मानव समाज निश्चित ही शाति का अनुभव करने लगा था। वह क्रूरता से करुणा की ओर, विषमता से समता की ओर सग्रह एव आर्थिक वैषम्य से अपरिग्रह की ओर तथा बौद्धिकविग्रह से वैचारिक समता, अनेकान्त की ओर बढा और उस मार्ग पर चलकर जीवन का आध्यात्मिक एव भौतिक विकास करता रहा।

किसी भयकर बिमारी से एक बार मुक्त होने के बाद यदि खान-पान का सतुलन न रखा जाय, आहार-व्यवहार का विवेक न रखा जाय तो वह बिमारी पुन उसी रूप मे, बल्कि उससे भी भयकर रूप मे और कुछ भिन्न रूपो मे भी उभर कर सामने आती है और शरीर के स्वास्थ्य को चौपट कर

डालती है । ऐसा ही कुछ मध्यकाल मे हुआ । महावीर और बुद्ध ने समाज की जिन बीमारियो को मिटाने के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था, उनके कुछ समय पश्चात् ही वे बीमारियाँ समाज के शरीर मे पुन भयकर रूप मे फूट पडी । जिस हिंसा महारोग का निदान करके विविध रूपो मे उपचार किया गया था, कुछ समय पश्चात् वह रोग पुन भडक उठा । समाज मे हिंसा का पुन प्राबल्य हुआ, धार्मिक व साम्प्रदायिक उन्माद विग्रह जातीय-विद्वेष, पशु, दास, एव नारी पर मनमाने अत्याचार (सती प्रथा) तथा शोषण और अर्थ सग्रह का दुष्चक्र—हिंसा के ये विविध रूप मानव जाति को फिर आतकित करने लगे और वे आज तक की स्थिति मे करते आ रहे हैं । यह ठीक है कि कुछ उपचार भी हुए, पर जिस मात्रा मे उपचार होता रहा, रोग उस मात्रा से अधिक प्रबल और गहरा था इसलिए रोग मिट नही पाया, बल्कि कहना चाहिए कि अन्य कई रूपो मे फूटता रहा ।

वर्तमान का मानव समाज हिंसा के हजारो-हजार आतककारी रूपो मे ग्रस्त हैं, और त्राहि-त्राहि कर रहा है ।

आज का मानव पहले से अधिक सस्कृत और विकसित हो रहा है, वैज्ञानिक उपलब्धियो के बल पर वह पुराने जमाने के देवता व इन्द्र की तरह आज जो चाहे सो कर सकता है । प्रकृति के अनन्त रहस्यो की खोज मे वह आज अणु-शक्ति जैसे महान रहस्य को प्राप्त कर चुका है । इतना सब कुछ होने पर भी वह आज पहले से अधिक अशात है, उत्पीडित है, भयग्रस्त है मानसिक कुण्ठाओ से जकडा हुआ है । आणविकयुद्धो की विभीषिका उसके शिर पर खडी है, पता नही, कब एक आणविक विस्फोट हो और मानव जाति हाहाकार करती हुई जलकर ढेर हो जाए ।

विज्ञान ने ससार को छोटा बना दिया है, किन्तु उसने मनुष्यो के हृदयो को और भी छोटा बना दिया है । आज मनुष्य के हृदय मे प्रेम, करुणा स्नेह एव बन्धुता के भाव समाप्त हो रहे है, जैसे इन्हे ठहरने के लिए उसके हृदय मे कोई स्थान भी नही है ।

वर्तमान युग मे मनुष्य के समक्ष अनेक समस्याएँ हैं, कहना चाहिए मकडी के जाल की तरह उसने ही समस्याओ को जन्म दिया है और स्वय ही उनमे उलझ गया है । कही आर्थिक विषमताओ का दुष्चक्र चल रहा है, शोषण और उत्पीड़न से मानव जाति सत्रस्त हो रही है, तो कही वैचारिक

सघर्ष के कारण एक राष्ट्र, दूसरे राष्ट्र के प्रति शत्रु भावना रखे हुए उसे आतकित किए रहना चाहता है। वर्ग भेद, वर्ण भेद, प्रान्तीयता, जातीयता, धार्मिक कलह, आर्थिक शोषण, और साथ ही भोग विलास की उद्दाम अतृप्त आकाक्षाएँ—मनुष्य को आज अशात और बेचैन किए हुए हैं।

वर्तमान मे मानव हत्या से मनुष्य डरने लगा है। वह एक बहुत बडा अपराध मान लिया गया है। मानव का शोषण भी वर्तमान समाज-व्यवस्था मे निन्दनीय है। यह अहिंसा की भावना का एक हद तक विकास कहा जा सकता है। किन्तु हम इसे अहिंसा का विकास नही मान सकते, चूँकि वही मानव जो मानव हिंसा को अपराध मानता है, पशु हिंसा के लिए आज भयकर-तम साधन जुटा रहा है। मासाहार से वह अपनी लोलुप वृत्तियो को भी तृप्त करना चाहता है और उसको आर्थिक साधन जुटाने का एक मार्ग भी समझ रहा है। मनुष्य की बुद्धि की यह दुहरी विडम्बना है। मूक पशुओ के प्रिय-प्राणो के साथ खिलवाड है और है जीवन का चारित्रिक व आध्यात्मिक पतन!

मासाहार पुराने जमाने मे भी था, पर वह आज की तरह आम भोजन नही था, कुछ विशेष वर्गों मे और वह भी विशेष अवसरो पर ही होता था। किन्तु, आज तो यह प्रवृत्ति सुरसा के मुह की तरह विकराल रूप लिए जा रही है। मासाहार से देश की खाद्य समस्या को सुलझाने वाले, और पशुहत्या पशुचर्म, पशुअस्थि आदि से देश की गरीवी मिटाने वालो की नाजुक बुद्धि पर मुझे तरस आ रहा है। वस्तुत वे एक भयकर भूल कर रहे हैं, और ऐसी भूल, जो उन्हे ही नही, किन्तु समाज व राष्ट्र को भी एक दिन रसातल में पहुँचा देगी। अणु-आयुधो से विश्व शान्ति की कामना करना जैसी भयकर बेवकूफी है, वैसी ही वेबकूफी मासाहार के सम्बन्ध मे वर्तमान मे भारतीय नेताओ के मस्तिष्क मे छाई हुई हैं। भारतीय सस्कृति का मूल शाकाहार है, शाकाहारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने का अर्थ है—कृषि, पशुपालन, गो-रक्षण आदि लाभकारी एव सस्कृति सरक्षक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन। वस्तुत कृषि, एव पशुपालन से ही भारत की खाद्य समस्या हल हो सकती है, और कृषक तथा श्रमिक वर्ग की गरीवी दूर हो सकती है। भूख और गरीबी दूर होगी तो बहुत से वर्ग-सघर्ष शोषण, एव उत्पीडन के स्रोत स्वत ही समाप्त हो जायेगे और अहिंसा के विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

वर्तमान की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति काफी तनाव पूर्ण तथा उलझी हुई है। विश्व के राजनीतिक क्षितिज पर नये-नये स्वतन्त्र राष्ट्र चमक रहे हैं, और

साम्राज्यवादी शक्तियो का प्रभुत्व अस्त हो रहा है। किन्तु इसी का दूसरा पक्ष बहुत ही अधकार पूर्ण है और वह है राष्ट्रो में सामरिक शक्ति की प्रतिस्पर्धा। बडे राष्ट्र छोटे राष्ट्रो को, कोरिया, वियतनाम, इजरायल जैसे क्षेत्रो को अपना अखाडा बनाकर अपनी शक्ति-प्रदर्शन करके विश्व को आतकित रखने का प्रयत्न कर रहे है। विश्व शाति के लिए ये सब खतरे हैं। सूत के कच्चे धागे की तरह विश्व शाति का धागा आज अधर मे लटक रहा है, पता नही किन अविवेकी हाथो के एक झटके से टूट जाये और समूचा विश्व युद्ध की लपटो मे झुलस पडे। विश्व के राजनीतिक तनाव को कम करने के लिए भारत ने सह-अस्तित्व, नि शस्त्रीकरण, आदि के सिद्धान्तो को पचशील के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वर्तमान विश्व की भयाकुल तथा तनावपूर्ण स्थितियो मे अहिसा का यह नया प्रयोग है—नये नाम से, नई शैली से।

अहिसा के इस नूतन प्रयोग का श्रेय महात्मा गाधी और विश्व शाति के अमरपुजारी स्व० नेहरू को है। गाधी जी ने जिस चितन पूर्ण एव दृढ-आस्था युक्त शैली से अहिसा के प्रयोगो से मानव समाज की समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न किया—वह उन्हे अहिसा के अमर देवता के रूप मे ससार के समक्ष प्रस्तुत करने वाला था।

स्व० श्री नेहरू ने गाधी जी के दर्शन एव चिन्तन के अनुसार अहिसा को विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियो को सुलझाने वाले एक अमोघ साधन के रूप मे प्रयोग किया है। वह पचशील का सिद्धान्त आज विश्व शाति का प्रतीक है, विकासशील अहिसात्मक चितन का प्रतीक है।

विश्व जनमत ने इसका आदर किया है, और आशा भरी निगाह से देखा है, किन्तु जब तक विश्व के मूर्धन्य [illegible] राष्ट्र इस सिद्धात पर निष्ठा पूर्वक आचरण नही करत, [illegible] श्व शान्ति के नारो से और नि शस्त्रीकरण सम्बन्धी शिखर-वार्ताओ स कुछ भी होने वाला नही है।

प्रस्तुत पुस्तक मे अहिसा से सम्बन्धित इन्ही सब समस्याओ पर ऐतिहासिक सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दृष्टि से समग्र विचार करने का प्रयत्न किया है।

करुणा, अनेकान्त, अपरिग्रह, शोषण मुक्ति, सहअस्तित्व—नि शस्त्रीकरण, शाकाहार एव विश्व-शाति ये सब अहिसा की स्वतन्त्र मीनारे हैं, जिनकी असीम ऊचाई पर भारत का चिन्तन सदा से ऊर्ध्वमुखी रहा है। आज इन मीनारो के कण-कण से एक पुकार ध्वनित हो रही है, और जीवन के कोलाहल

मे बहरे होकर चलते हुए इन्सान को आगाह कर रही है, दिशा-दर्शन कर रही है। आवश्यकता है वह शाति पूर्वक इन मीनारो से अभिव्यक्त होने वाली ध्वनियो को सुने, उनकी भाषा को समझे, चिन्तन करे, और जीवन व जगत की समस्याओ को सुलझाने मे सम्पूर्ण मनोबल के साथ जुट जाये।

मुझे विश्वास है कि विश्व शान्ति के इच्छुक सहृदय मीनारो की भापा को समझने का प्रयत्न करेंगे, अहिंसा की इस विकास कहानी को नये युग के नये अध्याय से जोडकर पढने का कष्ट करेंगे तो उन्हे अवश्य ही जीवन मे शाति, प्रीति और विश्वास का अमृत प्राप्त हो सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन मे जिन अज्ञात सुहृद एव सहृदयो का आत्मीय स्नेह एव सहयोग प्राप्त हुआ है उनके प्रति औपचारिक आभार प्रदर्शन करके उनके असीम स्नेह को सीमाओ मे बाँधना नही चाहता, किन्तु फिर भी उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मन मस्तिष्क हलका भी नही हो पा रहा है।

सर्वप्रथम मैं श्रद्धास्पद गुरुवर श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करूगा, जिनकी प्रेरणा और दिशादर्शन ही मेरे साहित्यिक जीवन का सम्बल रहा है। मेरे परम स्नेही साथी श्री देवेन्द्रमुनि जी महाराज का सौजन्य एव स्नेह तो मेरे लेखन कार्य का परम सहयोगी रहा है, उन्हें विस्मृत किया ही नही जा सकता। सिद्धान्त प्रभाकर श्री हीरामुनि जी महाराज, श्री जिनेन्द्र मुनि जी, श्री रमेश मुनि जी, श्री राजेन्द्र मुनि जी और श्री पुनीत मुनि जी आदि मुनि मण्डल का स्नेह एव सेवा पूर्ण व्यवहार मेरे लेखन कार्य मे अत्यधिक सहयोगी रहा है।

परम श्रद्धेय कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज का मधुरस्नेह मुझे बरबस उनके प्रति कृतज्ञतावश विनत कर देता है। उनके सहज प्रेरक सौमनस्य का ही फल है कि पुस्तक सन्मति ज्ञान पीठ जैसे सुविश्रुत साहित्यिक प्रतिष्ठान से प्रकाशित हो रही है।

जैन जगत के यशस्वी लेखक पण्डित शोभाचन्द्र जी भारिल्ल एव सुयोग्य सम्पादक श्रीचन्द्र जी सुराना 'सरस' के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करना चाहूँगा, जिन्होंने पुस्तक की पाण्डुलिपि को ध्यान पूर्वक अवलोकन किया व आवश्यक सशोधन, परिमार्जन भी।

अन्त मे मै भूमिका लेखक श्री यशपाल जी जैन का भी हार्दिक कृतज्ञ हूँ। जिन्होने अपने व्यस्त समय मे से भी अवकाश निकाल कर पुस्तक पर भूमिका लिखने का मेरा आग्रह मान्य किया है।

सभी स्नेही साथियो के आभार के साथ ही अपने प्रिय पाठको से विश्वास भी करता हू कि यह पुस्तक उन्हे अपनी सास्कृतिक सुरुचि के अनुरूप ही पाठ्य सामग्री प्रस्तुत कर आत्म सतोष देगी।

श्री हरखचन्द कोठारी हाल
राजहस
वालकेश्वर—वम्वई

—गणेश मुनि, शास्त्री

मीनारों का आरोहण-क्रम

•

एक : अहिंसा : एक परिशीलन

* दो संस्कृतियाँ

भारतीय संस्कृति

* अहिंसा का आदर्श

हिंसा और उसके प्रकार

भाव हिंसा निदर्शन

चौभंगी का विधान

* अहिंसा का मधुर संगीत

समत्वयोग की साधना अहिंसा

समत्वयोग की प्रेरणा

आत्मौपम्य दृष्टि

जीओ और जीने दो

* अहिंसा की विराट् दृष्टि

अहिंसा बाधक नहीं, साधक है !

अहिंसा वीरों का धर्म है

एक : अहिंसा : एक परिशीलन

* दो संस्कृतियाँ
  भारतीय संस्कृति

* अहिंसा का आदर्श
  हिंसा और उसके प्रकार
  भाव हिंसा निदर्शन
  चौभंगी का विधान

* अहिंसा का मधुर संगीत
  समत्वयोग की साधना अहिंसा
  समत्वयोग की प्रेरणा
  आत्मौपम्य दृष्टि
  जीओ और जीने दो

* अहिंसा की विराट् दृष्टि
  अहिंसा बाधक नहीं, साधक है।
  अहिंसा वीरों का धर्म है

१ |

दो संस्कृतियाँ

•

*इस अनत, असीम विराट् विश्व के मूल मे दो मौलिक पदार्थ है जो अपना शाश्वत एव स्वतत्र अस्तित्व रखते है, और एक-दूसरे के रूप मे परिणत नही होते। उनमे एक चेतन है, जिसे-आत्मा कहते है, और दूसरा है अचेतन–जड। पूर्वीय देशो के चिन्तन का, जिनमे भारतवर्ष प्रधान है, केन्द्रबिन्दु आत्मा रहा है। भारतीय मनीषियो ने आत्मा के चिन्तन, मनन और निदिध्यासन पर अत्यधिक बल दिया है। भारतीय दर्शनो का मुख्य लक्ष्य आत्मा की खोज करना रहा है। इसी कारण भारतीय आचार तथा नीतिशास्त्र ने भी ऐसी ही आचारप्रणालिका निर्धारित की है, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे आत्म-शुद्धि या आत्म-विकास मे सहायक हो, किन्तु पाश्चात्य विचारको मे आत्म-विषयक वैसी स्फूर्तजिज्ञासा दृष्टिगोचर नही होती। वहाँ भौतिक तत्व के विचार और विश्लेषण को इतनी मुख्यता दी गई है कि आत्मतत्व उपेक्षणीय बन गया है। इसी लक्ष्यभेद के कारण पूर्व और पश्चिम की सस्कृति दो भिन्न-भिन्न धाराओ मे बहती हुई प्रतीत होती है। विश्व के रगमच पर प्रधान रूप से दो सस्कृतियाँ चमक रही हैं। प्रथम पौर्वात्य और दूसरी पाश्चात्य। पौर्वात्य सस्कृति मुख्यत भारतीय सस्कृति है, तथा पाश्चात्यसस्कृति युरोपियनसस्कृति। भारतीय सस्कृति का झुकाव मुख्यत त्याग, सेवा, वैराग्य, आत्मानुशासन आदि की ओर रहा है और पाश्चात्य सस्कृति का भोग विलास, जीवन की भौतिक समृद्धि, सुख-सुविधा आदि की ओर। प्रथम सस्कृति साधक को निरन्तर आत्म निरीक्षण, आत्मशोधन एव परमात्मपद की उपलब्धि के लिए उत्प्रेरित करती रही है। आत्मानुशासन, सयम एव सदाचार का पाठ पढ़ाती रही है। इस सस्कृति ने पालने मे

झूलते हुए नवजात शिशुओं को भी—"**शुद्धोऽसि बुद्धो-सि, निरं-जनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि**" की लोरियाँ देकर प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक उच्च सस्कारो को अकुरित करने की प्रेरणा दी है, तो दूसरी सस्कृति नित नये भौतिक अनुसधान, सुख-समृद्धि की असीम पिपासा एव आधिभौतिक समृद्धि की प्रतिस्पर्धा मे मनुष्य को बेतहाशा दौडाती रही है। वहाँ आत्मानुशासन के स्थान पर शासन तथा सयम के स्थान पर असीम भोगेच्छा, दैहिक आनन्द ही प्रमुख रहा है।

प्रथम सस्कृति अन्तर्दर्शन की सस्कृति है। आत्मआनन्द की सस्कृति है, तो दूसरी बहिर्दर्शन एव बाह्य आनन्द की सस्कृति है। प्रथम मे साधक की अनन्त आत्मशक्तियो का उद्बोधन एव विकास करने की प्रेरणा है, तो दूसरी मे सिर्फ जड की उपासना एव भौतिक शक्तियो के विकास तथा अर्जन की आकुलता है।

भारतीय तत्वचिन्तको की समस्त शक्तियो का प्रवाह आत्म-तत्व के अनुसधान की दिशा मे प्रवाहित होता रहा है। वहाँ पर—"**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः**" एव '**आया हु मुणेयव्वो**' आत्मा को देखना चाहिए, आत्मा का मनन, अनुसधान करना चाहिए, के स्वर निरन्तर मुखरित होते रहे है, जब कि पाश्चात्यसस्कृति के विचारको ने प्रकृति और परमाणु पर ही अपना अध्यवसाय केन्द्रित करके उनका विश्लेषण किया, विज्ञान के क्षेत्र मे नये-नये चमत्कार पूर्ण प्रयोग किए।

आज मानवजीवन की प्रत्येक दिशा मे विज्ञान की गूज है। विज्ञान अपनी अभिनव चमत्कृतियो से मानव मन को आश्चर्यान्वित कर रहा है। आज का मानव इसके प्रति अधिक से अधिक आकृष्ट होता जा रहा है, जैसे अन्तिमलक्ष्य प्राप्ति का यही एक मात्र स्वर्णिम पथ हो। इतिहास, गणित, भूगोल, खगोल, भूगर्भ, जीव, पदार्थ, कला, कृषि, शिक्षा, मनोविज्ञान, शरीर-विज्ञान, आणविक-शस्त्रास्त्र-आदि सभी क्षेत्रो मे विज्ञान के अद्भुत चमत्कारो से मानव चमत्कृत हो रहा है। विज्ञान की प्रगति मे नये-नये अध्याय जुडते जा रहे हैं। सम्प्रति आध्यात्मिक खोज की ओर वैज्ञानिको का कुछ झुकाव हो रहा है, किन्तु इस दिशा मे अब तक कोई मौलिक

अन्वेषण वैज्ञानिको ने नही किया है और शायद उसके लिए उन्हे अवकाश भी नही है। किन्तु भारत अपने आध्यात्मिक चिन्तन की गरिमापूर्ण थाती को अब भी सम्भाले हुए है, अत नि सदेह कहा जा सकता कि आध्यात्मिक विज्ञान मे वह सब से अग्रसर है।

भारतीय संस्कृति

●

भारतीय सस्कृति की गहरी जडे आत्मवाद मे हैं। वह आत्मवाद की सस्कृति है। यहाँ के दार्शनिको, मनीषियो एव तीर्थंकरो का रुझान आत्मा की ओर रहा है। उनकी चिन्तन-धारा का केन्द्र-बिन्दु आत्मा है। यहाँ के चिन्तको ने भौतिकशक्ति पर विजय-वैजयन्ती फहराना मात्र मानव का लक्ष्य नही माना है। बाह्य-शक्ति का विकास स्वल्पकालीन सुख शान्ति का सर्जक भले ही हो, पर स्थायी शान्ति का जनक नही हो सकता। शाश्वत-शान्ति के लिए तो आखिर मनुष्य को आत्मानुसधान करना ही होगा। जब वह अपने आपको समझेगा, अपने आप पर अनुशासन करना सीखेगा, विश्व-विजय, या प्रकृतिविजय की आकाक्षाओ के स्थान पर आत्मविजय के लिए कदम बढाएगा, तभी उसको स्थायी शान्ति का अक्षयस्रोत लहराता मिलेगा। भारतीय सस्कृति के महान चिन्तक तीर्थंकर महावीर ने मनुष्य को आत्मविजय की अमर प्रेरणा देते हुए मगध जनपद के अठारह गणराजाओ एव अनेक वीर सामतो की सभा मे अपने अतिम सदेश मे कहा था—"एक व्यक्ति हजारो लाखो योद्धाओ को समराङ्गण मे परास्त कर सकता है, फिर भी वह उसकी वास्तविक विजय नही है। वास्तविकविजय तो है—आत्मविजय करने मे।"[1] महावीर के चिन्तन की यही प्रतिध्वनि शाक्यपुत्र तथागत की वाणी मे भी मुखरित हुई है।[2] और उनसे भी हजारोवर्ष पूर्व भारतीय सस्कृति के अमर उद्गाता कर्मयोगी श्री कृष्ण ने कुरुक्षेत्र मे उपस्थित हजारो लाखो वीर योद्धाओ को सम्बोधित कर यही बात

---

१ जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जिणे।
एग जिणेज्ज अप्पाण एस से परमो जओ॥ उत्तराध्ययन सूत्र, ७-३४

२ यो सहस्स सहस्सेन, सगामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्तान स वे सगामजुत्तमो॥ —धम्मपद ८। ४

कही थी—'तुम दूसरे शत्रुओ को विजय करके अपना भला नही कर सकते। अपनी आत्मा को जीत कर, उसका उद्धार करके ही तुम अपना उद्धार कर सकते हो—"**उद्धरेदात्मनात्मानम्**।" अनन्त-अनन्त काल से आत्मा को जिन आन्तरिक शत्रुओ ने घेर रखा है, उसकी अनन्त प्रभास्वर ज्योति को धुधली बना रखी है, उन शत्रुओ को पराजित करने की आवश्यकता है। यही आत्मा का परमपुरुषार्थ है। ये आन्तरिक शत्रु चर्मचक्षु से दिखाई नही पडते, ये बहुत ही सूक्ष्म रूप से आत्मिक शक्तियो को दबाए बैठे है, और बाहरी शत्रुओ से अधिक भयकर व खतरनाक है। बाहरी शत्रु तो केवल मानव के प्राणो का ही नाश करते है, किन्तु अन्तर के शत्रु आत्मा के अनन्त सद्गुणो का, असीम शक्तियो का सर्वनाश कर देते है। अत बाहरी शत्रुओ की अपेक्षा भीतरी शत्रुओ से सघर्ष कर विजय प्राप्त करना मानव की सर्वोत्कृष्ट विजय है। भौतिकशक्ति पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा आध्यात्मिक शक्ति की उपासना करना अधिक श्रेयस्कर व उपादेय है। भारतीय सस्कृति मे भौतिकशक्ति की उपासना या प्राप्ति मानव का चरम साध्य न रहकर एक मात्र साधन रहा है। साध्य की प्राप्ति तो अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति के विकास द्वारा ही सभाव्य है, जो अहिसा की परिपूर्ण साधना द्वारा ही प्राप्य है। अहिंसा भारतीय सस्कृति की आत्मा है। अहिसा, करुणा, प्रेम भारतीय सस्कृति के ये आधारस्तभ है। जैनदर्शन का तो अहिंसा प्राण ही है। इसकी विशद व्याप्ति मे सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सभी व्रतो का समावेश स्वत हो जाता है।[3] धर्म का मौलिक स्वरूप अहिसा है और सत्य आदि उसका विस्तार है। अब हम आगे के अध्यायो मे इसी बात पर विचार करेंगे....

---

३ अहिसा-गहणे महव्वयाणि गहियाणि भवति। सजमो पुण तीसे चेव अहिसाए उवग्गहे वट्टइ, सपुण्णाय अहिसाय सजमो वि तस्स वट्टइ।

—दशवैकालिक, चूर्णि १ अध्ययन

२ | अहिंसा का आदर्श

❁

❀विश्व के जितने भी धर्म, दर्शन और सम्प्रदाय है, उन सभी ने अहिसा के आदर्श को एक स्वर से स्वीकार किया है। चाहे वह जैन, बौद्ध, वैदिक, ईसाई, पारसी या इस्लाम कोई भी क्यो न हो ? किसी ने अहिसा के आशिक रूप पर विचार किया है, तो किसी ने उसके पूर्ण रूप पर, मगर विचार-चिन्तन किया अवश्य है। यद्यपि इन सभी धर्मों के प्रवर्तको एव प्रचारको ने अपनी-अपनी दृष्टि से अहिंसा तत्व की विवेचना की है, फिर भी अहिसा का जैसा सूक्ष्म-विश्लेषण और गहन विवेचन जैन साहित्य मे उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नही। जैन सस्कृति के प्रत्येक अवयव मे अहिसा की भावना परिव्याप्त है। उसके प्रत्येक स्वर मे अहिसा की ध्वनि मुखरित होती है। जैन सस्कृति की प्रत्येक क्रिया अहिसामूलक होती है। चलना, फिरना उठना, बैठना, शयन करना आदि सभी मे अहिसा का नाद ध्वनित होता-सा लगता है।[४] यह अहिसा धार्मिक क्रियाओ तक ही सीमित नही है, किन्तु जीवन की दैनिक क्रियाओ मे भी इसका समीचीन विधान है। विचार मे, उच्चार मे और आचार मे सर्वत्र अहिसा की सुमधुर झकार है। जैनदर्शन ने अपने चिन्तन के द्वारा विश्व को एक अनुपम दृष्टि प्रदान की है। अतीतकाल से मानव को वह अहिंसा के राजपथ पर बढने के लिए उत्प्रेरित करता रहा है। जैनसस्कृति और जैनदर्शन का मूलाधार व प्राणशक्ति

---

४ जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए।
जय भु जतो भासतो, पावकम्म न बधइ ॥ दशवैकालिक, अ०—४,

अहिंसा है। भगवान् महावीर ने अहिंसा तत्व के उत्कर्ष को बतलाते हुए कहा है—जिस प्रकार जीवो का आधारस्थान पृथ्वी है, वैसे ही भूत और भावी ज्ञानियो के जीवन दर्शन का आधारस्थान शान्ति अर्थात अहिंसा है।[५] महात्मा गाधी की **तलवार का असूल'** शीर्षक निबन्ध मे लिखी हुई, निम्नाकित पक्तियाँ अहिंसा पर उनकी अपार दृढ-आस्था को अभिव्यक्त करती है—"अहिंसा धर्म केवल ऋषि महात्माओ के लिए नही, वह तो आम लोगो के लिए भी है। अहिंसा हम मनुष्यो की प्रकृति का कानून है। जिन ऋषियो ने अहिंसा का नियम निकाला है, वे न्यूटन से ज्यादा प्रतिभाशाली थे, और वेलिंगटन से बडे योद्धा।" अहिंसा मे अपार शक्ति है। सपूर्ण विश्व पर उसकी अमिट छाप है। अहिंसा का विशद अनुशीलन-परिशीलन करने के पूर्व हिंसा के स्वरूप और प्रकार को परख लेना भी आवश्यक है।

हिंसा और उसके प्रकार

हिंसा शब्द हननार्थक हिंसि धातु से बना है। हिंसाका अर्थ है—प्रमाद अर्थात् असावधानी की स्थिति मे किसी प्राणी का प्राण वियोजन करना।[६] इसका विपरीत रूप अहिंसा है। हिंसा का अभाव ही अहिंसा का परिसूचक है। किन्तु अहिंसा की व्याख्या इतने मे ही समाप्त नही हो जाती। अहिंसा कोरी निषेधात्मक प्रवृत्ति मात्र नही है, उसका विधि पक्ष भी महत्वपूर्ण है, जिसकी विशेष चर्चा अगले प्रकरण मे की जायेगी।

भारतीय सस्कृति के मनीषी विचारको ने प्राणवियोजन को हिंसा कहा है। इस हिंसा को जैनदर्शन ने दो विभागो मे विभक्त किया है—एक द्रव्यहिंसा और दूसरी भावहिंसा। द्रव्यहिंसा बाह्य क्रियाओ पर आधृत है जब कि भावहिंसा आन्तरिक प्रवृत्तियो पर।

साधक के करुणा-पूरित हृदय मे प्राणीमात्र के प्रति करुणा का असीम सागर ठाठे मार रहा है। रक्षा, दया और करुणा की भावना

५　जे य बुद्धा अतिक्कता, जे य बुद्धा अणागया।
　　सति तेसि पइट्ठाण, भूयाण जगई जहा।।
　　　　　　　　　　—सूत्रकृता० श्रु० १ अ. ११. गा. ३६

६　प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।　　　—तत्त्वार्थसूत्र, अ० ७-८

एव प्रवृत्ति से मन ओत-प्रोत है। स्वच्छ-निर्मल मानस है। सबके प्रति निर्वैर है। फिर भी जीवन की इस लम्बी चौडी यात्रा मे साधक की विविध प्रवृत्तियो से यदि कही कभी किसी के प्राणो का घात हो जाता है, तो वह द्रव्यहिंसा है। यह केवल प्राण-वियोजन की दृष्टि से हिंसा कही जा सकती है, किन्तु इसमे हृदय की कलुषता नही होती, अत कर्मबन्ध नही होता। इस दृष्टि से वह नाम मात्र की हिंसा है, वास्तविक हिंसा नही है। वास्तविक हिंसा का सम्बन्ध भावो के साथ है।

जैन दृष्टि यह है कि किसी जीव का मर जाना अपने आप मे हिंसा नही है, किन्तु क्रोध, मान, मायादि के कलुषित भावो से किसी जीव के प्राणो को नष्ट करना हिंसा है। साधक के जीवन मे जब तक विवेक का प्रकाश जगमगाता रहता है और उसकी जागरूकता विद्यमान है, तब तक वहाँ अहिंसा है, पर जब साधक के जीवन मे विवेक की ज्योति बुझ जाती है, और जीवन प्रमाद के अन्धकार मे भटक जाता है, तब वहाँ हिंसा का ही वातावरण प्रस्तुत रहता है, इस दृष्टि से मन, वचन और कर्म का प्रमत्तयोग भी हिंसा है, और प्रमत्त योग से किसी प्राणी के प्राणो की घात करना भी हिंसा है।[६] आचार्य हरिभद्र के विचारानुसार आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है। अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और प्रमाद से युक्त आत्मा हिंसक है।[७]

हिंसा का मूलाधार कषाय भाव है। बाहर से भले ही किसी प्राणी की हिंसा न भी हो, पर भीतर मे यदि कषाय भाव और राग-द्वेष की परिणति चल रही है तो वह हिंसा है।[८] इसके विपरीत अन्तरग मे कषाय भाव या प्रमाद की स्थिति नही है, फिर भी किसी

---

६ मण-वयण-कायेहि जोगेहिं दुप्पउत्तेहि ज पाणववरोवण कज्जइ सा हिसा। दशवैकालिक चूर्णि, १ अ०

७ आया चेव अहिसा, आया हिंसेति निच्छओ एस।
जो होइ अप्पमत्तो, अहिसओ हिसओ इयरो॥
हरिभद्र कृताष्टक, ७ श्लो० ६ वृत्ति

८ व्युत्थानावस्थाया रागादीना वशप्रवृत्तायाम्।
म्रियता जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा॥ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, ४६

प्राणी का प्राणवियोजन हो जाता है तो वह हिंसा नही है।[९] वीतराग दशा की यही स्थिति है। केवलज्ञानियो से भी कामयोग की प्रवृत्ति के द्वारा कभी-कभी पचेन्द्रिय जीव तक का वध हो जाता है, फिर भी कर्म बन्धन से वे अलिप्त रहते है।[१०] इसका मूल कारण राग-द्वेष का अभाव है। तभी तो कहा है—आत्मा मे रागादिभावो क अप्रादुर्भाव ही अहिंसा है और रागादिभावो का प्रादुर्भाव ही हिंसा है।[११] जिस आत्मा ने रागद्वेष का उन्मूलन कर दिया है, उसे हिंसा होती ही नही, यदि हिंसा होती भी है तो वह द्रव्य हिंसा है, भाव हिंसा नही। द्रव्य हिंसा प्राण-नाश स्वरूप होते हुए भी चित्त के कालुष्य के अभाव मे हिंसा नही है।[१२] इस प्रकार जिसके हृदय कमल मे सद्भावना का सौरभ महकता रहता है उसके द्वारा होने वाली प्राण-वध-रूप हिंसा, वास्तविक हिंसा नही है। बाहर मे इस प्रकार की हिंसा होते हुए भी वे साता वेदनीय कर्म का ही बध करते है। आचार्य भद्रबाहु ने इसका विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि—'कोई साधक ईर्यासमिति से युक्त होकर चलने के लिए अपना पाँव उठाए और अचानक उसके पैर के नीचे कोई जीव दब कर मर जाए तो उस साधक को उस की मृत्यु के निमित्त से कर्म बन्ध नही होता। क्योकि वह साधक गमनक्रिया मे पूर्ण सजग है, अत वह निष्पाप है।[१३] गीतार्थ

---

९ युक्ताचरणस्य सतो, रागाद्यावेशमन्तरेणापि।
न हि भवति जातु हिंसा, प्राणव्यपरोपणादेव ॥ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ४५

१० भगवती सूत्र श० १८ उ० ८

११. अप्रादुर्भाव खलु रागादीना भवत्यहिंसेति।

१२ यदा प्रमत्त योगो नास्ति केवल प्राणव्यपरोपणमेव, न तदा हिंसा।
उक्त च—वियोजयति चासुभिर्न च वधेन स युज्यते।
—तत्त्वार्थ राजवार्तिक ७, १३

१३ उच्चालियम्मि पाए इरियासमिअस्स सकमट्ठाए।
वावज्जेज्ज कुलिगी मरेज्ज जोगमासज्ज ॥
न य तस्स तन्निमित्तो वधो सुहुमोवि देसिओ समए।
अणवज्जो उवओगेण, सव्वभावेण सो जम्हा ॥
ओघनिर्युक्ति, ७४८, ७४९

साधक के द्वारा यतनाशील रहते हुए भी यदि कभी विराधना हो जाती है, तो वह पापकर्म के बन्ध का कारण न होकर निर्जरा का कारण होता है। यद्यपि यहाँ बाहर मे हिंसा है तथापि अन्तर मे भावो की विशुद्धि है, फलत उसकी यतना उसे निर्जरा का माधुर्य ही अर्पण करती है।[१४] साराश यह है कि साधक का अन्तर्जगत कषायादि भावो से सर्वथा अलिप्त रहना चाहिए। यह अलिप्तता ही अहिंसा का प्राण है।

भाव हिंसा : निदर्शन

किसी भी प्राणी के प्रति मन मे दु सकल्पो का प्रादुर्भाव होना—भाव हिंसा है। इस मे प्राणी की स्थूल हिंसा हो या न हो, पर आत्मा के भीतर हिंसा का दुष्टसकल्प जागृत हो गया, और आत्मा के सद्गुणो का नाश कर दिया, तो भाव हिंसा हो चुकी। स्थूल हिंसा के कार्यो से तो प्रत्येक सभ्य बचना चाहता ही है, पर सूक्ष्म हिंसा-जो आन्तरिक परिणामो से ही होती है, उससे भी बचने की आवश्यकता है। जब मन मे ईर्ष्या-द्वेष, चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कर्म के 'सकल्प' पैदा होते है, तब आत्मा भाव हिंसा से कलुषित हो जाता है। भाव-हिंसा सब से बडी हिंसा है। यह दूसरो का नाश करने के साथ जिस आत्मा मे उत्पन्न होती है, उसका भी नाश करती है। जैनागम मे वर्णित तन्दुलमत्स्य का उदाहरण भाव हिंसा के भयानक परिणाम को स्पष्ट कर देता है। जो द्रव्य हिंसा नही करता हुआ भी दुष्ट एव क्रूर सकल्पो के कारण सातवे नरक तक ले जाने वाले घोर पापकर्मो का बन्ध कर लेता है। वह चावल के दाने जितना नन्हा-सा मत्स्य भाव-हिंसा के कारण कुछ ही क्षणो मे इतने क्रूर तथा घोर कर्मो का उपार्जन कर लेता है—यह भावहिंसा का विलक्षण प्रभाव ही है। विचारो और सकल्पो के उतार-चढाव के कारण ही साधु वेश मे ध्यानस्थ खडे प्रसन्नचन्द्रराजर्षि सातवी नरक भूमि के

---

१४ जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स ।
सा होइ निज्जरफला, अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ।। ओघनिर्युक्ति ७५९

योग्य कर्म करने लग गए, और वे ही परिणाम जब विशुद्ध, विशुद्धतर हुए तो कुछ ही क्षणो मे वही पर खडे-खडे केवलज्ञानी बन गए, यह सब परिणाम, भाव तथा मन के चमत्कार है। तभी तो भारतीय दर्शनकारो को यह कहना पडा—"**मन एव मनुष्याणा कारणं बन्ध-मोक्षयो**" (मैत्रा० आरण्यक ६।३४-११) मन ही मानव के बन्धन और मुक्ति का कारण है। स्वर्गनरक सभी मानव की भावना पर आधारित है।

एक बार सुकरात से किसी ने पूछा—विश्व मे आपका साथी कौन है ?

सुकरात ने गम्भीरता पूर्ण उत्तर दिया—मेरा साथी मेरा मन है। मन ही मेरा साथी-मित्र है।

फिर पूछा—आपका शत्रु कौन है ?

इस बार भी सुकरात उसी गम्भीर मुद्रा मे बोले—मेरा शत्रु मेरा मन है।

प्रश्नकर्ता सुकरात के इस उत्तर को सुनकर आश्चर्यान्वित हो उठा। क्या आपका मन ही आपका साथी और शत्रु है ?

सुकरात ने कहा—"हाँ, मेरा मन ही मेरा साथी और दुश्मन है। यह मन मुझे खरे साथी की तरह सत्यपथ पर भी ले जा सकता है, और दुश्मन की तरह असत्य-अर्थात् बुरे मार्ग पर भी ले जा सकता है।" इसलिए मन ही सर्वेसर्वा है। द्रव्य और भाव हिंसा का मानदण्ड भी मन है। मन के राग-द्वेष, क्रोध, मान आदि सब दुर्भाव, दु सकल्प आन्तरिक भाव हिसा है। भाव हिंसा से बचने के लिए इन विकारो को समाप्त करने की आवश्यकता है।

चौभंगी का विधान

●

द्रव्यहिंसा और भावहिसा के सम्बन्ध मे आचार्यों ने चौभगी के द्वारा सुन्दर विश्लेपण प्रस्तुत किया है —

१ द्रव्य हिंसा भी हो, और भाव हिंसा भी हो।
२ द्रव्य हिसा हो, भाव हिसा न हो।
३ द्रव्य हिसा न हो, और भाव हिंसा हो।
४ न द्रव्य हिसा हो और न भाव हिंसा हो।

राग-द्वेप से लिप्त होकर जो प्राणवध किया जाता है, वह द्रव्य हिंसा भी है और भावहिसा भी। राग-द्वेप से अलिप्त रहते हुए जो

प्राणवध की क्रिया होती है, वह द्रव्य से हिंसा और भाव से अहिंसा है ।

राग द्वेषादि के विकारो से कलुषित होकर किसी जड अचेतन वस्तु पर जब प्रहार किया जाता है, तब जड के प्राण नही होने से प्राण-वियोजन रूप हिंसा तो नही होती, अर्थात् द्रव्य से हिंसा नही होती किन्तु भावो की कलुषता के कारण वह भाव हिंसा अवश्य हो जाती है ।

जहाँ आत्मा मे राग-द्वेष की प्रवृत्ति नही है, और न शरीर से प्राणवध ही होता है, ऐसी अयोग एव मुक्त अवस्था मे न द्रव्य हिंसा है, और न भाव हिंसा ही, वहाँ तो अहिंसा का ही पूर्ण साम्राज्य है ।....[15]"

१५ दशवैकालिकचूर्णि अ० १

३ | अहिंसा का मधुर संगीत

●

*अहिसा जीवन का मधुर सगीत है। जब यह सगीत जीवन मे झकृत होता है तो मानव-मन आनन्द विभोर हो उठता है। यही कारण है कि चिरकाल से बडे-बडे साधक पुरुष इसकी साधना-आराधना करते आ रहे है। उन्होने अहिसा की साधना मे अपने मूल्यवान जीवन का उत्सर्ग किया और अहिसा की गरिमा को विश्व के कौने-कौने मे फैलाया।

जैनागमो मे अहिसा को 'भगवती' कहा है।[१५] यह दया का अक्षय-कोष है। दया के अभाव मे मानव मानव न रह कर दानवकोटि मे पहुँच जाता है। एक विचारक ने कहा है—"दया के अभाव मे मानव का जीवन प्रेतसदृश है।" सुप्रसिद्ध विचारक इगरसोल ने तो बतलाया है कि—"जब दया का देवदूत दिल से दुत्कार दिया जाता है और आँसुओ का फव्वारा सूख जाता है, तब मनुष्य रेगिस्तान की रेत मे रेगते हुए साँप के समान बन जाता है।"

वस्तुत अहिसा एक महासरिता है। जब साधक के जीवन मे यह इठलाती बलखाती हुई चलती है तब साधक का जीवन विराट् व रमणीय बन जाता है। श्रमणसस्कृति के उन्नायक भगवान् महावीर ने अहिसा का प्रशस्त मार्ग दिखलाते हुए कहा है—"सर्वप्राणो, सर्वभूतो, सर्वजीवो और सर्वसत्त्वो को नही मारना चाहिए, न पीडित करना चाहिए और न उनको मारने की बुद्धि से स्पर्श ही करना चाहिए। यही धर्म शुद्ध, शाश्वत व नियत है।[१६] प्राणी-मात्र के प्रति

---

१५ एसा सा भगवती —प्रश्नव्याकरण, सूत्र

१६ सव्वेपाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता।
न हतव्वा न अज्जावेयव्वा न परिघेतव्वा॥

सयम भाव रखना अहिसा है ।[१७] किसी प्राणी को न सताना, और न दुर्भाव रखना, यह अहिसा का मूलभूत सिद्धान्त है । इसी मे विज्ञान का अन्तर्भाव हो जाता है ।[१८] जैन सस्कृति के ज्योतिर्धर आचार्यों ने मानव मन मे रहे हुए हिंसा के गहनतम अन्धकार को दूर करने के लिए अहिसा को महाप्रदीप के रूप मे देखा है । जिसका अभिप्राय यह है—सुख-दु ख, मान-अपमान, क्षुधा-पिपासा आदि की अनुभूतियाँ जैसी हमे होती है वैसी ही दूसरे प्राणियो को भी । क्योकि सब के अन्दर वही एक चेतना की अखण्ड धारा प्रवाहित हो रही है । विश्व की जितनी भी आत्माएँ है, उन सब मे एक समान चेतना है ।[१९] उनमे मूलभूत कोई अन्तर नही है । अत सब जीवो के प्रति समत्त्वमूलक भावना अपेक्षित है । समता के अभाव मे अहिसा अपूर्ण है ।

समत्त्वयोग की साधना : अहिंसा

अहिसा का मूलाधार समत्त्वयोग है । समत्त्वयोग आत्मसाम्य की दृष्टि प्रदान करता है । जिसका अर्थ है विश्व की सभी आत्माओ को समदृष्टि से देखना । चैतन्यमात्र के प्रति अपने-पराये का भेद न रखकर सब के साथ समतामूलक व्यवहार करना—समत्त्वयोग की सब से बडी साधना है । समत्त्वयोग की साधना पर जैनदर्शन के वरिष्ठ-विधायको ने सर्वाधिक बल देते हुए कहा है—"सब आत्माओ को अपनी आत्मा की तरह समझो । अन्य प्राणियो की आत्मा मे अपने आप को देखो, और ससार की समस्त आत्माओ को अपने भीतर देखो ।"[२०] तात्त्विक दृष्टि से सभी आत्माएँ समान है । सब मे एक ही ज्योति है, एक ही प्रकाश है, एक ही जीव चेतना है । सुख-दु ख की

न उवद्दवेयव्वा एस धम्मे सुद्धे नियएसासए ।
समेच्च लोय खेयन्नेहि पवेइए ।। —आचाराङ्ग सूत्र

१७ अहिसा निउणा दिट्ठा सव्वभूएसु सजमो । —दशवैकालिक

१८ एव खु नाणिणो सार ज न हिसइ किचण ।
अहिसा समय चेव, एयावत वियाणिया ।। —सूत्र, १।१।४।१०

१९ एगे आया —ठाणाग, सूत्र १–१

२० सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्म भूयाइ पासओ । —दशवैकालिक सूत्र, ४।९

अनुभूति सब को होती है। जीवन-मरण की प्रतीति सब को होती है। सभी प्राणी जीना चाहते है—मरना कोई नही चाहता। एक सामान्य कीडे के और स्वर्गाधिपति इन्द्र के अन्तर मे जीवन की इच्छा एक समान है, और मृत्यु का भय भी समान है।[२१] "सभी प्राणियो की जीवन-धारा भी एक-सी है। सभी दीर्घायुष्य चाहते है। सुख पसन्द करते है, दु ख से घबराते है। जीवन प्रिय है, मरण अप्रिय है। सभी जीने की कामना करते है। अपना जीवन सब को प्यारा है।"[२२] इस समतामूलक चिन्तन पर ही जैनदर्शन के समत्वयोग की मीनार खडी है।

समत्वयोग की प्रेरणा

●

जिस प्रकार अपने को सुख प्रिय है और दु ख अप्रिय है, वैसे ही अन्य प्राणियो को भी सुख प्रिय और दु ख अप्रिय है। जिस प्रकार हमे अपने प्राणो का घात अनिष्ट है, वैसे दूसरो को भी अनिष्ट है। यह सोचकर मानव को दूसरो की हिंसा नही करनी चाहिए।[२३]

यदि मानव अपनी आत्मा की तरह ही अन्य आत्माओ को भी समझने लग जाय तो एक दिन अवश्य उसका जीवन हिंसाजन्य विकारो से सर्वथा मुक्त हो जायगा और वह अपनी आत्मा को विश्वात्मा के साथ आत्मसात् कर सकेगा। यह बात निश्चित है कि जिन बातो से, जिन व्यवहारों और चेष्टाओ से हमे दु ख होता है, उन बातो, व्यवहारो और चेष्टाओ से अन्य को भी दु ख होता है। अत हमे चाहिए कि किसी के साथ वैसा व्यवहार न करे जैसा हमे अपने लिए पसन्द नही है। जो हम निज के लिए चाहे, वही पर के लिए भी चाहे। इस प्रकार विश्व की समस्त आत्माओ के साथ अपने

---

२१ अमेध्यमध्ये कीटस्य, सुरेन्द्रस्य सुरालये।
समाना जीविताकांक्षा, सम मृत्यु-भय द्वयो ॥ —आचार्य हेमचन्द्र

२२ सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दुहपडिकूला।
अप्पियवहा, पियजीविणो, जीविउकामा ॥
सव्वेसि जीविय पिय। —आचाराग सूत्र, १।२।३

३ आत्मवत् सर्वभूतेषु, सुख-दु खे प्रियाप्रिये।
चिन्तयन्नात्मनोऽनिष्टां, हिंसामन्यस्य नाचरेत् ॥ —आचार्य हेमचन्द्र

जैसा व्यवहार करना ही समत्वयोग की साधना का मूल आधार है। समत्वयोग की साधना का यह मूल आधार श्रीकृष्ण की वाणी मे भी इस प्रकार ध्वनित हुआ है—"जो सभी जीवो को अपने समान समझता है और उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझता है, वही परम योगी है।"[२४]

आत्मौपम्य-दृष्टि

●

भगवान् महावीर ने बतलाया है कि—छह जीव निकाय को अपनी आत्मा के समान समझो।[२५] प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझो।[२६] यह आत्म-तुला का सिद्धान्त कितना उदात्त और महान् है? अहिंसा की भावना को परखने और समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। भगवान् महावीर ने कहा था—हे मानव! जिसको तू मारने की भावना रखता है, सोच, वह तेरे जैसा ही सुख-दुःख का अनुभव करने वाला प्राणी है। जिस पर तू अधिकार जमाने की आकांक्षा रखता है, वह तेरे समान ही एक चेतन है। जिसे तू दुःख देने का सोचता है, वह तेरे जैसा ही प्राणी है। जिसको तू अपने वश मे करने की इच्छा करता है, वह तेरे जैसा ही एक जीव है। जिसका प्राण तू लेने की भावना रखता है, वह तेरे जैसा ही प्राणी है।[२७]

---

२४ आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन!
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

—गीता-अ० ६, श्लोक ३२

२५ अत्तसमे मन्निज्ज छप्पिकाए। —दशवैकालिक, १०–५

२६ आयतुले पयासु। सूत्र कृतांग सूत्र, १।१०।३

२७ तुमसि नाम सच्चेव जं हंतव्वंति मन्नसि।
तुमसि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वंति मन्नसि।
तुमसि नाम सच्चेव जं परियावेयव्वंति मन्नसि।
तुमसि नाम सच्चेव जं परिघेत्तव्वंति मन्नसि।
तुमसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मन्नसि।
अंजू चेव पडिवुद्धजीवी तम्हा न हंता न विघायए।

—आचारांग सूत्र, १–५।५,

इस प्रकार ससार मे सत्पुरुष विवेकमय जीवन व्यतीत करता हुआ न किसी जीव को मारता है और न किसी की घात करता है। क्योकि हिसा से आत्मौपम्य की भावना का तो नाश होता ही है, साथ ही परलोकवादी आस्था मे उसके कटु परिणामो का भी चिन्तन किया गया है—जो यहाँ पर किसी की हिसा करता है उसका फल उसे भविष्य मे भोगना पडता है। अत भविष्य के कटु परिणाम एव सतत बढती जाने वाली वैर-परम्परा पर विचार करके किसी भी प्राणी की हिसा करने की कामना न करे।

अहिसा-परक आत्मसयम का पथ प्रदर्शित करते हुए सूत्रकृताग सूत्र मे भगवान् महावीर ने बतलाया है—आत्मार्थी आत्मा का कल्याण करने वाला, आत्मा की रक्षा करने वाला, आत्मा मे शुभ प्रवृत्ति करने वाला, सयम के आचरण मे पराक्रम प्रकट करने वाला, आत्मा को ससाराग्नि से बचाने वाला, आत्मा पर दया करने वाला, आत्मा का उद्धार करने वाला साधक अपनी आत्मा को सर्व पापो से मुक्त रखे।[२८] उक्त आत्मौपम्य व आत्मसयम की दृष्टि समत्त्वयोग की साधना द्वारा ही सप्राप्त हो सकती है। तथा वैयक्तिक उत्थान एव सामाजिक उत्कर्ष भी समत्त्वयोग की साधना-आराधना पर ही निर्भर है।

जीओ और जीने दो

जब साधक के जीवन मे अहिसा-भाव की लहरे-लहराती है, अन्त करण मे करुणा का अमृत वर्षण होता है और अपनी ही भाँति दूसरो को भी जीने का पूर्ण अधिकार प्रदान करता है तब उसकी अहिसा पूर्ण साकार हो उठती है। विश्व की समस्त आत्माओ को जीने का समान अधिकार है। कोई किसी के प्राणो का घात-प्रतिघात न करे। एक-दूसरे के सुख-सुविधा मे बाधक न बने। यही उन अनन्त-ज्ञानियो की साधना का अर्थ है, निचोड है। जिस सीमा मे तुझे जीने का हक है, उस सीमा मे अन्य को भी जीने का हक है। यह महामन्त्र जन-जन के अन्तर तम मे सदा गूँजता रहना चाहिए।

जनदर्शन व जैनधर्म का आदर्श यही तक सीमित नही, वरन् उसका आदर्श है—"दूसरो के जीने मे मदद करो और अवसर आने

पर दूसरो के जीवन की रक्षा के लिए अपने जीवन की आहुति भी दे डालो।" प्रस्तुत आदर्श की परिपालना सम्यक् प्रकार से न होने के कारण ही आज अहिंसा निष्क्रिय बनी हुई है। 'जीओ और जीने दो' मे बढकर 'दूसरो के जीवन मे सहायक बनो', इस विराट् सिद्धान्त को आत्मसात् करने के लिए अहिसा को सक्रिय रूप पदान करने की आवश्यकता है। अहिसा के विचारको को सिर्फ यही तक सोच कर विराम नही लेना है कि प्राणी मात्र को जीने का अधिकार है, उन्हे जीने दो। किन्तु इस बात पर भी सोचना है कि हम दूसरो के जीवन मे किस प्रकार सहयोगी बन सकते है ? व्यक्ति, समाज, देश और राष्ट्र के अभ्युदय एव उत्कर्ष मे हमारा क्या उपयोग हो सकता है—अहिसा की इस भावना का विकास ही सर्वोदय की भावना है, यही अहिसा का विधायक पक्ष है। प्रसिद्ध जैन आचार्य उमास्वाति ने चेतन का लक्षण ही यह माना है कि वह एक-दूसरे के विकास व अभ्युदय मे सहयोगी व उपकारी बने।[२९]

---

२८ एव से भिक्खू आयट्ठो, आयहिते, आयगुत्ते, आयजोगे, आदपरक्कम्मे, आयरक्खिए, आयणुकपए आयतिप्फेडए, आयाणमेव, पडिसाहेज्जासि।
—सूत्र कृताङ्ग सूत्र —२।२।४२

२९ परस्परोपग्रहो जीवानाम् —तत्त्वार्थ सूत्र ५।२१

४ | अहिंसा की विराट् दृष्टि

•

❀ अहिंसा की दृष्टि विराट् है। उसमे सकीर्णता की जरा भी गुजाइश नही है। यह तो गगा की उस विमल-विशाल-धारा के सदृश मुक्त व स्वतन्त्र है। उसे बन्धन प्रिय नही है। यदि अहिसा को किसी प्रान्त, भाषा, पथ या सम्प्रदाय की क्षुद्र परिधि मे बन्द कर दिया गया तो उसकी वही स्थिति होगी जो समुद्र के शुद्ध निर्मल जल को किसी गड्ढे मे बन्द कर देने पर होती है।

अहिंसा किसी व्यक्ति, देश, या जाति विशेष की ही सपत्ति नही है, यह तो विश्व का सर्वमान्य सिद्धान्त है। भारत के राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अहिसा की विराट्ता पर प्रकाश डालते हुए 'आत्म-कथा' मे लिखा है—"अहिंसा का सिद्धान्त अनोखा सिद्धान्त है। इतने बडे पैमाने पर, विशेप कर इतनी बडी शक्ति के हाथो (अग्रेजो) से स्वराज्य प्राप्त करने मे उसका उपयोग और भी अनोखा है। बहुतेरो ने इसे नीति के रूप मे माना है, और सचाई से बर्तते है।" अहिसा का क्षेत्र काफी विस्तृत है, वह विश्वव्यापी है। यह मानवता का उज्ज्वल प्रतीक है। इसके द्वारा ही जन-समाज की सारी व्यवस्थाएँ व प्रवृत्तियाँ युग-युग से सुचारु रूप से चली आ रही है।

अहिसा बाधक नही, साधक है !

•

कतिपय लोगो का यह मन्तव्य है कि अहिसा कायरता का प्रतीक है। वह देश को गुलाम बनाती है और कर्मक्षेत्र मे आगे बढने से रोकती है। पर क्या उक्त कथन तथ्यपूर्ण है ? यदि गम्भीरता से चिन्तन करेगे, तो स्पष्ट ज्ञात हुए बिना नही रहेगा कि अहिसा के यथार्थ स्वरूप व उसके सही-सत्य दृष्टिकोण को न पहचानने के

कारण ही इस प्रकार के भ्रामक विचार मस्तिष्क मे समुत्पन्न होते रहे है। यदि अहिसा के यथार्थ स्वरूप को जान लिया जाय तो ये मारे भ्रामक विचार, अनायास ही समाप्त हो सकते है।

भारत के सुविख्यात दार्शनिक एव भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् ने इस दिशा मे जो विचार अभिव्यक्त किये है वे भी चिन्तनीय है—"यह जमना हथियार बन्द कायरता का है। कायरता ने अपने हाथ मे हथियार इसलिए रखे है कि वह दूसरो के हमलो से डरती है और स्वय हथियार इसलिए नही चलाती कि उसे हिम्मत नही होती। जो डर के मारे हथियार चला नही पाती उसी का नाम कायरता है। इस कायरता से इन्सान को उबारने वाली केवल एक ही शक्ति है— अहिसा।"

अहिंसा : वीरो का धर्म

अहिसा कायरता नही सिखलाती, वह तो वीरता सिखलाती है। अहिसा वीरो का धर्म है। अहिसा का स्वर है—मानव! तुम अपनी स्वार्थ-लिप्सा मे डूबकर दूसरो के अधिकार को न छीनो। किसी देश या राष्ट्र के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप मत करो। किसी भी समस्या को यथासभव शान्ति पूर्वक सुलझाने का प्रयास करो। शान्ति के लिए तुम अपना बलिदान बेशक दे दो, किन्तु अपनी स्वार्थ एव वासना पूर्ति के लिए किसी के प्राणो को मत लूटो। इस पर भी यदि समस्या का उचित समाधान नही हो पा रहा है, और देश, जाति व धर्म की रक्षा करना अनिवार्य हो तो उस स्थिति मे वीरता परक कदम उठा सकते हो, किन्तु अहिसा के नाम पर कायर बन करके घर मे मुँह छिपाकर मत बैठो। प्राणो का मोह करके जिन्दगी से चिपटकर कायर मत बनो। यदि समय पर अन्याय-अत्याचारो का प्रतीकार न कर सके तो यह सबसे बडी तुम्हारी बुजदिली व कायरता ही सिद्ध होगी। और तुम्हारी अहिसा, तुम्हारी शान्ति की पुकार सिर्फ एक वचना और धोखा मानी जायेगी।

अहिसा यह कभी नही कहती कि मानव अन्यायो को सहन करे। क्योकि जैसे अन्याय करना स्वय मे एक पाप है, वैसे ही अन्याय को कायर होकर सहन करना भी एक महापाप है। वह अहिसा क्या है,

जिसमे अन्याय के प्रतीकार की शक्ति नही है, देश की आजादी को सुरक्षित रखने की क्षमता नही है। वह अहिंसा—अहिंसा नही, वह तो नाम मात्र की अहिंसा है, निष्प्राण अहिंसा है। ऐसी अहिंसा का कोई मूल्य नही है।

प्रतीकार के दो रूप

अन्याय के प्रतीकार के दो रूप है—एक हिंसक प्रतीकार, दूसरा अहिंसक प्रतीकार। हिंसक प्रतीकार गृहस्थ वर्ग से सम्बन्धित है, क्योकि गृहस्थ वर्ग की अहिंसा-मर्यादा सीमित होती है। वह समय पर देश, जाति व धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ कर सकता है। भगवान् महावीर के श्रावक भी अनाक्रमण-व्रत को ग्रहण करते थे पर आत्म-रक्षा के लिए, प्रत्याक्रमण के लिए तो वे खुले रहते थे। प्रत्याक्रमण के अधिकार से वचित नही रहते थे। किन्तु श्रमण या कोई विशिष्ट अध्यात्मवादी सन्त, हिंसक प्रतीकार नही करता। वह तो समाज या देश मे पनपने वाले अन्यायो का प्रतीकार अहिंसात्मक ढग से ही करता है। और यह अहिंसक प्रतीकार बाहरी साधनो से नही किया जाता है, यह साधक के आत्मबल के विकास पर निर्भर है। साधक का आत्मबल ही उसकी सफलता का मापदण्ड है।

जैन विचारको ने हिंसा का सूक्ष्म विश्लेपण करते हुए उसके चार प्रकार बतलाये है—सकल्पी, आरभी, उद्योगी और विरोधी। किसी निरपराध प्राणी को मारने का इरादा करके उस पर आक्रमण करना या उसे जान से खत्म कर देना सकल्पी हिंसा है। गृहस्थ जीवन बिताते हुए, घरेलू काम-धन्धे करते हुए जो हिंसा होती है, वह आरम्भी हिंसा है। खेती-बाडी, व्यापार-उद्योग मे होने वाली हिंसा उद्योगी-हिंसा है। और देश, समाज व राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रतीकारात्मक जो हिंसा की जाती है, वह विरोधी हिंसा है। विरोधी हिंसा मे राज्य-लिप्सा, भोगलिप्सा और वैर-विरोध की गन्ध समाहित हो सकती है, किन्तु जो हिंसा केवल देश, जाति व धर्म की रक्षा-भावना से अनुस्यूत है, परिपूरित है, वह हिंसा हिंसा होते हुए भी उसमे भावी अहिंसा का एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण अन्तर्निहित है, और वही दृष्टि-कोण व्यक्ति को हिंसा के कालुष्य से उबारने वाला होता है। यद्यपि

अहिंसक व्यक्ति हिंसा मे कतई विश्वास नही करता, उसकी आस्था-निष्ठा अहिंसा मे पूर्ण रूप से रही हुई है, वह अहिंसा तत्त्व को जीवन विकास का सर्वोपरि तत्त्व समझता है, फिर भी देश, जाति व धर्म की रक्षा का प्रश्न जब उसके सामने आकर खडा होता है तो वह मुँह नही छिपाता। अपनी आँखो के सामने अन्याय का अभिनय देख नही सकता किन्तु वह डटकर उसका प्रतीकार करता है।

अजातशत्रु कोणिक और महाराज चेटक के बीच आश्रित जन की रक्षा के लिए युद्ध हुआ। यह एक प्रसिद्ध घटना है। भगवती सूत्र, निरयावलिया आदि मे उसका विस्तृत वर्णन है। जब कोणिक अन्याय पर पूर्ण रूप से तुल गया तो महाराज चेटक को उसके अन्याय का दमन करने के लिए विवश होना पडा। यद्यपि महाराज चेटक भगवान् महावीर के परम उपासको मे से थे, और वे इस घोर हिंसात्मक युद्ध को हर हालत मे टालना चाहते थे, किन्तु कोणिक का अहभाव व उसकी लिप्सा इतनी तीव्र, प्रबल हो उठी कि सिवाय युद्ध के उनके समक्ष कोई दूसरा मार्ग ही नही रहा था। परिणामत दोनो के बीच घोर सग्राम हुआ, लाखो नर पतग की तरह युद्धाग्नि मे भस्मीभूत हो गये।[30]

इसी प्रकार राम भी नही चाहते थे कि मै रावण के साथ युद्ध करूँ। क्योकि राम भारतीय सस्कृति के उज्ज्वल प्रतीक थे, और साथ ही मर्यादापुरुषोत्तम भी। उनका हृदय परम कारुणिक था, हिंसा व युद्ध से होने वाले अनर्थ उनकी आँखो के समक्ष नाच रहे थे, किन्तु जब राम के सामने दो अजीब प्रकार की समस्याएँ एक साथ खडी हो गई—एक सच्चरित्र नारी सीता की अनाचारी रावण के हाथ से मुक्ति, और दूसरी रावण की अमानुषिक दानव-वृत्ति के दमन की। यदि रावण सीता को सहज रूप मे राम के पास लौटा देता तो आगे युद्ध जैसी कोई परिस्थिति नही उत्पन्न होती। राम ने रावण को कई बार अपना दूत भेजकर यह सन्देश कहलवाया कि—मुझे तुम्हारी स्वर्णिम लका की चाह नही है और न मेरे अन्तर मे तुम्हारे असीम वैभव की अभिलाषा ही है। तुम तो केवल सीता को शान्ति-पूर्वक लौटा दो। मेरे मन मे तुम्हारे प्रति तनिक भी व्यक्तिगत द्वेष

---

३०. भगवती सूत्र, शतक ७ उ० ६

नही है। यह सब कुछ कहने-सुनने के बावजूद भी जब रावण अपने दुर्विचार से जरा भी इधर-उधर हिला-डुला नही, तब राम को अपना अन्तिम निर्णय युद्ध का ही करना पडा। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'पचवटी' काव्य मे राम के मुख से कहलवाया है—

"नही विघ्न बाधाओ को हम स्वय बुलाने जाते है।
फिर भी यदि वे आ जावें तो कभी नही घबराते हे ॥"

हाँ, तो राम रावण से लडने के लिए हाथ मे धनुष उठाकर चल पडे। महाभयकर द्वन्द्व हुआ और अन्त मे राम की विजय हुई।

उल्लिखित युद्धो मे हिंसा हुई, इससे कोई भी इन्कार नही, पर इस हिसा का सूत्रपात न तो महाराज चेटक ने किया और न राम ने ही, कोणिक तथा रावण की अमानुपिक दानव–वृत्ति ने ही करवाया। महाराज चेटक और राम ने तो अपने कर्त्तव्य का पालन मात्र किया है। यह हुआ अन्याय के प्रतीकार का एक हिंसात्मक रूप।

अहिंसात्मक प्रतीकार

अन्याय के प्रतीकार का दूसरा रूप है—अहिंसात्मक, अहिंसक प्रतीकार जीवन का उच्च आदर्श व साधक जीवन की उच्च भूमिका है। इसमे सामाजिक, राष्ट्रीय एव वैयक्तिक अन्यायो का प्रतीकार किया जाता है, किन्तु हिसक साधनो से नही, अहिंसा के उपक्रमो से किया जाता है। कहना चाहिए, बाह्य साधनो से नही, किन्तु आभ्यन्तरिक साधनो से ही उस हिंसा के प्रतीकार की यह प्रक्रिया है। भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध, ईसा तथा गाधी आदि अहिसक प्रतीकार के उदाहरण है। उन्होने अहिंसा के रास्ते से देश, समाज व राष्ट्र मे व्याप्त हिंसा और अन्याय के प्रतीकार का प्रयास किया था।

आज से ढाई हजार वर्प पूर्व का समय भारतीय इतिहास मे एक अन्धकारपूर्ण युग समझा जाता है। उस समय भारतीय क्षितिज-पर अन्ध–विश्वास और रूढिवाद के बादल सर्वत्र मडरा रहे थे। यज्ञ के नाम पर देवी-देवताओ के आगे मूक पशुओ के प्राणो की होली खेली जाती थी। स्त्री-समाज को हीन भावना से देखा जाता था। उन्हे मनुष्योचित अधिकारो से वचित रखा जाता था। शूद्रो की दशा तो पशुओ से बुरी थी। उन्हे अनेक प्रकार के दुर्व्यवहारो से पीडित, प्रताडित किया जाता था। उस समय श्रमण-सस्कृति के

उन्नायक भगवान् महावीर ने क्रान्ति की अलख जगाई। ग्राम-ग्राम नगर-नगर घूम-घूमकर मानव समाज को अहिंसा और प्रेम का दिव्य सन्देश सुनाया। जातिवाद का कडे स्वर मे विरोध किया। उनके क्रान्तदर्शी विचार-वायु के झझावात मे अन्धविश्वास और यज्ञादि कुप्रथाओ के बादल बिखर गये और क्रान्ति का प्रकाश चमक उठा। मानव समाज मे सर्वत्र शान्ति की लहर लहराने लगी। रौहिणेय जैसे दुर्दमनीय दस्युराज को और अर्जुन माली जैसे क्रूर हत्यारे को अपनी अहिंसक शक्ति से उन्होने कुछ ही क्षणो मे चरित्र-सम्पन्न सत्पुरुष व दयामूर्ति बना दिया।

भगवान् महावीर के समसामयिक महात्मा बुद्ध भी एक युगपुरुष थे। तथागत बुद्ध समाज की बुराइयो के साथ लडे थे, सघर्ष किया था। अगुलीमाल जैसे निर्मम-निर्दयी डाकू का उद्धार किया। उसे सदा के लिए अहिंसक बना दिया। कहना होगा कि भगवान् महावीर की तरह बुद्ध ने भी समाज मे क्रान्ति की नवज्योति जगाई थी और वे अपने अभियान मे निरन्तर बढते रहे।

करुणामूर्ति ईसा मसीह भी एक बहुत बडी शक्ति थे। उन्होने विश्व को प्रेम और क्षमा का अमर सदेश प्रदान करते हुए कहा—"यदि कोई दुश्मन तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो तुम दूसरा गाल भी उधर कर दो।" यह स्वाभाविक है कि प्रत्याक्रमण न होने पर आक्रमण अपने आप शिथिल हो जाता है। अहिंसक प्रतीकार की यह एक प्रक्रिया है। प्रत्याक्रमण से आक्रान्ता को विशेष वेग मिलता है, उसमे अधिक उग्रता आती है। आक्रान्ता को शान्त करने के लिए प्रत्याक्रमण अनिवार्य नही है। मन मे प्रेम, स्नेह व सद्भावना के द्वारा भी आक्रान्ता का प्रतिरोध हो सकता है।

गाधीजी सदा कहा करते थे कि—"मै ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड रहा हूँ, अग्रेजो के विरुद्ध नही। प्रत्येक अग्रेज मेरा मित्र है।" यह तो सुनिश्चित है कि इस प्रकार की भावना प्रतिद्वन्द्वी को उत्तेजित करने के स्थान पर शान्ति पूर्वक विचार करने का सुअवसर प्रदान करती है। गाधीजी ने अग्रेजो का सामना किया। एक बहुत बडी शक्ति के साथ लडे थे, पर अहिंसक बनकर लडे। उन्हे हिंसा का पथ किसी भी स्थिति मे पसन्द नही था। गाधीजी को साम्राज्यवाद का प्रतीकार करने मे कई प्रकार की कठिनाइयाँ सहन करनी पडी,

पर वे कभी हतोत्साह नही हुए, और अन्त मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारत के मैदानो से खदेड ही दिया । इस प्रकार गाधीजी ने भारत को अहिंसा के रास्ने से ही आजादी दिलवाई ।

हिंसक प्रतीकार की अपेक्षा अहिसक प्रतीकार श्रेष्ठ व उत्तम है, पर है कष्ट-साध्य । इसमे आक्रान्ता की ओर से अनेक यातनाएँ देने पर भी कष्टसहिष्णु बनकर दृढ मनोबल का परिचय देना पडता है । यदि साधक के आत्मबल या मनोबल का पूर्ण विकास हो चुका है, तो वह कभी भी अपने प्रयत्नो मे विफल नही होता । भगवान् महावीर, बुद्ध, ईसा, गाधी आदि के पथ मे अनेक विघ्न-बाधाएँ चट्टाने बनकर खडी हुई, पर उनके मनोबल व प्रेममय व्यवहार के सन्मुख सब को मोम बनना पडा ।

एक बार चैतन्य महाप्रभु बगाल मे अपनी शिष्य-मण्डली के साथ कीर्त्तन करते हुए सडक पर होकर गुजर रहे थे । मृदङ्गादि वाद्यो का आघोष हो रहा था । "हरिबोल ! हरिबोल ! भवसिन्धु पार चल !" की ध्वनि मे सभी मस्त बने हुए थे । तभी दो दुष्टो ने आकर उनके सिर मे प्रहार किया । रक्त के फव्वारे छूट पडे । शिष्य आततायी को पकडने के लिए दौडे । तभी चैतन्य महाप्रभु की हृदय-तन्त्री झकृत हो उठी—"निताई, उन्होने मुझे भले ही मारा, किन्तु मैं तो इनसे प्रेम का ही व्यवहार करूँगा ।" कीर्त्तन पुन प्रारम्भ हुआ । हरिबोल ! हरिबोल की ध्वनि करते हुए चैतन्य महाप्रभु और उनके शिष्य बडे वेग से नाच उठे । कुछ समय के पश्चात् वे दुष्ट स्वय भी इनके रग मे रग कर नाचने लग गये । चैतन्य महाप्रभु की यह अहिसा महान् प्रभावशाली सिद्ध हुई । जीवन भर के लिए उन्होने उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया । इस प्रकार मनोबल व प्रेममय व्यवहार से ही ये महापुरुष अपने अभियान मे निरन्तर सफलता सम्पादन करते रहे हैं ।

ऊपर के विवेचन मे यह स्पष्ट है कि अहिसा न कायर है और न पगु, और न किसी के मार्ग मे बाधक ही है । जो व्यक्ति अहिसा को कायर तथा पगु बतलाता है उसे ठण्डे मस्तिष्क से गहराई से सोचना चाहिए । और अहिसात्मक प्रतीकार के इस स्वर्णिम इतिहास को उठाकर देखना चाहिए ।

अहिंसा और राजनीति

अहिंसा वैयक्तिक व सामाजिक जीवन को समुन्नत बनाने तक ही सीमित नही है, किन्तु राजनैतिक क्षेत्र मे भी इसकी प्रतिष्ठा निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो चुकी है। कुछ आलोचक अहिंसा को अव्यवहार्य बताते है तो कुछ इसे वैयक्तिक बताकर सामाजिक, व राजकीय प्रश्नो के लिए अनुपयोगी मानते है। किन्तु उन्हे मैं कहूँगा कि जैनदर्शन द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का पूर्ण अध्ययन किये बिना वे ऐसी आलोचना न करे। अहिंसा तो विश्व का एक सर्वव्यापी सिद्धान्त है। वह जितना आध्यात्मिक क्षेत्र मे सक्रिय है, उतना ही सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र मे प्रभावशाली है। इसको व्यक्तिगत और सामाजिक व राजकीय प्रश्नो के लिए अनुपयोगी बताना अपनी अज्ञता सिद्ध करना है। मानवीय जीवन के जितने भी क्षेत्र व विषय है, उन सब मे अहिंसा का अप्रतिहत प्रवेश है। धर्म, राजनीति, अर्थ, समाज, व्यापार, अध्यात्म, शिक्षा और विज्ञान आदि सभी क्षेत्रो मे अहिंसा का अखण्ड प्रभुत्व है। सभी क्षेत्र अहिंसा की क्रीडाभूमि है।

कतिपय राजनीतिज्ञो का एक स्वर यह भी है कि शासन जैसे कठोर मार्ग मे यदि अहिंसात्मक नीति को अपनाया गया और जन-समुदाय के साथ नम्रतापूर्ण आचरण किया गया तो राजकीय दृष्टि से नियन्त्रण कठिन हो जायगा। बिना दण्ड, पद्धति के अन्याय किस प्रकार रुक सकेगे ? इसके लिए वे मनु के इस सूक्त को आगे रखते है—"**सर्वो दण्डजितो लोकः**" अथवा "**दण्ड शास्ति प्रजा सर्वा।**"

इसके उत्तर मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अभी-अभी हमारे देश मे विदेशी सत्ता के विरुद्ध एक अहिंसक युद्ध लडा गया। गाधी जी ने अहिंसा के प्रयोगो द्वारा चालीस करोड जनता को चिर-काल की पराधीनता के पश्चात् स्वाधीनता दिलाई। गाधी-युग की स्वाधीनता की देन तो अविस्मरणीय है ही, पर इससे भी अधिक गाधी के दर्शन से सहजतया जो मानव मस्तिष्क मे अहिंसात्मक सृष्टि हुई है, वह अधिक मूल्यवान् है। उनकी राजनैतिक अहिंसा ने कम से कम ऐसा वातावरण तो उत्पन्न कर ही दिया कि आज हमे अहिंसा व उसकी अप्रतिहतशक्ति के लिए विश्व को अधिक समझाने की आवश्यकता नही रही है।

५

विभिन्न मतों में अहिंसा का निरूपण

•

❀ 'अहिंसा' भारतीय सस्कृति का प्राण-भूत तत्त्व है। भारतीय चिन्तन के रोम-रोम मे अहिसा का तत्त्व समाया हुआ है। इसकी उपलब्धि उन्हे माँ के दूध के साथ ही हो जाती है। यहाँ का वातावरण अहिसा का वातावरण है। यहाँ की वायु, अहिसा की वायु है। जो व्यक्ति भारत मे श्वास लेगा उसके जीवन मे न्यूनाधिक अहिसा तत्त्व अवश्य ही प्रवेश करेगा। यह तत्त्व भारतवासियो की बहुत बडी निधि है। इस निधि के महत्त्व को जानने के लिए भारतवासियो को पर्याप्त समय लगा है। इसके लिए बहुत बडी साधना व कठोर तपस्या करनी पडी है। आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लेकर आज दिन तक यदि भारतीय सस्कृति मे कोई मौलिक सुवर्णसूत्र अनुस्यूत हुआ है तो वह अहिंसा ही है। इस सूत्र मे ही विश्व के समस्त धर्मों का समन्वय और सगम हो सकता है।

अहिसा का सिद्धान्त बडा व्यापक और विशाल है। अहिसा की परिधि के अन्तर्गत समस्त धर्म और समस्त दर्शन समवेत हो जाते हैं। यही कारण है कि प्राय सभी धर्मों ने इसे एक स्वर से स्वीकार किया है। हमारे यहाँ के चिन्तन मे, समस्त धर्म-सम्प्रदायो मे अहिसा के सम्बन्ध मे, उसकी महत्ता और उपयोगिता के सम्बन्ध मे दो मत नही है, भले ही उसकी सीमाएँ कुछ भिन्न-भिन्न हो। कोई भी धर्म यह कहने के लिए तैयार नही कि झूठ बोलने मे धर्म है, चोरी करने मे धर्म है या अब्रह्मचर्य सेवन करने मे धर्म है। जब इन्हे धर्म नही कहा जा सकता, तो हिसा को कैसे धर्म कहा जा सकता है ? हाँ, कुछ धर्मों मे एव धर्मग्रन्थो मे हमे हिसा का विधि रूप भी परिलक्षित होता है पर, वह हिसा केवल विचारको की दृष्टि से है, वह धर्म तो इस हिंसा

को भी अहिंसा मानकर ही चलता है। हिंसा को हिंसा के नाम से कोई स्वीकार नही करता। अत किसी भी धर्मशास्त्र मे हिंसा को धर्म और अहिंसा को अधर्म नही कहा है। सभी धर्म अहिंसा को ही परम धर्म स्वीकार करते हैं।

जैन-धर्म

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व आर्यावर्त्त के महामानव भगवान् महावीर ने अहिंसा की नीव को सुदृढ बनाने के लिए हिंसा के प्रति खुला विद्रोह किया। अहिंसा और धर्म के नाम पर हिंसा का जो नग्न नृत्य हो रहा था, जनमानस को भ्रान्त किया जा रहा था, वह भगवान् महावीर से देखा नही गया। उन्होंने हिंसा पर लगे धर्म और अहिंसा के मुखौटो को उतार फेका, और सामान्य जनमानस को उद्‌बुद्ध करते हुए कहा—"हिंसा कभी भी धर्म नही हो सकती। विश्व के सभी प्राणी, वे चाहे छोटे हो या बडे, पशु हो या मानव—जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता।[31] सबको सुख प्रिय है, दु ख अप्रिय है। सबको अपना जीवन प्यारा है।[32] जिस हिंसक व्यापार को तुम अपने लिए पसन्द नही करते, उसे दूसरा भी पसन्द नही करता। जिस दयामय व्यवहार को तुम पसन्द करते हो, उसे सभी पसन्द करते है। यही जिन शासन का, (सब धर्मों का) सार है, निचोड है।[33] किसी के प्राणो को लूटना, उनसे खिलवाड करना धर्म नही हो सकता। अहिंसा, सयम और तप यही वास्तविक धर्म है।[34] इस लोक मे जितने भी त्रस और

---

३१ सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउ।

—दशवैकालिक सूत्र, ६।११

३२. सव्वे पाणा पिआउया सुहसाया दुहपडिकूला।

—आचाराग सूत्र १।२।३

३३ ज इच्छसि अप्पणतो, ज च न इच्छसि अप्पणतो।
त इच्छ परस्स वि, एत्तियग्ग जिणसासणय॥

—बृहत्कल्प भाष्य ४५८४

३४ धम्मो मगलमुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो।

—दशवैकालिक, १।१

स्थावर प्राणी है।[३५] उनकी हिंसा न जान कर करो, न अनजान मे करो और न दूसरो से ही किसी की हिंसा कराओ। क्योकि सब के भीतर एक-सी आत्मा है, हमारी ही तरह सबको अपने प्राण प्यारे है, ऐसा मानकर भय और वैर से मुक्त होकर किसी प्राणी की हिंसा न करो। जो व्यक्ति खुद हिसा करता है, दूसरो से हिंसा करवाता है और दूसरो की हिसा का अनुमोदन करता है, वह अपने लिए वैर ही बढाता है।[३६] अत प्राणियो के प्रति वैसा ही भाव रखो, जैसा अपनी आत्मा के प्रति रखते हो।[३७] सभी जीवो के प्रति अहिंसक होकर रहना चाहिए। सच्चा सयमी वही है जो मन से, वचन से और शरीर से किसी की हिंसा नही करता। यह है—भगवान् महावीर की आत्मौपम्य दृष्टि, जो अहिंसा मे ओत-प्रोत होकर विराट् विश्व के सन्मुख आत्मानुभूति का एक उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत कर रही है।

विधेयात्मक और निषेधात्मक

जैनदर्शन की अहिसा निषेध तक सीमित नही है, किन्तु विधेयात्मक भी है। 'नही मारना'—यह अहिसा का एक पहलू है, उसका दूसरा पहलू है—मैत्री, करुणा और सेवा। यदि हम सिर्फ अहिसा के नकारात्मक पहलू पर ही सोचेगे, तो यह अहिसा की अधूरी समझ होगी। सम्पूर्ण अहिंसा की साधना के लिए प्राणी मात्र के साथ मे मैत्री सम्बन्ध रखना, उसकी सेवा करना, उसे कष्ट से मुक्त करना आदि विधेयात्मक पक्ष पर भी उचित विचार करना होगा। जैन-आगमो मे जहाँ अहिंसा के साठ एकार्थक नाम दिए गए है, वहाँ वह

---

३५ जावन्ति लोए पाणा तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाण वा न हणे नो विघायए॥ —दशवैकालिक

३६ अज्झत्थ सव्वओ सव्व दिस्स पाणे पियायए।
न हणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए॥
—उत्तराध्ययन, ८।१०

३७ सयऽतिवायए पाणे, अदुवाऽन्नेहिं घायए।
हणन्त वाऽणुजाणाइ वेर वड्ढई अप्पणो॥
—सूत्र कृताङ्ग, १।१।१।३

दया, रक्षा, अभय आदि के नाम से भी अभिहित की गई है।[३८] उक्त शब्दो से ध्वनित होने वाला अर्थ विधेयात्मक अहिंसा की सूचना कर रहा है। गणधर सुधर्मा ने अभयदान का महत्त्व दिखलाते हुए कहा है—दानो मे सर्वश्रेष्ठ व उत्तमदान अभय है।[३९] अर्थात् जीवरक्षण की प्रवृत्ति ही दानो मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आचार्यों ने भगवान् महावीर और गौतम का एक सुन्दर सवाद दिया है, जो विधायक अहिंसा पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। एक बार गौतम ने महावीर से कहा—"भगवन्! दो व्यक्ति है। एक आपकी सेवा करता है और दूसरा दीनदुखियो की सेवा करता है। आपकी दृष्टि मे महान् कौन है ? किस व्यक्ति को आप अधिक उत्तम समझते है ?" प्रश्न का समाधान करते हुए महावीर बोले—"गौतम! मेरी सेवा करने वाले की अपेक्षा दीन दुखियो की सेवा करने वाले को मै कही अधिक उत्तम समझता हूँ। वे मेरे भक्त नही जो केवल मेरा नाम जपते है। मेरे सच्चे भक्त और सच्चे अनुयायी तो वे ही है, जो मेरी आज्ञा का पालन करते है।"[४०]

प्रस्तुत सवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुकम्पा दान, अभयदान तथा सेवा आदि अहिंसा के ही रूप है जो प्रवृत्तिप्रधान है। यदि अहिंसा केवल निवृत्तिपरक ही होती तो जैन आचार्य इस प्रकार का कथन कथमपि नही करते। 'अहिंसा' शब्द भाषाशास्त्र की दृष्टि से निषेध-वाचक है। इसी कारण बहुत से व्यक्ति इस भ्रम मे फँस जाते है कि अहिंसा केवल निवृत्तिपरक है। उसमे प्रवृत्ति जैसी कोई चीज नही। किन्तु गम्भीर चिन्तन करने के पश्चात् यह सत्य तथ्य स्पष्ट हुए बिना नही रहेगा कि अहिंसा के अनेक पहलू हैं, उसके अनेक अग है, अत प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो मे अहिंसा समाहित है। प्रवृत्ति-निवृत्ति—दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक कार्य मे जहाँ प्रवृत्ति हो रही

---

३८ प्रश्न व्याकरण सूत्र (सवर द्वार)

(क) दया देहि-रक्षा —प्रश्नव्याकरण वृत्ति

३९. दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण, —सूत्रकृताङ्ग अ० ६

४०. आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति —६६१-६६२

है वहाँ दूसरे कार्य से निवृत्ति भी होती है। ये दोनो पहलू अहिसा के साथ भी जुडे है। जो केवल निवृत्ति को ही प्रधान मानकर चलता है, वह अहिसा की आत्मा को परख ही नही सकता। वह अहिंसा की सम्पूर्ण साधना नही कर सकता। यदि निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति न हो तो उस निवृत्ति का क्या मूल्य है ? प्रवृत्ति–रहित निवृत्ति आखिर निष्क्रियता के गर्त मे ढकेल देती है। निष्क्रियता जीवन का अभिशाप है। जीवनक्षेत्र मे प्रवृत्ति किये बिना कोई भी कार्य सफल व सम्पन्न नही हो सकता।

जैन श्रमण के उत्तर गुणो मे समिति और गुप्ति का विधान है। समिति की मर्यादाएँ प्रवृत्तिपरक है और गुप्ति की मर्यादाएँ निवत्ति-परक है। इससे भी स्पष्ट है कि अहिसा प्रवृत्तिमूलक भी है। प्रवृत्ति-निवृत्ति—दोनो अहिसारूप सिक्के की दो बाजू है। एक दूसरे के अभाव मे अहिंसा अपूर्ण है। यदि अहिंसा के इन दोनो पहलुओ को समझ न सके तो अहिंसा की वास्तविकता से हम बहुत दूर भटक जायेंगे। असद् आचरण से निवृत्त बनो और सद्आचरण मे प्रवृत्ति करो, यही निवृत्ति और प्रवृत्ति की सुन्दर व सक्षिप्त व्याख्या है।

पण्डित सुखलाल जी ने अहिंसा के निवर्त्तक तथा प्रवर्त्तक रूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"अशोक के राज्यकाल का अध्ययन करने से पता चलता है कि उसके व्यवहार मे निवर्तक कार्यो के साथ प्रवर्त्तक कार्यों पर भी बल दिया गया। हिंसानिवृत्ति के साथ-साथ धर्मशाला बनवाना, पानी-पिलाना, पेड लगाना आदि परोपकार के कार्य भी हुए है। अशोक ने प्रचार किया कि हिंसा न करना तो ठीक है, पर दया धर्म भी करना उचित है। अपने लिए अस्तेय व्रत पालन करना, पर दूसरो की मदद के लिए कुछ रखना भी आवश्यक है। जन्म से मास खाने वाले के लिए मास छोडना आसान है, पर होने वाले पशुवध को रोकने का प्रयत्न करना आसान नही है। व्यक्ति स्वय दूसरो को दु ख न दे, लेकिन रास्ते मे कोई घायल या भिखारी पडा है तो उससे बचकर निकल जाने से अहिंसा की पूर्ति नही होती। परन्तु उसे क्या पीडा है ? क्यो है ? उसे क्या मदद दी जाय ? इसकी जानकारी और उपाय किये बिना अहिसा अधूरी ही है अहिंसा केवल

निवृत्ति मे से चरितार्थ नही होती । उसका विचार निवृत्ति मे से अवश्य हुआ है, किन्तु उसकी कृतार्थता प्रवृत्ति मे ही हो सकती है ।"[४१]

एक बार महात्मा गाधी ने उन व्यक्तियो को, जो अहिसा की साधना मे अग्रसर होना चाहते थे, प्रसगवश समझाया था कि अहिंसा जीवन का चमत्कार है, अहिसा की साधना-आराधना करते हुए भी तुम अपने जीवन को शान्त, सन्तुष्ट बना सकते हो । अहिंसा केवल निष्क्रिय नही, अपितु सक्रिय जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है, अर्थात् अहिसक का जीवन केवल निवृत्तिप्रधान ही नही, किन्तु प्रवृत्ति प्रधान भी होता है । यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अहिंसक की प्रवृत्ति भी दया और करुणा की भावना से ओत-प्रोत होती है । उसके प्रत्येक कार्य मे अहिंसा की विराट् भावना मुखरित रहती है ।

साराश यह है कि—अहिसक प्रवृत्ति के बिना समाज का काम नही चल सकता । चूँकि प्रवृत्ति-शून्य अहिंसा समाज मे जडता पैदा कर देती है । मानव एक शुद्ध सामाजिक प्राणी है, वह समाज मे जन्म लेता है, और समाज मे रहकर ही अपना सास्कृतिक विकास व अभ्युदय करता है, उस उपकार के बदले मे वह (मानव) समाज को कुछ देता भी है । यदि कोई इस कर्त्तव्य की राह से विलग हो जाता है तो वह एक प्रकार से उसकी असामाजिकता ही होगी । अत प्रवर्त्तकरूप धर्म के द्वारा समाज की सेवा करना—मानव का प्रथम कर्त्तव्य है, और इस कर्त्तव्य की जागरणा मे ही मानव का अपना व समाज का कल्याण निहित है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन-दर्शन व जैन-धर्म की अहिंसा का स्रोत विधि और निषेध-उभय रूप मे प्रवाहित हुआ ।

बौद्ध-धर्म

बौद्ध-धर्म ने भी हिंसा का आत्यन्तिक विरोध किया है । 'आर्य' की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए तथागत बुद्ध ने कहा है—"प्राणियो की हिंसा करने से कोई आर्य नही कहलाता, किन्तु जो प्राणी की हिंसा नही

---

४१ अहिसा के आचार और विचार का विकास । पृ०७–९

है वहाँ दूसरे कार्य से निवृत्ति भी होती है। ये दोनो पहलू अहिंसा के साथ भी जुडे है। जो केवल निवृत्ति को ही प्रधान मानकर चलता है, वह अहिंसा की आत्मा को परख ही नही सकता। वह अहिंसा की सम्पूर्ण साधना नही कर सकता। यदि निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति न हो तो उस निवृत्ति का क्या मूल्य है ? प्रवृत्ति-रहित निवृत्ति आखिर निष्क्रियता के गर्त मे ढकेल देती है। निष्क्रियता जीवन का अभिशाप है। जीवनक्षेत्र मे प्रवृत्ति किये बिना कोई भी कार्य सफल व सम्पन्न नही हो सकता।

जैन श्रमण के उत्तर गुणो मे समिति और गुप्ति का विधान है। समिति की मर्यादाएँ प्रवृत्तिपरक है और गुप्ति की मर्यादाएँ निवृत्ति-परक है। इससे भी स्पष्ट है कि अहिंसा प्रवृत्तिमूलक भी है। प्रवृत्ति-निवृत्ति—दोनो अहिंसारूप सिक्के की दो बाजू है। एक दूसरे के अभाव मे अहिंसा अपूर्ण है। यदि अहिंसा के इन दोनो पहलुओ को समझ न सके तो अहिंसा की वास्तविकता से हम बहुत दूर भटक जायेगे। असद् आचरण से निवृत्त बनो और सद्‌आचरण मे प्रवृत्ति करो, यही निवृत्ति और प्रवृत्ति की सुन्दर व सक्षिप्त व्याख्या है।

पण्डित सुखलाल जी ने अहिंसा के निवर्त्तक तथा प्रवर्त्तक रूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"अशोक के राज्यकाल का अध्ययन करने से पता चलता है कि उसके व्यवहार मे निवर्तक कार्यों के साथ प्रवर्त्तक कार्यों पर भी बल दिया गया। हिंसानिवृत्ति के साथ-साथ धर्मशाला बनवाना, पानी-पिलाना, पेड लगाना आदि परोपकार के कार्य भी हुए है। अशोक ने प्रचार किया कि हिंसा न करना तो ठीक है, पर दया धर्म भी करना उचित है। अपने लिए अस्तेय व्रत पालन करना, पर दूसरो की मदद के लिए कुछ रखना भी आवश्यक है। जन्म से मास खाने वाले के लिए मास छोडना आसान है, पर होने वाले पशुवध को रोकने का प्रयत्न करना आसान नही है। व्यक्ति स्वय दूसरो को दु ख न दे, लेकिन रास्ते मे कोई घायल या भिखारी पडा है तो उससे बचकर निकल जाने से अहिंसा की पूर्ति नही होती। परन्तु उसे क्या पीडा है ? क्यो है ? उसे क्या मदद दी जाय ? इसकी जानकारी और उपाय किये बिना अहिंसा अधूरी ही है अहिंसा केवल

निवृत्ति मे से चरितार्थ नही होती। उसका विचार निवृत्ति मे से अवश्य हुआ है, किन्तु उसकी कृतार्थता प्रवृत्ति मे ही हो सकती है।"[४१]

एक बार महात्मा गाधी ने उन व्यक्तियो को, जो अहिसा की साधना मे अग्रसर होना चाहते थे, प्रसगवश समझाया था कि अहिसा जीवन का चमत्कार है, अहिसा की साधना-आराधना करते हुए भी तुम अपने जीवन को शान्त, सन्तुष्ट बना सकते हो। अहिंसा केवल निष्क्रिय नही, अपितु सक्रिय जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है, अर्थात् अहिसक का जीवन केवल निवृत्तिप्रधान ही नही, किन्तु प्रवृत्ति प्रधान भी होता है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अहिंसक की प्रवृत्ति भी दया और करुणा की भावना से ओत-प्रोत होती है। उसके प्रत्येक कार्य मे अहिसा की विराट् भावना मुखरित रहती है।

साराश यह है कि—अहिंसक प्रवृत्ति के बिना समाज का काम नही चल सकता। चूँकि प्रवृत्ति-शून्य अहिसा समाज मे जडता पैदा कर देती है। मानव एक शुद्ध सामाजिक प्राणी है, वह समाज मे जन्म लेता है, और समाज मे रहकर ही अपना सास्कृतिक विकास व अभ्युदय करता है, उस उपकार के बदले मे वह (मानव) समाज को कुछ देता भी है। यदि कोई इस कर्त्तव्य की राह से विलग हो जाता है तो वह एक प्रकार से उसकी असामाजिकता ही होगी। अत प्रवर्त्तकरूप धर्म के द्वारा समाज की सेवा करना—मानव का प्रथम कर्त्तव्य है, और इस कर्त्तव्य की जागरणा मे ही मानव का अपना व समाज का कल्याण निहित है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन-दर्शन व जैन-धर्म की अहिसा का स्रोत विधि और निषेध-उभय रूप मे प्रवाहित हुआ।

बौद्ध-धर्म

●

बौद्ध-धर्म ने भी हिसा का आत्यन्तिक विरोध किया है। 'आर्य' की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए तथागत बुद्ध ने कहा है—"प्राणियो की हिंसा करने से कोई आर्य नही कहलाता, किन्तु जो प्राणी की हिंसा नही

---

४१ अहिसा के आचार और विचार का विकास। पृ०७–६

करता उसी को आर्य कहा जाता है।[४२] सब लोग दण्ड से डरते है, मृत्यु से भय खाते है। दूसरो को अपनी तरह जानकर मानव न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करे।[४३] जो न स्वय किसी का घात करता है, न दूसरो से करवाता है, न स्वय किसी को जीतता है, वह सर्वप्राणियो का मित्र होता है, उसका किसी के साथ वैर नही होता।[४४] जैसा मै हूँ—वैसे ये है, तथा जैसे ये हैं—वैसा मै हूँ, इस प्रकार आत्मसदृश मानकर न किसी का घात करे, न कराए।[४५] सभी प्राणी सुख के चाहने वाले है, इनका जो दण्ड से घात नही करता है, वह सुख का अभिलाषी मानव अगले जन्म मे सुख को प्राप्त करता है।[४६] इस प्रकार तथागत बुद्ध ने भी हिंसा का निषेध करके अहिंसा की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया है।

तथागत बुद्ध का जीवन 'महाकारुणिक जीवन' कहलाता है। दीन-दुखितो के प्रति उनके मन मे अत्यन्त करुणा भरी थी। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र मे भी उन्होने तीर्थंकर महावीर की भाँति अनेक प्रसगो पर अहिसात्मक प्रतीकार के उदाहरण रखे। उनकी अहिसात्मक और शान्ति प्रिय वाणी से अनेक बार घात-प्रतिघात मे, शौर्यप्रदर्शन मे क्षत्रियो का खून बहता-बहता रुक गया।

'बुद्धचर्या' मे बुद्ध का एक जीवन-प्रसग है कि एक बार ग्रीष्म के प्रचण्डताप से सरोवर, नदियो और नालो का जल सूख गया था।

---

४२ न तेन आरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणान, आरियोति पवुच्चति ॥

—धम्मपद १६।१५

४३ सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्वेस जीवित पिय।
अत्तान उपम कत्वा न हनेय्य न घातये ॥

—धम्मपद १०।१

४४ यो न हन्तिन घातेति, न जिनाति न जायते।
मित्त सो सब्बभूतेसु वेर तस्स न केनचीति ॥ —इतिवुत्तक, पृ० २०

४५. यथा अह तथा एते, यथा एते तथा अह।
अत्तानं उपम कत्वा, न हनेय्य न घातये ॥ — सुत्तनिपात, ३।३।७।२७

४६ सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन न विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुख ॥ —उदान पृ० १२

सर्वत्र जलाभाव के कारण आकुलता-व्याकुलता और छटपटाहट छा रही थी। कपिलवस्तु और कोलियनगर की सीमा पर बहने वाली रोहिणी नदी जेठ मास की भयकर गर्मी से सिमटकर एक छोटी-सी धारा के रूप मे बह रही थी। इस पर शाक्यो और कोलियो मे रोहिणी की धारा के उपयोग के सम्बन्ध मे विवाद छिड गया।

शाक्यो ने उस पानी का उपयोग सिर्फ अपने ही खेतो के लिए करने का आग्रह किया और कोलियो ने उस पर अपना हक जतलाते हुए स्वय ही उस पानी का उपयोग करने की जिद्द ठानली। दोनो राजकुलो मे विवाद बढा, क्रोध की आग प्रज्ज्वलित हो उठी। प्रति-स्पर्धा के आवेश मे दोनो ओर की तलवारे खिचकर म्यान से बाहर आने को आतुर हो गई।

तथागत बुद्ध उस समय रोहिणी के तट पर ही कपिलवस्तु मे चारिका कर रहे थे। बुद्ध ने आमने-सामने डटे सैनिको से पूछा—

"किस बात का कलह है महाराजो!"

"रोहिणी के पानी का झगडा है, भते!"—दोनो ओर से उत्तर मिला।

"पानी का क्या मूल्य है, महाराजो!"—तथागत ने दोनो सेना-पतियो की ओर देख कर उद्बोधन किया।

"कुछ भी नही, भन्ते! पानी बिना मूल्य कही पर भी मिल जाता है।"—शाक्यो और कोलियो का उत्तर था।

"क्षत्रियो का क्या मूल्य है, महाराजो!"—तथागत की गम्भीर-वाणी प्रस्फुटित हुई।

"क्षत्रिय का मूल्य लगाया नही जा सकता भन्ते! वह अनमोल है।"—दोनो ओर से प्रत्युत्तर मिला।

"अनमोल क्षत्रियो का रक्त साधारण उदक के लिए बहाना क्या उचित है?" तथागत के इस प्रश्न पर सब मौन, नतशिर थे। "शत्रुओ मे अशत्रु होकर जीना परम सुख है, वैरियो मे अवैरी होकर रहना चाहिए।" बुद्ध के प्रेममय सन्देश पर दोनो दलो मे समझौता हो गया।

तीर्थंकर महावीर की भाति बुद्ध भी श्रमण-सस्कृति के एक महान् प्रतिनिधि थे। उन्होने भी सामाजिक व राजनैतिक कारणो से होने वाली हिंसा की आग को प्रेम और शान्ति के जल से शान्त करने के

सफल प्रयोग किए, और इस आस्था को सुदृढ बनाया कि समस्या का प्रतीकार सिर्फ तलवार ही नही, प्रेम और सद्भाव भी है। यही अहिंसा का मार्ग वस्तुत शान्ति और समृद्धि का मार्ग है।

वैदिक-धर्म

वैदिक धर्म भी अहिंसा-मूलक धर्म है। "**अहिंसा परमो धर्म.**" के अटल सिद्धान्त को सन्मुख रखकर उसने अहिंसा की विवेचना स्थान-स्थान पर की है। अहिंसा ही सब से उत्तम पावन धर्म है, अत मनुष्य को कभी भी, कही भी, किसी भी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिए।[४७] जो कार्य तुम्हे पसन्द नही है, उसे दूसरो के लिए कभी न करो।[४८] इस नश्वर जीवन मे न तो किसी प्राणी की हिसा करो और न किसी को पीडा पहुँचाओ। किन्तु सभी आत्माओ के प्रति मैत्री-भावना स्थापित कर विचरण करते रहो। किसी के साथ वैर न करो।[४९] जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे है, उसी प्रकार सभी प्राणियो को अपने-अपने प्राण प्यारे है। इसलिए बुद्धिमान् और पुण्यशाली जो लोग है, उन्हे चाहिए, कि वे सभी प्राणियो को अपने समान समझे।[५०]

इस विश्व मे अपने प्राणो से प्यारी दूसरी कोई वस्तु प्रिय नही है। इसलिए मानव जैसे अपने ऊपर दया-भाव चाहता है, उसी प्रकार

---

४७ अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृता वर ।
तस्मात् प्राणभृतः सर्वान् न हिंस्यान्मानुष क्वचित् ॥
—महाभारत (आदि पर्व) ११।१३

४८ आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् । —मनुस्मृति

४९ न हिंस्यात् सर्वभूतानि, मैत्रायणगतश्चरेत् ।
नेद जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥
—महाभारत (शान्ति पर्व), २७८।५

५० प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा ।
आत्मौपम्येन गन्तव्य बुद्धिमद्भिर्महात्मभि ॥
- महाभारत (अनुशासन पर्व), ११५।१६

दूसरो पर भी दया करे।[५१] दयालु आत्मा ही सभी प्राणियो को अभयदान देता है, उसे भी सभी अभयदान देते है।[५२] 'अहिंसा'—यही एक मात्र पूर्ण धर्म है। हिंसा, धर्म और तप का नाश करने वाली है।[५३] ऐसा कहकर महाभारतकार महर्षि वेदव्यास जी ने अहिंसा भगवती की शतशत वन्दना की है। वेदव्यास जी वैदिक धर्म के महान् प्रतिनिधि है, अत उनका प्रस्तुत निरूपण सम्पूर्ण वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाला है। अत यह स्पष्ट है कि वैदिक धर्म भी अहिंसा की महत्ता को एक स्वर मे स्वीकार करता है।

वैदिक-सस्कृति मे अहिसा की जो गौरव-गाथा वर्णित है, उसका निदर्शन ऊपर कर दिया गया है। किन्तु कभी-कभी यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि जहाँ अहिसा की इतनी गुण-गरिमा बखानी गई है, उस सस्कृति और परम्परा मे नरबलि तथा पशुबलि जैसी हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ कैसे चली, और याज्ञिक-हिंसा को अहिसा का रूप क्यो दिया गया ?

इस प्रश्न के उत्तर मे भारत की सास्कृतिक परम्परा का इतिहास देखना होगा। विद्वानो का मत है कि बलि, और यज्ञ की सस्कृति मूलत आर्य-सस्कृति नही है, किन्तु आर्य-सस्कृति के साथ जब द्रविड आदि आर्येतर सस्कृतियो का मिश्रण हुआ, तब ये सब प्रथाएँ आर्य-सस्कृति मे समाविष्ट हो गई। नरबलि और पशुबलि तथा यज्ञ मे पशु आदि का होम आर्येतर सस्कृति की देन है। वेदो मे यज्ञ का वर्णन है, किन्तु वे यज्ञ बहुत ही सौम्य होते थे, उनमे कुछ वनस्पति-विशेष, धान्य, तथा घृत व दुग्ध आदि की आहुतियाँ दी जाती थी। इस सन्दर्भ मे 'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र' मे वर्णित नारद और

---

५१ नहि प्राणात् प्रियतर लोके किञ्चन विद्यते।
तस्माद् दया नर कुर्यात् यथात्मनि तथा परे ॥
महाभारत (अनुशासन पर्व) ११६।८

५२ अभय सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापर ।
अभय तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम ॥
महाभारत (अनुशासन पर्व), ११६। १३

५३ अहिंसा सकलो धर्म । —महाभारत, (शान्ति पर्व)

सफल प्रयोग किए, और इस आस्था को सुदृढ बनाया कि समस्या का प्रतीकार सिर्फ तलवार ही नही, प्रेम और सद्‌भाव भी है। यही अहिंसा का मार्ग वस्तुत शान्ति और समृद्धि का मार्ग है।

वैदिक-धर्म

❁

वैदिक धर्म भी अहिंसा-मूलक धर्म है। "**अहिंसा परमो धर्म.**" के अटल सिद्धान्त को सन्मुख रखकर उसने अहिंसा की विवेचना स्थान-स्थान पर की है। अहिंसा ही सब से उत्तम पावन धर्म है, अत मनुष्य को कभी भी, कही भी, किसी भी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिए।[४७] जो कार्य तुम्हे पसन्द नही है, उसे दूसरो के लिए कभी न करो।[४८] इस नश्वर जीवन मे न तो किसी प्राणी की हिंसा करो और न किसी को पीडा पहुँचाओ। किन्तु सभी आत्माओ के प्रति मैत्री-भावना स्थापित कर विचरण करते रहो। किसी के साथ वैर न करो।[४९] जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे है, उसी प्रकार सभी प्राणियो को अपने-अपने प्राण प्यारे है। इसलिए बुद्धिमान् और पुण्यशाली जो लोग है, उन्हे चाहिए, कि वे सभी प्राणियो को अपने समान समझे।[५०]

इस विश्व मे अपने प्राणो से प्यारी दूसरी कोई वस्तु प्रिय नही है। इसलिए मानव जैसे अपने ऊपर दया-भाव चाहता है, उसी प्रकार

---

४७ अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृता वर।
तस्मात् प्राणभृतः सर्वान् न हिंस्यान्मानुष क्वचित्॥
—महाभारत (आदि पर्व) ११।१३

४८ आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्। —मनुस्मृति

४९ न हिंस्यात् सर्वभूतानि, मैत्रायणगतश्चरेत्।
नेद जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित्॥
—महाभारत (शान्ति पर्व), २७८।५

५० प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा।
आत्मौपम्येन गन्तव्यं बुद्धिमद्भिर्महात्मभि॥
- महाभारत (अनुशासन पर्व), ११५।१९

दूसरो पर भी दया करे।[51] दयालु आत्मा ही सभी प्राणियो को अभयदान देता है, उसे भी सभी अभयदान देते है।[52] 'अहिसा'—यही एक मात्र पूर्ण धर्म है। हिसा, धर्म और तप का नाश करने वाली है।[53] ऐसा कहकर महाभारतकार महर्षि वेदव्यास जी ने अहिसा भगवती की शतशत वन्दना की है। वेदव्यास जी वैदिक धर्म के महान् प्रतिनिधि हैं, अत उनका प्रस्तुत निरूपण सम्पूर्ण वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाला है। अत यह स्पष्ट है कि वैदिक धर्म भी अहिसा की महत्ता को एक स्वर मे स्वीकार करता है।

वैदिक-सस्कृति मे अहिसा की जो गौरव-गाथा वर्णित है, उसका निदर्शन ऊपर कर दिया गया है। किन्तु कभी-कभी यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि जहाँ अहिसा की इतनी गुण-गरिमा बखानी गई है, उस सस्कृति और परम्परा मे नरबलि तथा पशुबलि जैसी हिसात्मक प्रवृत्तियाँ कैसे चली, और याज्ञिक-हिसा को अहिसा का रूप क्यो दिया गया ?

इस प्रश्न के उत्तर मे भारत की सास्कृतिक परम्परा का इतिहास देखना होगा। विद्वानो का मत है कि बलि, और यज्ञ की सस्कृति मूलत आर्य-सस्कृति नही है, किन्तु आर्य-सस्कृति के साथ जब द्रविड आदि आर्येतर सस्कृतियो का मिश्रण हुआ, तब ये सब प्रथाएँ आर्य-सस्कृति मे समाविष्ट हो गई। नरबलि और पशुबलि तथा यज्ञ मे पशु आदि का होम आर्येतर सस्कृति की देन है। वेदो मे यज्ञ का वर्णन है, किन्तु वे यज्ञ बहुत ही सौम्य होते थे, उनमे कुछ वनस्पति-विशेष, धान्य, तथा घृत व दुग्ध आदि की आहुतियाँ दी जाती थी। इस सन्दर्भ मे 'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र' मे वर्णित नारद और

---

५१ नहि प्राणात् प्रियतर लोके किञ्चन विद्यते।
तस्माद् दया नर कुर्यात् यथात्मनि तथा परे॥
महाभारत (अनुशासन पर्व) ११६।८

५२ अभय सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापर।
अभय तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुमः॥
महाभारत (अनुशासन पर्व), ११६। १३

५३ अहिसा सकलो धर्म। —महाभारत, (शान्ति पर्व)

सफल प्रयोग किए, और इस आस्था को सुदृढ बनाया कि समस्या का प्रतीकार सिर्फ तलवार ही नही, प्रेम और सद्भाव भी है। यही अहिंसा का मार्ग वस्तुत शान्ति और समृद्धि का मार्ग है।

वैदिक-धर्म

वैदिक धर्म भी अहिंसा-मूलक धर्म है। **"अहिंसा परमो धर्म."** के अटल सिद्धान्त को सन्मुख रखकर उसने अहिंसा की विवेचना स्थान-स्थान पर की है। अहिंसा ही सब से उत्तम पावन धर्म है, अत मनुष्य को कभी भी, कही भी, किसी भी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिए।[४७] जो कार्य तुम्हे पसन्द नही है, उसे दूसरो के लिए कभी न करो।[४८] इस नश्वर जीवन मे न तो किसी प्राणी की हिसा करो और न किसी को पीडा पहुँचाओ। किन्तु सभी आत्माओ के प्रति मैत्री-भावना स्थापित कर विचरण करते रहो। किसी के साथ वैर न करो।[४९] जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे है, उसी प्रकार सभी प्राणियो को अपने-अपने प्राण प्यारे है। इसलिए बुद्धिमान् और पुण्यशाली जो लोग है, उन्हे चाहिए, कि वे सभी प्राणियो को अपने समान समझे।[५०]

इस विश्व मे अपने प्राणो से प्यारी दूसरी कोई वस्तु प्रिय नही है। इसलिए मानव जैसे अपने ऊपर दया-भाव चाहता है, उसी प्रकार

---

४७ अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृता वर ।
तस्मात् प्राणभृतः सर्वान् न हिंस्यान्मानुष क्वचित् ॥
—महाभारत (आदि पर्व) ११।१३

४८ आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् । —मनुस्मृति

४९ न हिंस्यात् सर्वभूतानि, मैत्रायणगतश्चरेत् ।
नेद जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥
—महाभारत (शान्ति पर्व), २७८।५

५०. प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा ।
आत्मौपम्येन गन्तव्य बुद्धिमद्भिर्महात्मभि ॥
- महाभारत (अनुशासन पर्व), ११५।१९

दूसरो पर भी दया करे।"[51] दयालु आत्मा ही सभी प्राणियो को अभयदान देता है, उसे भी सभी अभयदान देते है।"[52] 'अहिसा'—यही एक मात्र पूर्ण धर्म है। हिसा, धर्म और तप का नाश करने वाली है।"[53] ऐसा कहकर महाभारतकार महर्षि वेदव्यास जी ने अहिसा भगवती की शतशत वन्दना की है। वेदव्यास जी वैदिक धर्म के महान् प्रतिनिधि है, अत उनका प्रस्तुत निरूपण सम्पूर्ण वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाला है। अत यह स्पष्ट है कि वैदिक धर्म भी अहिसा की महत्ता को एक स्वर मे स्वीकार करता है।

वैदिक-सस्कृति मे अहिसा की जो गौरव-गाथा वर्णित है, उसका निदर्शन ऊपर कर दिया गया है। किन्तु कभी-कभी यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि जहाँ अहिसा की इतनी गुण-गरिमा बखानी गई है, उस सस्कृति और परम्परा मे नरवलि तथा पशुवलि जैसी हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ कैसे चली, और याज्ञिक-हिंसा को अहिसा का रूप क्यो दिया गया ?

इस प्रश्न के उत्तर मे भारत की सास्कृतिक परम्परा का इतिहास देखना होगा। विद्वानो का मत है कि बलि, और यज्ञ की सस्कृति मूलत आर्य-सस्कृति नही है, किन्तु आर्य-सस्कृति के साथ जब द्रविड आदि आर्येतर सस्कृतियो का मिश्रण हुआ, तब ये सब प्रथाएँ आर्य-सस्कृति मे समाविष्ट हो गई। नरबलि और पशुबलि तथा यज्ञ मे पशु आदि का होम आर्येतर सस्कृति की देन है। वेदो मे यज्ञ का वर्णन है, किन्तु वे यज्ञ बहुत ही सौम्य होते थे, उनमे कुछ वनस्पति-विशेष, धान्य, तथा घृत व दुग्ध आदि की आहुतियाँ दी जाती थी। इस सन्दर्भ मे 'त्रिपष्टिशलाका पुरुषचरित्र' मे वर्णित नारद और

---

५१. नहि प्राणात् प्रियतर लोके किञ्चन विद्यते।
तस्माद् दया नर कुर्यात् यथात्मनि तथा परे॥

महाभारत (अनुशासन पर्व) ११६।८

५२ अभय सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापर।
अभय तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम॥

महाभारत (अनुशासन पर्व), ११६। १३

५३ अहिसा सकलो धर्म। —महाभारत, (शान्ति पर्व)

वसु का सम्वाद दर्शनीय है, और जो वैदिक ग्रन्थो मे भी कई स्थलो पर उपलब्ध होता है।

उस सम्वाद मे वसु वैदिकसूक्त—**अजैर्यष्टव्यम्** का अर्थ 'बकरा' करता है, तब नारद उसे गुरु के द्वारा बताए गए सही अर्थ का बोध कराता है कि 'अज' का अर्थ 'पुराना धान्य' होता है, ऐसा गुरु ने कहा था। -

साराश यह है कि जिस श्रमण और वैदिक-सस्कृति का प्राण अहिंसा और करुणा रही है, वह सस्कृति नरबलि एव पशुबलि जैसे अमानुषिक क्रूर कार्यो को धर्म के साथ नही जोड सकती।

गीतोपदेष्टा श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को जो 'युद्धस्व' का प्रेरणा-प्रद सन्देश दिया है, वह एक राजनीति की अनिवार्यता है। किन्तु अगर युद्ध और सहार ही धर्म होता तो फिर वे शान्तिदूत बनकर भारत-भूमि को युद्ध की ज्वालाओ से बचाने का प्रयत्न क्यो करते ? और फिर—"**शुनि चैव स्वपाके च पण्डिता समदर्शिन**" का सूत्र देकर समता और समत्वयोग की साधना पर इतना बल क्यो देते ?

वैदिक-सस्कृति मे हिसा और युद्ध का जहाँ भी विधान मिलता है, वह अन्य सस्कृति, एव कुछ स्वार्थों का प्रभाव मात्र है, और युद्ध भी समय की एक अपरिहार्यता का समाधान मात्र है। वस्तुत तो श्रमण सस्कृति की भाँति वैदिक-सस्कृति भी अहिसा-प्रधान रही है। वहाँ भी दया और करुणा का अमर सगीत मुखरित होता रहा।

इस्लाम धर्म

●

इस्लाम धर्म की बुनियाद भी अहिसा पर ही टिकी हुई है। इस्लामधर्म मे कहा है—"खुदा सारे जगत् (खल्क) का पिता (खालिक) है। जगत् मे जितने प्राणी हैं, वे सभी खुदा के पुत्र (बन्दे) है।" कुरान शरीफ की शुरुआत मे ही अल्लाहताला 'खुदा' का विशेषण दिया है—"**बिस्मिल्लाह रहिमानुर्रहीम**"—इस प्रकार का मगलाचरण देकर यह बताया गया है कि सब जीवो पर रहम करो।

जो पशु पृथ्वी पर चलते है और जो पक्षी अपनी पाँखो मे आकाश मे उडते है, वे दूसरे कोई नही, सब तुम्हारे जैसे ही जीवधारी प्राणी

है, अर्थात् उनको भी अपना जीवन उतना ही प्यारा है, जितना कि तुम्हे अपना है।[५४] मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी हजरतअली साहब ने कहा है—"हे मानव ! तू पशु-पक्षियो की कब्र अपने पेट मे मत बना" अर्थात् पशु-पक्षियो को मार कर खाना नही चाहिए। इसी प्रकार 'दीनइलाही' के प्रवर्त्तक मुगल सम्राट अकबर ने कहा है "मै अपने पेट को दूसरे जीवो का कब्रस्तान बनाना नही चाहता। जिसने किसी की जान बचाई— उसने मानो सारे इन्सानो को जिन्दगी बख्शी।[५५]"

उपरोक्त उदाहरणो से यही प्रतिभासित होता है कि इस्लाम धर्म भी अपने साथ अहिंसा की दृष्टि को लेकर चला है। बाद मे उसमे जो हिंसा का स्वर गूँजने लगा, उसका प्रमुख कारण स्वार्थी व रस-लोलुप व्यक्ति ही है। उन्होने हिंसा का समावेश करके इस्लाम-धर्म को वदनाम कर दिया है। वरना उसके धर्म ग्रन्थो मे हिंसा करने का कोई प्रमाण नही मिलेगा।

ईसाई धर्म

●

प्रेम के मसीहा महात्मा ईसा ने यह स्पष्ट कहा है—"तू अपनी तलवार म्यान मे रख ले, क्योकि जो लोग तलवार चलाते है, वे सब तलवार से ही नाश किये जायँगे[५६]" अन्यत्र भी बतलाया है—"किसी भी जीव की हिंसा मत करो। तुमसे कहा गया गया था कि तुम अपने पडौसी से प्रेम करो और अपने दुश्मन से घृणा। पर मै तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने दुश्मन को प्यार करो और जो लोग तुम्हे सताते है, उनके लिए प्रार्थना करो। तभी तुम स्वर्ग मे रहने वाले अपने पिता की सतान ठहरोगे, क्योकि वह भले और बुरे—दोनो पर अपना सूर्य उदय करता है। धर्मियो और अधर्मियो—दोनो पर मेह वरसाता है। यदि तुम उन्ही से प्रेम करो, जो तुम से प्रेम करते है, तो तुमने कौन-मार्के की बात की ?"[५७] इतना ही नही, वरन् अहिंसा का वह पैगाम

---

५४ कुरान शरीफ —सुराने आम।

५५ व मन् अहया हा फकअन्नमा अह्यन्नास जमीअन।

—कुरान शरीफ ५।३५

५६ मत्ती। —२।५१-५२

५७ मत्ती। —५।४५-४६

तो काफी गहरी उडान भर बैठा है—अपने शत्रु से प्रेम रखो। जो तुम से वैर करे, उनका भी भला सोचो, और करो। जो तुम्हे शाप दे, उन्हे आशीर्वाद दो। जो तुम्हारा अपमान करे, उसके लिए प्रार्थना करो। जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड मारे, उसकी तरफ दूसरा भी गाल कर दो। तुम्हारी चादर छीन ले, उसे अपना कुरता भी ले लेने दो।[५८]

ईसाई धर्म का मन्तव्य है कि जगत् के समस्त पदार्थो का मुझको सपूर्ण ज्ञान हो, परन्तु यदि मुझ मे दया नही है तो प्रभु के समक्ष वह ज्ञान मेरे क्या काम आयेगा ? वह तो मेरा न्याय कर्मानुसार ही करेगा।[५९] इस प्रकार ईसाई धर्म भी अहिंसा का ही मण्डन करता है।

ईसाई धर्म मे भारतीय सस्कृति की तरह प्रेम, करुणा और सेवा की अत्यन्त सु दर भावनाएँ व्यक्त की गई है। यह बात दूसरी है कि स्वार्थी और अहवादी व्यक्तियो ने धर्म के नाम पर लाखो—करोडो यहूदियो का खून बहाया, धर्मयुद्ध खेले और करुणा की जगह तलवार तथा प्रेम की जगह दभ का प्रचार करने लगे।

मध्यकालीन ईसाई धर्म का रूप वस्तुत एक धर्म का रूप नही है, कितु स्वार्थी और जगखोर व्यक्तियो के अहकार का निदर्शन है। धर्म की सही आत्मा को समझने के लिए ईसामसीह के जीवन दर्शन एव उनके उपदेशो को पढना चाहिए।

यहूदी धर्म

यहूदी धर्म मे हिंसा का खण्डन करते हुए बताया गया है कि—वह आदमी दुष्ट कहा जायगा, जो किसी भाई के खिलाफ हाथ उठाता है, फिर वह भले ही किसी को मारे नही।[६०] किसी आदमी के आत्म-सम्मान को चोट नही पहुचानी चाहिए। लोगो के सामने किसी

---

५८ लूका —६।२७–३७।

५९ क्राइस्टनु —अनुकरण।

६० सिफरा लैव्य —व्यवस्था, १९।२।

आदमी को अपमानित करना उतना ही बडा पाप है, जितना उसका खून कर देना।[61]

अहिंसा के सिद्धान्त को आत्मसात् करते हुए वताया गया है कि—यदि तुम्हारा शत्रु तुम्हे मारने को आये और वह भूखा-प्यासा तुम्हारे घर पहुँचे—तो उसे खाना दो, पानी दो।[62]

हम यह देखे कि कोई आदमी सकट मे है, डूब रहा है, उस पर दस्यु-डाकू या हिंसक शेर-चीते आदि हमला कर रहे है, तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसकी रक्षा करे। देह-बल के अभाव मे यदि ऐसा न कर सके, तो हमे अपने धन-बल से उसकी प्राण-रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए।[63] प्राणीमात्र के प्रति निर्वैरभाव रखने की प्रेरणा प्रदान करते हुए वतलाया है—अपने मन मे किसी के प्रति वैर का, दुश्मनी का दुर्भाव मत रखो।[64]

इस प्रकार यहूदी-धर्म के उन्नायको की दृष्टि भी अहिंसा से ही आप्लावित प्रतीत होती है।

पारसी और ताओ धर्म

पारसी धर्म के महान् प्रवर्त्तक महात्मा जरथुस्त ने अपनी गाथा मे कहा है—"जो सवसे अच्छे प्रकार की जिन्दगी गुजारने से लोगो को रोकते ह, अटकाते है और पशुओ को मारने की खुश-खुशाल सिफारिश करते हे, उनको अहुरमजद वुरा समझते हे।"[65] अत अपने मन मे किसी से वदला लेने की भावना मत रखो। सोचो कि तुम अपने दुश्मन से वदला लोगे तो तुम्हे किस प्रकार की हानि, किस प्रकार की चोट, और किस प्रकार का सर्वनाश भुगतना पड सकता है, और किस प्रकार वदले की भावना तुम्हे लगातार सताती रहेगी। अत

६१ ता० बावा मेतलिया — ५८ (ब)।

६२ नीति। २५।२१ परमिदारास

६३ ता० सनहेद्रिन। —७३ अ०

६४. तोरा। —लैव्य व्यवस्था १९।१७

नोट —प्रस्तुत प्रकरण का आधार है—यहूदी धर्म क्या कहता है?

—श्रीकृष्णदत्त भट्ट

६५ गाथा। —हा० ३४,३

तो काफी गहरी उडान भर बैठा है—अपने शत्रु से प्रेम रखो। जो तुम से वैर करे, उनका भी भला सोचो, और करो। जो तुम्हे शाप दे, उन्हे आशीर्वाद दो। जो तुम्हारा अपमान करे, उसके लिए प्रार्थना करो। जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड मारे, उसकी तरफ दूसरा भी गाल कर दो। तुम्हारी चादर छीन ले, उसे अपना कुरता भी ले लेने दो।[५८]

ईसाई धर्म का मन्तव्य है कि जगत् के समस्त पदार्थो का मुझको सपूर्ण ज्ञान हो, परन्तु यदि मुझ मे दया नही है तो प्रभु के समक्ष वह ज्ञान मेरे क्या काम आयेगा ? वह तो मेरा न्याय कर्मानुसार ही करेगा।[५९] इस प्रकार ईसाई धर्म भी अहिंसा का ही मण्डन करता है।

ईसाई धर्म मे भारतीय सस्कृति की तरह प्रेम, करुणा और सेवा की अत्यन्त सु दर भावनाएँ व्यक्त की गई है। यह बात दूसरी है कि स्वार्थी और अहवादी व्यक्तियो ने धर्म के नाम पर लाखो—करोडो यहूदियो का खून बहाया, धर्मयुद्ध खेले और करुणा की जगह तलवार तथा प्रेम की जगह दभ का प्रचार करने लगे।

मध्यकालीन ईसाई धर्म का रूप वस्तुत एक धर्म का रूप नही है, किंतु स्वार्थी और जगखोर व्यक्तियो के अहकार का निदर्शन हैं। धर्म की सही आत्मा को समझने के लिए ईसामसीह के जीवन दर्शन एव उनके उपदेशो को पढना चाहिए।

यहूदी धर्म

यहूदी धर्म मे हिंसा का खण्डन करते हुए बताया गया है कि—वह आदमी दुष्ट कहा जायगा, जो किसी भाई के खिलाफ हाथ उठाता है, फिर वह भले ही किसी को मारे नही।[६०] किसी आदमी के आत्म-सम्मान को चोट नही पहुचानी चाहिए। लोगो के सामने किसी

---

५८ लूका —६।२७–३७।

५९ क्राइस्टनु —अनुकरण।

६० सिफरा लैव्य —व्यवस्था, १९।२।

आदमी को अपमानित करना उतना ही वडा पाप है, जितना उसका खून कर देना।[६१]

अहिंसा के सिद्धान्त को आत्मसात् करते हुए बताया गया है कि—यदि तुम्हारा शत्रु तुम्हे मारने को आये और वह भूखा-प्यासा तुम्हारे घर पहुँचे—तो उसे खाना दो, पानी दो।[६२]

हम यह देखे कि कोई आदमी सकट मे है, डूब रहा है, उस पर दस्यु-डाकू या हिसक शेर-चीते आदि हमला कर रहे हैं, तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसकी रक्षा करें। देह-बल के अभाव मे यदि ऐसा न कर सके, तो हमे अपने धन-वल से उसकी प्राण-रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए।[६३] प्राणीमात्र के प्रति निर्वैरभाव रखने की प्रेरणा प्रदान करते हुए बतलाया है—अपने मन मे किसी के प्रति वैर का, दुश्मनी का दुर्भाव मत रखो।[६४]

इस प्रकार यहूदी-धर्म के उन्नायको की दृष्टि भी अहिसा से ही आप्लावित प्रतीत होती है।

पारसी और ताओ धर्म

पारसी धर्म के महान् प्रवर्त्तक महात्मा जरथुस्त ने अपनी गाथा मे कहा है—"जो सबसे अच्छे प्रकार की जिन्दगी गुजारने से लोगो को रोकते हे, अटकाते है और पशुओ को मारने की खुश-खुशाल सिफारिश करते हे, उनको अहुरमजद बुरा समझते है।"[६५] अत अपने मन मे किसी से बदला लेने की भावना मत रखो। सोचो कि तुम अपने दुश्मन मे वदला लोगे तो तुम्हे किस प्रकार की हानि, किस प्रकार की चोट, और किस प्रकार का सर्वनाश भुगतना पड सकता है, और किस प्रकार वदले की भावना तुम्हे लगातार सताती रहेगी। अत

---

६१ ता० बावा मेतलिया — ५८ (ब)।

६२ नीति। २५।२१ परमिदारास

६३ ता० सनहेद्रिन। —७३ अ०

६४. तोरा। —लैव्य व्यवस्था १६।१७

नोट —प्रस्तुत प्रकरण का आधार है—यहूदी धर्म क्या कहता है?

—श्रीकृष्णदत्त भट्ट

६५. गाथा। —हा० ३४,३

दुश्मन से भी बदला मत लो। बदले की भावना से अभिप्रेरित होकर कभी कोई पापकर्म मत करो। मन मे सदा सर्वदा सुन्दर विचारो के दीपक सजोए रखो।[६६]

ताओ धर्म के महान् प्रणेता—'लाओत्से' ने अपने धर्म-ग्रन्थ मे अहिंसात्मक विचारो की अभिव्यञ्जना करते हुए कहा है—"जो लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार करते है, उनके प्रति मै अच्छा व्यवहार करता हूँ। जो लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार नही करते, उनके प्रति भी मै अच्छा व्यवहार करता हूँ।"[६७]

कनफ्यूशस धर्म के प्रवर्त्तक कागफ्यूत्सी ने बतलाया है—"तुम्हे जो चीज नापसन्द है, वह दूसरे के लिए हर्गिज मत करो।[६८]

इस प्रकार विविध धर्मों मे अहिंसा को उच्च स्थान दिया गया है। वस्तुत अहिंसा और दया की भावना से शून्य होकर कोई धर्म धर्म रह ही नही सकता, जैसे वायु के बिना प्राणी जीवित नही रह सकता। इस दृष्टि से सभी धर्मों पर अहिंसा का प्रभाव स्पष्ट परि-लक्षित होता है।

समीक्षात्मक : एक दृष्टि

●

अहिंसा के उपर्युक्त विवेचन व व्याख्या के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यद्यपि सभी धर्मों ने अहिंसा को सर्वोपरि सिद्धान्त माना है, तथापि उनमे जैन धर्म तथा भगवान् महावीर का स्थान प्रमुख है। कारण यह है कि जहाँ इतर धर्म व उनके प्रवर्त्तक-प्रचारक अहिंसा के किसी एक पहलू-विशेष को लेकर चले है, वहाँ जैन-धर्म तथा उसके उन्नायको एव उपासको ने अहिंसा के सभी पहलुओ की आत्मा का साक्षात्कार किया है। श्री लक्ष्मीनारायण 'सरोज' के शब्दो मे अहिंसा की तुलनात्मक समीक्षा इस प्रकार है—

ईसामसीह की अहिंसा मे माँ का हृदय है, और कनफ्यूशियस की अहिंसा मे तो हिंसा की रोकथाम मात्र है, तथागत बुद्ध की अहिंसा तो हिंसा को भी साथ लेकर चली है, और महात्मा गाधी

---

६६ पहेलवी टेक्स्ट्स से।

६७ लाओ तेह किंग।

६८ पारसी धर्म क्या कहता है? — श्रीकृष्णदत्त भट्ट (के आधार से)

की अहिंसा जितनी राजनैतिक है, उतनी धार्मिक नही । पर भगवान् महावीर की अहिसा मे उस विराट् पिता का हृदय है, जो सुमेरू-सा सुदृढ कठोर कर्त्तव्य लिए है ।[६९]

यहाँ सर्वप्रथम हम बौद्ध-धर्म को ही ले । बौद्ध-धर्म के आदि प्रवर्त्तक महात्मा बुद्ध ने 'महावग्ग' मे एक स्थान पर कहा है—'इरादा-पूर्वक किसी को मत सताओ ।' जहाँ एक ओर इस प्रकार का कथन करते हुए दिखलाई पडते है, वहाँ वे ही विनयपिटक मे प्रकारान्तर से मासभक्षण की खुले तौर पर आज्ञा प्रदान करते है । महात्मा बुद्ध स्वय भी सूकर का मास खाकर अतिसार के रोग से आक्रान्त बने थे ।[७०] सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलाल जी ने 'सामिप-निरामिष-आहार' प्रकरण मे बतलाया है कि—बौद्ध-पिटको मे जहाँ बुद्ध के निर्वाण की चर्चा है, वहाँ कहा गया है कि चुन्द नामक एक व्यक्ति ने बुद्ध को भिक्षा मे सूकरमास दिया था जिसके खाने से बुद्ध को उग्रशूल पैदा हुआ और वही उनकी मृत्यु का कारण बना । बौद्ध-पिटको मे अनेक स्थलो पर—ऐसा वर्णन आता है कि बौद्धभिक्षु अपने निमित्त से नही मारे गये पशुओ का मास ग्रहण करते थे ।[७१] उक्त दृष्टि से बौद्ध-धर्म की अहिंसा अपूर्ण व चिन्तन की विसगति-सी प्रतीत होती है ।

वैदिक धर्म के सर्वमान्य एव प्रामाणिक ग्रन्थ 'मनुस्मृति' मे लिखा है—जिसका मैं मास खा रहा हूँ, वह बदले मे मुझे खायगा ।[७२] इस प्रकार मनु ने जहाँ अहिंसा धर्म पर अपनी निष्ठा अभिव्यक्त की है, वहाँ हिन्दू सस्कृति के मूल स्रोत ऋग्वेद मे इसके विरोध मे कहा गया है—**'स्वर्गकामो यजेत् पशुमालभेत'** अर्थात् स्वर्ग का इच्छुक मानव यज्ञ करे और पशुवध करे । इससे स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि हिंसा का अहिंसा के साथ मैत्री सम्बन्ध जोडकर भी अपने को पूर्ण अहिंसक

---

६९. अहिंसा का आदर्श । —श्री यतीन्द्र सूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २८

७० दीघ निकाय —महापरिनिव्वाण सूत्र ।

७१. दर्शन और चिन्तन, द्वि० खण्ड —(जैन-धर्म और दर्शन) पृ० ७६

७२ मा स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मासमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मासत्व प्रवदन्ति मनीषिण ॥ —मनुस्मृति

सिद्ध करना चाहते है । इसी वृत्ति का यह परिणाम है कि आज हिन्दू समाज मे मासाहार का प्रचलन बढा हुआ है । काका कालेलकर ने अपने एक निबन्ध मे बतलाया है—"किसी ने सही कहा है कि भारत मे मास खाने वालो की सख्या न खाने वालो से अधिक है । न खाने वालो मे एक ऐसा भी वर्ग है जिसे मास मिलता नही, इसलिए नही खाता, मिलने पर खाता ही है या तीज-त्यौहार पर खाता है । जीव-दया के कारण प्राणियो को न मारने वाले लोगो मे जैन, वैष्णव, नामधारीसिख, महानुभाव सम्प्रदाय के लोग और अघोरी सम्प्रदाय के लोग भी है । अमुक-अमुक प्रदेशो मे ब्राह्मण और कुछ बनिये मास नही खाते । कुछ मास नही खाते, किन्तु मछली खाते है । यह हालत है हमारे देश की ।"[७३] इसी बात को पण्डित सुखलाल जी ने यो लिखा है—"सुविदित है कि वैदिक परम्परा मास-मत्स्यादि को अखाद्य मानने मे उतनी सख्त नही है, जितनी कि बौद्ध और जैन परम्परा । वैदिक यज्ञ-यागो मे पशुवध को धर्म्य माने-जाने का विधान आज भी शास्त्रो मे है ही । इतना ही नहीं, बलिक भारतव्यापी वैदिक परम्परा के अनुयायी कहलाने वाले अनेक जाति, दल ऐसे है, जो ब्राह्मण होते हुए भी मास-मत्स्यादि को अन्न की तरह खाद्यरूप से व्यवहृत करते है और धार्मिक क्रियाओ मे तो उसे धर्म्य रूप से स्थापित भी करते है ।"

वैदिक परम्परा की ऐसी स्थिति होने पर हम देखते है कि उसकी अनेक कट्टर अनुयायी शाखाओ और उपशाखाओ ने हिंसा-सूचक शास्त्रीय वाक्यो का अहिंसा-परक अर्थ किया है और धार्मिक अनुष्ठानो मे से तथा सामान्य जीवन व्यवहार मे से मास-मत्स्यादि को अखाद्य करार देकर बहिष्कृत किया है । किसी भी अतिविस्तृत परम्परा के करोडो अनुयायियो मे से कोई मास को अखाद्य और अग्राह्य समझे—यह स्वाभाविक है । पर अचरज तो तब होता है कि जब वे उन्ही धर्मशास्त्रो के वाक्यो का अहिसा-परक अर्थ करते है, जिनका कि हिंसा-परक अर्थ उसी परम्परा के प्रामाणिक और पुराने दल करते है । सनातन परम्परा के सभी प्राचीन मीमासक व्याख्याकार

---

७३ अहिंसा की परिणति-समन्वय और सत्याग्रह ।

—श्रमण—जुलाई, १९६६, अक ९, पृ० १९

यज्ञ-यागादि मे गौ, अज, आदि के वध को धर्म्य स्थापित करते है, जब कि वैष्णव, आर्य समाज, स्वामीनारायण आदि जैसी अनेक वैदिक परम्पराएँ उन वाक्यो का या तो विल्कुल जुदा अहिंसा-परक अर्थ करती है, या ऐसा सम्भव न हो वहाँ ऐसे वाक्यो को प्रक्षिप्त कहकर प्रतिष्ठित शास्त्रो मे स्थान देना नही चाहती। मीमासक जैसी पुरानी वैदिक परम्परा के अनुगामी और प्रामाणिक व्याख्याकार शब्दो का यथावत् अर्थ करके हिंसाप्रथा से वचने के लिए इतना ही कहकर छुट्टी पा लेते है कि कलियुग मे वैसे यज्ञ-यागादि विधेय नही है। और वैष्णव, आर्य समाज आदि वैदिक शाखाएँ तो उन शब्दो का अर्थ ही अहिंसा-परक करती हैं या उन्हे प्रक्षिप्त मानती है।

साराश यह है कि अतिविस्तृत और अनेकविध आचार-विचार वाली वैदिक परम्परा भी अनेक स्थलो मे शास्त्रीय वाक्यो का हिंसा-परक अर्थ करना या अहिंसा-परक—इस मुद्दे पर पर्याप्त मतभेद रखती हैं।[७४] उक्त विवेचना से सिद्ध होता है कि वैदिक परम्परा एक रूप मे नही, किन्तु अनेक रूपो मे विभक्त है और यही कारण है कि उसकी हिंसा-अहिंसा की योजना भी विविध स्वरूपो मे विवक्षित हुई है। परिणामत वैदिक अहिंसा हमारे समक्ष समीचीन दिशा निर्देशन न कर सकी।

इस प्रसग पर विश्वामित्र की अहिसा को भी हम विस्मृत नही कर सकते। वे दूसरो से हिंसा करवा कर अहिसा का आत्मिक लाभ सम्प्राप्त करना चाहते थे। उन्होने स्वय राक्षसो का वध नही किया, पर यज्ञ मे विघ्न-बाधाएँ उपस्थित करने वाले राक्षसो को राम-लक्ष्मण के द्वारा मरवा डाला। इससे महर्षि विश्वामित्र भी पूर्ण अहिंसक सिद्ध नही हुए। वे प्रेरणाप्रद हिंसा के समर्थक बन गये।

परशुराम तो स्वय हिंसा द्वारा ही अहिंसा की स्थापना करना चाहते थे। तभी तो उन्होने इस धरती पर से हिंसा का वातावरण पैदा करने वाले क्षत्रियो को अनेको बार निश्शेष करने का प्रयास किया। यह तो निश्चित है कि हिंसा के वृक्ष पर अहिंसा के मधुर फल नही लग सकते। हाथ मे धनुष, कन्धे पर फरसा लेकर इक्कीस

---

७४ दर्शन और चिन्तन। —(हिन्दी)
(द्वितीय खण्ड), जैन-धर्म और दर्शन पृ० ८२–८३

बार पृथ्वी को क्षत्रियरहित बनाकर भी परशुराम अपने उद्देश्य मे विफल ही रहे, क्योकि उनका प्रयोग गलत था। ययाति के प्रयोग की भाति यह भी एक बहुत भ्रान्त प्रयोग था। ययाति भोग भोग कर विरक्त होना चाहता था। इसी प्रकार परशुराम भी खून की नदी बहाकर अहिंसा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। परन्तु अन्ततोगत्वा परशुराम न हिंसक क्षत्रियो को ही मिटा सके, और न अहिंसा की प्रस्थापना ही कर सके।[७५]

ईसाई मत के महान् प्रवर्तक ईसा मसीह ने बाईबिल मे एक स्थान पर कहा है—

'Thou saul not kill—**दाउ साल्ट नोट किल**—'तू दूसरो को मत मार।" किन्तु अन्य स्थान पर ईसा मसीह स्वय ही सारे गाँव को मछलियाँ मार कर खिलाते है।[७६]

कनफ्यूशस धर्म के प्रवर्त्तक-कागफ्यूत्सी ने कहा—"किसी के प्राण न लो।" पर वे किसी खास ऋतु मे किसी खास पक्षी का मास न खाने की ही प्रेरणा देते है। यह बात असदिग्ध है कि कागफ्यूत्सी ने केवल अहिंसा को समझने मात्र की चेष्टा की है। वे उसके अन्तस्तल तक न पहुच सके, उसकी आत्मा का स्पर्श नही कर सके। तभी तो अहिंसा के अमृत मे हिसा का गरल मिला बैठे।

किन्तु जैन धर्म मे इस प्रकार की अहिंसा के सम्बन्ध मे दुविधा-जनक और परस्पर विरोधी बाते कही भी परिलक्षित नही होगी। यदि कही कोई विवाद-ग्रस्त उल्लेख दिखलाई पडता है तो वह केवल अपवाद की स्थिति मे ही और यदि उन प्रकरणो का पूर्वापर अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट परिज्ञात हो जायगा कि सत्य-तथ्य क्या है? आज उन प्रकरणो को ठीक न समझने के कारण कुछ विचारको ने असगत प्रलाप किया है। श्री धर्मानन्द कौसाबी ने 'महात्मा बुद्ध' पुस्तक मे महावीर और उनकी परम्परा के श्रमणो पर मासाहार का लाछन लगाया है। जिसका सचोट उत्तर इतिहासवेत्ता श्री कल्याण विजय जी महाराज ने "मानव-भोज्य मीमासा" मे दिया है।[७७]

---

७५ भारतीय सस्कृति। —सानेगुरुजी के भावो के आधार पर

७६ यतीन्द्रसूरि स्मृतिग्रन्थ—अहिंसा का आदर्श। पृ २६
—(लक्ष्मीनारायण सरोज का लेख)

जैन-धर्म मे आध्यात्मिक जीवन निर्माण के लिए अहिंसा-तत्त्व सर्वोपरि है। जैन-श्रमण सर्वप्रथम अहिंसा व्रत को ग्रहण करता है। गृहस्थ भी इसी व्रत को स्वीकर करता है। यद्यपि यहाँ पूर्णता और अपूर्णता को लेकर दोनो की अहिंसा मे पर्याप्त अन्तर है, तथापि उसकी प्राथमिकता मे कोई मूल भेद नही है। यहाँ प्रसगत एक बात मैं और स्पष्ट कर देना चाहूगा, वह यह कि जैन-धर्म की अहिंसा का इतना उच्च स्थान क्यो रहा है, जव कि अहिंसा के पावन सिद्धान्त को सभी धर्मों ने एक स्वर मे स्वीकार किया है ?

इसके उत्तर मे कहना होगा कि जैन-धर्म के अतिरिक्त प्राय समस्त अन्य धर्मो के प्रवर्त्तक अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार करके भी प्राणी-मास खाते रहे है, जो अहिंसा की साधना मे बहुत बडा अवरोधक है। साथ ही वे परिस्थितियो के सामने झुकते रहे है। विचार, आचार व उच्चार के द्वारा भी किसी के अकल्याण की कल्पना न करना अहिंसा है, तो प्राणी-मास खाने पर अहिंसा का अस्तित्त्व कहाँ और कैसे अक्षुण्ण रह सकता है ? तभी तो भगवान् महावीर ने मांस-भक्षण करने वाले को नरक-पथ का पथिक वतलाया है।[७८] इसी कारण से जैनधर्म तथा उसकी अहिंसा की महत्ता सर्वोपरि, एव सर्व विदित है कि उसके प्रवर्तक, प्रचारक व उसके उपासक मासाहार से सर्वथा अलग-थलग रहे है।

किसी भी तीर्थङ्कर ने मास खाया हो, ऐसा उल्लेख शास्त्रो मे ढूँढने पर भी नही मिलेगा। यही बात उनके उपासको की है। मास खाना तो दूर रहा, वे किसी को खाने की प्रेरणा भी नही देते और न खाने वाले का समर्थन ही करते है। यही जैन धर्म की अहिंसा की महत्ता है एव मूलभूत विशेपता है।

जैन धर्म की यह बहुत बडी महत्ता रही है कि हजारो-लाखो वर्षों से आने वाली सैद्धान्तिक परम्परा मे अब तक किसी प्रकार का परिवर्तन न हो सका। वह हिमालय जैसे सुदृढ स्थायित्त्व को लिए है।

---

७८ औपपातिक सूत्र, —प्रथम उपाग

परवर्ती आचार्यों ने भी देश-काल की अनेको स्थितियाँ-परिस्थितियाँ समुत्पन्न होने के बावजूद भी मूलभूत बातो मे तनिक भी परिवर्तन नही किया, परिस्थितियो के समक्ष धर्म को नही झुकाया। परिणामत आज जैन समाज विभिन्न शाखा-प्रशाखाओ मे पृथक् हो जाने पर भी अहिंसा के स्वर्णिम सिद्धान्त मे एक मत है।

६ | अहिंसा की आवश्यकता

❀ यह तो सुविदित हो चुका कि सभी धर्मों ने सीधे रूप मे या कुछ घूम फिर कर अहिंसा को धर्म माना है, हाँ, उसकी व्याख्या मे शाब्दिक अन्तर हो सकता है, किन्तु भावान्तर नही। किसी ने अहिंसा को सेवा कहा है, किसी ने प्रेम कहा है, किसी ने नीति कहा है, किसी ने क्षमा कहा है, तो किसी ने आत्मीयभाव कहा है। ये सब अहिंसा के ही अग है, रूप है।

अहिंसा का अमोघ अस्त्र

आज के इस अणु-युग मे अहिंसा की क्या उपयोगिता है? यह किसी से छिपा हुआ नही है। जबकि विश्वक्षितिज पर तृतीय विश्व युद्ध के नगाडे गडगडाने लग गये है, राष्ट्रो के बीच तनाव की स्थिति काफी गम्भीर बन चुकी है, न जाने कब और किस क्षण मानव युद्धाग्नि मे पतग की तरह स्वाहा हो जायगा, ऐसी स्थिति मे सुरक्षा के लिए अणुबम व उद्जनबम समर्थ नही, वरन् अहिंसा और प्रेम के अमोघ अस्त्र ही मानव जाति का त्राण कर सकते है। इन्ही के द्वारा ही विश्व की रक्षा सम्भव है। आज बहुत से वैज्ञानिको के उर्वर मस्तिष्क इस कल्पनालोक के भूले पर भूल रहे है कि हम विश्व की रक्षा अणुबम के द्वारा ही करेगे। किन्तु इस विषय मे हमे यह कहना है कि आज विश्व को विनाशक अणुबम की आवश्यकता नही, सृजनात्मक अहिंसाणुबम की आवश्यकता है, और यही विश्व शान्ति का मूल सूत्र है।

विश्वशान्ति का सार्वभौम आधार

युगयुगान्तर के ऋषि-महर्षियो, पैगम्बरो व तीर्थकरो ने अहिंसा-साधना के जो प्रयोग किये है, उनसे भी यह प्रमाणित होता है कि विश्व-शान्ति का कोई सार्वभौम आधार बन सकता है तो वह केवल अहिंसा ही है, यह शाश्वत ध्रुव एव सत्य निर्णय है।

अहिंसा एक ऐसा धर्म है, जिसकी आवश्यकता व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, और राष्ट्र-सभी को है। इसके अभाव मे न व्यक्ति जीवित रह सकता है और न परिवार, समाज व राष्ट्र ही अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रख सकता है। अत सास्कृतिक व आत्मिक विकास के लिए अहिंसा का स्वर जन-जन के अन्तर्मानस मे झकृत करने की अपेक्षा है।

दो : सामाजिक हिंसा : एक चिन्तन

* सामाजिक हिंसा के विविध रूप
  शोषण का कुचक्र
  धर्म के ये-ठेकेदार
  दहेज का दावानल
* जातीयता के घेरे मे
  कर्म की प्रधानता
  प्रभु के दरबार मे
  घृणा किससे ?
* प्रागैतिहासिक वर्ण व्यवस्था
  वैदिक सस्कृति मे
* मानव जाति एक है
  जाति से पहचान
* मानव और उसके कार्य
  सामाजिक हिंसा की लहर से बचाव

१ |

सामाजिक हिंसा के विविध रूप

●

❀ भारतीय तत्त्वचिन्तको ने हिसा के दो प्रकार बतलाये है—एक प्रत्यक्ष हिसा और दूसरी परोक्ष हिसा। प्रत्यक्ष हिंसा को मानव अपनी आँखो के सामने रात-दिन देखता है, अनुभव करता है और उससे बचने का प्रयत्न भी करता रहता है। किन्तु परोक्ष हिंसा का रूप इतना सूक्ष्म, व्यापक और विशाल है कि साधारणतया वह व्यक्ति की समझ मे नही आता। अत उसकी गहराई को छू नही पाते। अधिकांश का तो उसकी तरफ ध्यान ही नही जाता, फिर उससे बचने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? पर हमे यह विस्मरण नही कर देना है कि प्रत्यक्ष हिंसा से भी अधिक कभी-कभी परोक्ष हिंसा आत्मा के सद्‌गुणो का घात करने मे सहायक सिद्ध होती है।

परोक्ष हिंसा के विविध और विचित्र रूप है—जो सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रो मे परिव्याप्त है और विविध धाराओ मे प्रवाहित है। आज प्रत्येक सभ्य नागरिक प्रत्यक्ष हिंसा से तो बचने का यथा सम्भव प्रयत्न करता है, पर परोक्ष हिंसा से वह कहाँ बच पाता है? अत यहाँ पर हम सामाजिक हिंसा के विविध पहलुओ पर जरा गम्भीरता के साथ विचार करने का प्रयत्न करेगे।

शोषण का कुचक्र

आज का युग जनतन्त्र का युग है। इस जनतन्त्र के युग मे भी शोषण का कुचक्र अपनी क्रूर तथा द्रुतगति से चल रहा है। देश के लाखो व्यक्ति रोटी-रोजी के लिए तडफ रहे है। उद्योगपति व मजदूर वर्ग के बीच एक गहरा तनाव पैदा हो रहा है, और इस तनाव का मूल कारण है—आर्थिक वैषम्य। जब तक आर्थिक वैषम्य की परिसमाप्ति नही होगी, तब तक यह तनाव बना ही रहेगा। इसके उन्मूलन के लिए देश मे विभिन्न प्रयत्न जारी है, किन्तु वे प्रयत्न किस सीमा तक सफल हुए हैं या हो रहे है, यह एक चिन्तनीय प्रश्न है। आज का प्रत्येक समाजवादी विचारक उद्योगपति के पक्ष में नहीं, अपितु मजदूर वर्ग के पक्ष मे है। शोषको के पक्ष में नही, शोषितो के पक्ष मे है। वह चाहता है कि यह शोषण का कुचक्र शीघ्र ही समाप्त हो और विश्व शोषितो की आहो से सन्तप्त न हो, पर खेद है कि शोषण का यह कुचक्र समाप्त नही हो रहा है। अधिक से अधिक तेज होता जा रहा है। शोषण वृत्ति जीवित मानव का रक्त खीचने वाली एक गुप्त मशीनरी है। इसके द्वारा लाखो व्यक्तियो की जिन्दगियाँ अकालकवलित हो गई है, व हो रही है। यह हमारे देश के लिए अभिशाप व कलक है। किन्तु वर्तमान मे इस घृणित वृत्ति से कौन मुक्त है? एक सामान्य क्लर्क से लेकर उचस्तरीय अधिकारी भी इससे मुक्त नही है। व्यापारी समाज भी किसी सीमा तक इससे पीछे नही है। वह भी शोषणचक्र को व्यापक बनाने मे सहयोगी बना हुआ है। शोषण की उत्तप्त विषैली वायु की दुर्दान्त लपटे समग्र भूमण्डल पर फैल चुकी है। हिन्दी साहित्य के महाकवि श्री रामधारी सिह दिनकर की भाषा मे—

> लोभ नागिनी ने विष फूँका,
> शुरू हो गई चोरी।
> लूट मार शोषण प्रहार,
> छीना झपटी बरजोरी॥

आज आर्य देश भारत मे क्या नही हो रहा है? यह देश वह देश है, जहाँ सोने-चाँदी व मोतियो की दुकाने खुली पडी रहती थी।

जिसकी उर्ज्जस्वल गौरव गाथा पाश्चात्य विचारको ने मुक्त कण्ठ से गाई है। किन्तु आज उसके गौरव की ऊर्ज्जस्वलता शोषण के धूलि-कणो से मलिन हो गई है। जब से मानवजीवन को लोभ नागिन ने अपने प्रबल विषडक से ग्रस्त कर दिया है, तब से मानव दानव बनकर, लूटमार, शोषण प्रहार, कालाबाजार, रिश्वत आदि के काले कृत्यो के विष से ग्रस्त हो रहा है।—"**अहिंसा परमो धर्म**" और "**मित्ती मे सव्वभूएसु**" का पाठ पढने वाले भी शोषण के हथकण्डो से मुक्त कहाँ है ? इस कारण आज हमारी अहिंसा केवल बौद्धिक स्तर तक ही सीमित रह गई है, वह आचार मे नही आ रही है। कई व्यक्ति कीडे-मकोडे तथा चीटियो पर दयाभाव रखते है। दूर-दूर जगलो मे जाकर आटा और शक्कर उन्हे खिलाते है। उन्हे बचाने के लिए उनकी करुणा सदा-सजग रहती है, किन्तु दलित-शोषित व गरीब मनुष्यो का शोषण करते समय न जाने उनका वह दयास्रोत कहाँ सूख जाता है ? अपने आश्रितो को प्रताडित करने मे वे ज़रा भी नही हिचकिचाते। जो व्यक्ति कीडे मकोडो और चीटियो पर करुणा का अमृत वर्षण कर सकता है, वह अपने एक नौकर के साथ सद्व्यवहार क्यो नही कर सकता ? आज नौकर और अधीनस्थ कर्मचारियो के साथ कितना अनुचित एव पशुताका-सा व्यवहार किया जा रहा है ? उसे दिन भर कार्य मे घसीटा जाता है, समय की पाबन्दी कुछ भी नही रखी जाती, मनमाना उसपर रौब गाठा जाता है। यदि उसके हाथ से कभी छोटी-सी भूल हो गई—अथवा कारणवशात् वह समय पर उपस्थित न हो सका तो उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाता है ? उपालम्भ की बौछारो के अतिरिक्त उस बिचारे गरीब की एक दिन की रोजी ही काट ली जाती है। वह रोजी नहीं, वरन् एक प्रकार से उस गरीब के मुँह का कौर छीना जाता है।

धर्म के ये ठेकेदार

१

समाज मे कई धर्म के केदार ऐसे भी है जो गरीब किसान को कुछ रकम देते हैं, पर जितनी देते है उसकी कई गुनी व्याज के रूप मे पुन ले लेते हैं। वर्षो तक व्याज-चलता है। व्याज चुकाते-चुकाते उस व्यक्ति की उम्र ही पूरी हो जाती है। फिर भी उसे मुक्ति कहाँ ?

उसके पुत्र-पौत्र-प्रपोत्र से भी मय ब्याज के मूल रकम वसूल की जाती है। अहिंसा की बाते करने वाले जरा-इस सूक्ष्म हिंसा की भयानकता को भी समझे। क्या अहिंसा धर्म का पालन करने वालो के लिए यह व्यवहार उचित है ? क्या यह अहिंसा-सम्मत व्यवहार है ? अहिंसा और करुणा जिस मानस मे विराजमान होगी वह इस शोषण को सहन कर सकेगा ? शोषण निर्दयता है, अहिंसा के साथ उसकी कोई सगति नही बैठ सकती। जरा हृदय की खराद पर चढाकर इन्हे परखे।

दहेज का दावानल

●

वर्तमान काल मे दहेज प्रथा का दावानल बडे जोरो से प्रज्वलित हो रहा है। उसकी भयकर आग की लपटे सर्वत्र धधक रही हैं। उन लपटो मे देश, समाज और राष्ट्र सभी बुरी तरह झुलस रहे हैं।

सामाजिक परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए विवाह-सस्कार एक आवश्यक तथा मगलमय पवित्र बधन समझा जाता रहा है। किन्तु आज उसने एक भीषण समस्या का रूप-धारण कर लिया है। आज विवाह सस्कार का अर्थ हो गया है—एक प्रकार का सौदा-व्यापार। मानव के तृष्णातुर मानस ने इस पवित्र सस्कार को भी अर्थार्जन का माध्यम बनाकर विकृत कर डाला है। विवाह एक व्यापार बन गया है। यह बात कितनी लज्जास्पद है कि मानव अपनी सन्तान को पशु आदि की तरह खुले आम बोलियाँ लगाकर बेचता है। कभी लडकियो पर बोलियाँ लगाई जाती थी, तो आज लडको पर लगाई जा रही हैं। जब लडकियो के भाव तेज थे तो लडके वालो को रुपया देना पडता था। पर आज लडको के भाव तेज हैं तो लडकी वालो को तिजोरिया खोलनी पड रही हैं। लडके का पिता विवाह-सस्कार को धनप्राप्ति का एक सुन्दर अवसर समझता है, और इसका पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए वह विवाह के पूर्व ही दहेज का ठहराव कर लेता है। उस ठहराव मे—लडके की पढाई आदि का व्यय मय ब्याज के वसूल कर ने की चेष्टा की जाती है। जब ठहराव पूर्ण निश्चित हो जाता है तब कही विवाह तय हो पाता है। परिणामत विवाहसस्कार एक मगलमय प्रसग होने पर भी आज लडकी वाले के लिए भार और सकट बन गया है। भारत वर्ष

मे दहेज प्रथा प्राचीन समय मे भी थी, किंतु इस घृणित रूप मे नही थी, जिस रूप मे आज दिखलाई पड रही है। पहले कोई लुक-छिपकर दहेज-ठहराव लेता या देता तो ज्ञात होने पर उसे समाज का अपराधी समझा जाता था। लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। किन्तु आज खुलम-खुला दहेज लिया दिया जा रहा है। कोई किसी से नही डरता। ऐसा प्रतीत होता है—जैसे कि दहेज सामाजिक प्रतिष्ठा का एक प्रमुख आधार बन गया है। किन्तु वस्तुत यह भी शोषण वृत्ति की तरह ही समाज के लिए हेय है। यह सभ्य समाज का कलक है। इससे न जाने कितने परिवार उजड गए है। कितने ही आर्थिक भार के कारण इतने दब गये है जो वर्षों के परिश्रम के पश्चात् भी अब तक ऊपर न उठ सके। कभी-कभी दहेज का अभिशाप नव-विवाहिता बधुओ के प्राणो का ग्राहक भी बन जाता है। अभीष्ट दहेज न मिलने पर ससुराल मे बधुओ को निर्दयतापूर्वक सताया जाता है, धिक्कारा जाता है और इतना अधिक सताया व धिक्कारा जाता है कि वे अधीर होकर आत्मघात करने पर भी उतारू हो जाती है। इस प्रकार दहेज नृशस हिंसा का रूप नही तो क्या है? दहेज सामाजिक उत्कर्ष मे बहुत बाधक है। अपने तुच्छ आर्थिक प्रलोभन मे पडकर भावी परिजनो के जीवन को बर्बाद करना कहाँ तक उचित समझा जा सकता है? समाज मे सभी व्यक्तियो की स्थिति समान नही होती। कुछ देने की स्थिति मे होते है, तो कुछ नही भी। जिसके पास देने को कुछ नही है, फिर भी प्रथा-निर्वाह के लिए उसे कुछ देना ही पडता है। वह चाहे घर-बार बेच के दे अथवा ऋण लेकर दे, पर देना अवश्य होता है। किन्तु जब ऋण समय पर नही चुका पाता, तब उसके भीतर मानसिक हिसा की प्रक्रिया कितनी भयकर रूप से जागृत हो उठती है? इसकी कल्पना करना कठिन है। वस्तुत इस दहेज-प्रथा की बदौलत कितने परिवारो की स्थिति अस्त-व्यस्त हो जाती है।

दहेज प्रथा का ही यह परिणाम है कि आज बहुत सी लड़कियाँ, जो शादी के योग्य है, अपने पिता के घर मे मन मारकर, अपमान का विषघूँट पीकर, नीचा सिर किये बैठी हुई है। कइयो ने अपने पिता को इस चिन्ता से मुक्त करने के लिए प्राण दे डाले है, कई गरीब-अभागे पिता तो विवश-विकल होकर 'ऊँट के गले मे बिल्ली-

बान्धने वाली' उक्ति के अनुसार प्रौढ या वृद्ध पुरुषो के साथ अपनी प्राणप्यारी सोने-सी बेटी का सम्बन्ध जोड देते है। फिर भी सामाजिक व्यवस्था के इस दोष को निवारण करने के लिए अब तक किए गए सभी प्रयत्न बहुत ही अकिंचित्कर तथा असफलप्राय सिद्ध हुए है।

दहेज वर्तमान भारतीय समाज की एक ज्वलन्त समस्या है, जो समाज के कर्णधारो को गहराई से चिन्तन करने के लिए उत्प्रेरित करती है। यह सामाजिक हिंसा का नग्नतम रूप है।

२ | जातीयता के घेरे में

•

आज हम समाज के जीवन पृष्ठो का गहराई से अध्ययन करते हैं तो वहा न जाने कितने ही वादो का झमेला हमारे समक्ष समुपस्थित हो जाता है। कही व्यक्तिवाद है तो कही परिवारवाद है। कही समाजवाद है तो कही पथवाद है। कही धर्मवाद है तो कही जातिवाद है। सभी वाद अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग आलाप रहे है। इन वादो मे वास्तविकता कम है, अवास्तविकता अधिक, सचाई का अश अल्प है, असत्य का विशेष, हित और लाभ की मात्रा कम है, अहित तथा अलाभ की मात्रा अधिक! या यो कहना चाहिए कि ये वाद स्वार्थी मानवो के मनका एक मात्र दुराग्रह है। इन वादो के घेरे मे घिरकर मानव अपनी सही मजिल को भूल गया है। अपने ध्येय से च्युत हो गया है। उसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान ही नही होने पा रहा है। उसकी दृष्टि धुधली हो गई है, और चिन्तन का दायरा भी अत्यधिक सकुचित हो गया है। ऐसी स्थिति मे ही तो हिंसा और अज्ञान को पनपने का अवसर मिलता है।

धर्म या अहिंसा के नाम पर पथ सम्प्रदाय व जाति को आश्रय देना हिंसा को प्रोत्साहित करना है। वास्तव मे मानव-मानव के बीच भेद-भाव की दीवार खडी करना हिंसा का ही एक रूप है, अधर्म है।

श्रमण सस्कृति के सूत्रधार भगवान् महावीर ने जातिवाद का घोर विरोध किया है। भारत के इस विराट् प्रागण मे उस समय जातिवाद के नाम पर ऊँच-नीच तथा स्पृश्यास्पृश्य की विषैली

लहर पर्याप्त फैल चुकी थी। ब्राह्मण वर्ग के अतिरिक्त न किसी को स्वतन्त्रता-पूर्वक बोलने का अधिकार था, और न किसी को वेदशास्त्र पढने का ही। वेदमन्त्र का उच्चारण करना तो दूर रहा, यदि कोई कानो से वेदमन्त्र सुन भी लेता तो उसके कानो मे गरमा-गरम शीशा उँडेल दिया जाता था। शूद्रो के साथ तो इतना कठोर व्यवहार किया जाता था कि लोग उनकी छाया से भी परहेज किया करते थे। राजपथ पर उन्हे चलने का अधिकार नही था। इस प्रकार अस्पृश्यता के दूषित वायुमण्डल से जनसमाज का, मानव की आन्तरिक चेतना का दम घुटता जा रहा था। उक्त परिस्थितियो मे क्रान्ति के महान् सूर्य भगवान् महावीर ने जात-पात का खण्डन करते हुए कहा—"समस्त मानव जाति एक है, अखण्ड है। जाति के आधार पर मनुष्यो मे ऊँच-नीच की कल्पना करना मानवता का घोर अपमान है, सदाचार और सद्‌गुणो का तिरस्कार है। वस्तुत जाति से न कोई ऊँच है न नीच, न पवित्र है न अपवित्र। शरीर सबका एक समान है। आखिर देह जड पुद्‌गल का पिण्ड ही तो है। इसमे नैसर्गिक भेद कुछ भी नही है। पवित्रता और अपवित्रता, उत्कृष्टता और निकृष्टता, उच्चता और नीचता जाति पर नही, किन्तु मानव के सद्‌असद् आचरण पर अवलम्बित है।"[1]

कर्म की प्रधानता

भगवान् महावीर ने वर्णव्यवस्था मे कर्म (आचरण तथा आजीविका) को प्रधानता दी है। कर्म से ही मानव ब्राह्मण, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।[2] अर्थात् कोई भी व्यक्ति जन्म से ऊँच-नीच नही होता। कर्म से ही ऊँच-नीच होता है। यदि कोई मानव जन्म से ही ऊँचा होता है तो जरा इतिहास के पृष्ठ उलट कर देखना चाहिए। रावण विश्व की एक

---

१ सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसइ जाइविसेस कोई।

—उत्तराध्ययन सूत्र १२।३७

२ कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

—उत्तराध्ययन सूत्र, २५-३३

बहुत बडी शक्ति थी। वह जैनधर्म की दृष्टि से क्षत्रिय था, और वैदिक परम्परा के अनुसार ब्राह्मण, फिर क्यो जनता की दृष्टि मे घृणा का पात्र बना ? प्रत्येक इतिहासकार की लेखनी ने क्यो तिरस्कार की भाषा मे उसका चित्र चित्रित किया ? इन्सान की परख उसके सद्विचारो और सद्गुणो से होती है, न कि अमुक जाति मे जन्म लेने से। एक उर्दू शायर का यह तराना देखिए—

सीरत के हम गुलाम हैं,
सूरत हुई तो क्या ?
सुर्खो—सफेद मिट्टी की,
मूरत हुई तो क्या ?

हरिकेशी जाति से कौन थे ? जैन परम्परा के अनुसार उनकी उत्पत्ति चाण्डाल कुल मे हुई थी। जब वे जीवन लेकर ससार के रगमच पर आए तो चारो ओर से उन्हे घृणा व तिरस्कार का पुरस्कार मिला। जगह-जगह अपमान का विष मिला। कही पर भी उन्हे आदर-सम्मान का अमृतकण प्राप्त नही हुआ। किन्तु जब उन्हे पवित्रता की राह प्राप्त हुई और उस पर अपने दृढ कदम बढाने आरम्भ किए तो सारा ससार उनके समक्ष नतमस्तक हो गया। उस महात्मा के चरणो मे सम्राटो और कोटि-कोटि देवो के मस्तक श्रद्धा से झुक गये। अर्जुन माली का जीवन भी एक क्रूर दैत्य का-सा जीवन था। बारह सौ साठ स्त्री-पुरुषो को उसने अकाल मे ही काल कवलित बना दिया। किन्तु जब वह राजगृह का हत्यारा अर्जुन दिव्य-पुरुष भगवान् महावीर के सान्निध्य मे आया और उसे जीवन की सही दिशा मिली तो कुछ ही समय मे वह करुणा का देवता विश्व-वद्य बन गया। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय परम्परा मे कर्म की ही विशेषता रही है, न कि जन्म की।

प्रभु के दरबार में

●

भगवान् महावीर के चरणो मे जितने भी साधक आए, उन सबका समान स्वागत हुआ। गौतम जैसे विचक्षण बुद्धि के धनी ब्राह्मण भी आए तो ऐवता जैसे सुकुमार क्षत्रिय बालक भी आए, और जीवन की साध्यवेला मे खोया-खोया सा दरिद्र कठियारा

भी आया, किन्तु प्रभु के हृदय मे उन सबके लिए समान स्थान था। जो भी उनके चरणो मे आया, उसे एक ही आदेश मिला—'जहॉ सुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबन्ध करेह" देवानुप्रिय, आत्मकल्याण के कार्य मे विलम्ब मत करो। कौन ऊँचा और कौन नीचा, कौन महान् और कौन हीन, कौन योग्य और कौन अयोग्य—इसका मापदण्ड जाति व कुल नही, किन्तु त्याग व सयम की साधना होती थी, वहॉ समत्वमूलक दृष्टि का साम्राज्य था। कवि की भाषा मे—

ऊँच नीच का भेद नहीं था,
जन-जन मे समता थी।
था कुटुम्ब-सा जनसमाज,
सब पर सब की ममता थी॥

आत्मौपम्य का यह विलक्षण दृश्य भगवान् महावीर के दरबार मे साक्षात् देखा जा सकता था। वहाँ धनी और गरीब का कोई भेद नही था। सबको समान स्थान प्राप्त था। भगवद्वाणी सुनने के सभी समान अधिकारी थे। समान रूप से ही प्रभु का उपदेशामृत सब पर बरसा करता था। जो वाणी एक रक के लिए मुखरित होती थी, वही वाणी एक सम्राट् के लिए भी, और जो वाणी एक सम्राट् के लिए मुखरित होती थी, वही एक रक के लिए भी।[3] विश्व के समस्त प्राणियो पर भगवान महावीर की अभेद दृष्टि थी।

घृणा किससे ?

●

जैनधर्म का यह अमर उद्घोष है कि—विश्व की समस्त जीव-जाति स्वभावत समान एव पवित्र-पावन है। कोई भी आत्मा स्वभावत बुरा या पतित नही है। वह अनन्त-अनन्त सद्गुणो का प्रभास्वर पु ज है। यदि कोई बुराई है तो वह केवल व्यक्ति की अपनी भूलो और गलतियो के कारण ही है। एक व्यक्ति जब तक बुराइयो की राह पर चलता है तब तक वह अपने सद्गुणो से गिरा रहता है किन्तु जब वह अपनी बुराइयो का परित्याग कर सयम औ सदाचार के राज-पथ पर कदम बढाता है तो एक दिन समाज का

---

३ जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ, तहा पुण्णस्स कत्थइ॥ —आचाराग, १।२ ६

समादरणीय बन जाता है और अपने सद्गुणो का विकास कर लेता है। इससे यह सिद्ध होता है कि घृणा व्यक्ति से नही, बल्कि उसके गलत कार्यों से होनी चाहिए। तभी तो जैनदर्शन का यह स्वर हजारो-लाखो वर्षो से झकृत है—"मानव! तुम पाप से घृणा करो, पापी से नही, चोरी से घृणा करो, चोर से नही, शराब से घृणा करो, शराबी से नही, व्यभिचार से घृणा करो, व्यभिचारी से नही।" प्रस्तुत आदर्श की प्रतिच्छाया सुप्रसिद्ध विद्वान् शेक्सपियर की वाणी मे भी उतर आई है—"तुम दोष को धिक्कारो, दोषी को नही।" किसी भी मानव से घृणा करना एक प्रकार से हिंसा का आश्रय लेना है। अहिंसा की दृष्टि इतनी विराट् है कि वह पापी से पापी आत्मा के प्रति भी घृणा करने से इन्कार करती है। चूँकि घृणा मूलत हिंसा की जड है। जिसका आचरण पवित्र होता है, वह सब के लिए आदरणीय है। जैन सस्कृति का स्वर है—"कोई व्यक्ति जाति से भले ही चाण्डाल हो किन्तु यदि वह व्रती है तो उसे देवता भी ब्राह्मण मानते है।"[४] प्रत्येक आत्मा मे ईश्वरत्व छिपा है। आवश्यकता है, उसे प्रकट करने की। जब तक अज्ञान की कुण्ठा दूर नही होगी, और प्रत्येक आत्मा मे अखण्ड ज्योति के दर्शन करने की दृष्टि जागृत नही होगी, तब तक सत्य का द्वार खुल नही सकेगा, और ईश्वरत्व भी प्राप्त नही हो सकेगा। साराश यह है कि ससार का कोई भी प्राणी मूलत बुरा नही है, तिरस्कृत करने योग्य नही है। हर एक व्यक्ति परमात्मा का जीता-जागता रूप है। व्यक्ति के रूप-रग आदि भिन्न-भिन्न हो सकते है, किन्तु उसका चैतन्य एक है। "**यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे**" जो शरीर मे है, वही ब्रह्माण्ड मे है और जो ब्रह्माण्ड मे है वही शरीर मे है। जैन-दर्शन की स्वरलहरी इसी रूप मे लहरा रही है—'**एगे आया**' कहकर जैन-दर्शन समस्त आत्माओ के प्रति समत्त्वमूलक दृष्टि प्रदान कर रहा है। विश्व की समस्त आत्माओ का स्वरूप एक है। जैसा सरल व सत्य व्यवहार अपने साथ किया जाता है, वैसा ही सत्य व सरल व्यवहार अन्य आत्माओ के के साथ करना अहिंसा की सबसे बडी साधना है। भेदमूलक दृष्टि से ही हिंसा का जन्म होता है, हिंसा को उत्तेजन मिलता है और उसका विस्तार होता है।

---

४ व्रतस्थमपि चाण्डाल, तं देवा ब्राह्मण विदु । —पद्म पुराण ११-२०३

३ | प्रागैतिहासिक वर्णव्यवस्था

•

❀ जैन परम्परा के अनुसार इस युग की आर्य सस्कृति के आद्य सस्थापक भगवान ऋपभदेव माने जाते है। आपने लोक-कल्याण तथा लोकहित की भावना से उत्प्रेरित होकर पुरुपो को वहत्तर कलाएँ, स्त्रियो को चौसठ कलाएँ और सौ शिल्पो का परिज्ञान कराया।[५] जन-समाज के वीच मर्यादा व कार्य पद्धति की सरस सरिता प्रवाहित होती रहे, उसमे किसी प्रकार की अव्यवस्था व अराजकता पैदा न हो, इसके लिए भगवान ऋपभदेव ने असि, मपि, और कृपि अर्थात् सुरक्षा, व्यापार और उत्पादन की व्यवस्था की। सामाजिक प्रवृत्तियो का विकास कर जीवन के व्यवहारो को व्यवस्थित वनाया।[६] उक्त व्यवस्था के अनुसार जनसमाज तीन विभागो मे विभक्त हो जाता है। अन्याय, अत्याचार का प्रतिकार करने वाला रक्षकदल 'असि' विभाग मे आता है। ज्ञान-दान देने वाला अर्थात् शिक्षा-दीक्षा, पठन-पाठन लेखनादि का कार्य करने वाला वर्ग 'मपि' विभाग के अन्तर्गत आता है। जो जीवनोपयोगी वस्तुओ का उत्पादन करता है, तथा विनिमय-वितरण द्वारा जनसमाज की व्यवस्था एव सुख-सुविधा को अक्षुण्ण वनाए रखता है, उस वर्ग को कृपि' विभाग मे अन्तर्निहित किया जाता है। यह व्यवस्था और यह वँटवारा उस युग की एक महान सामाजिक

---

५ कल्प सूत्र सू० १९५। पृ० ५७, पुण्यविजयजी सम्पादित।

६ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-वृत्ति, २वक्षस्कार

क्रांतिकारी देन थी। वर्तमान मे युग के साथ सभ्यता और सस्कृति मे पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है। प्रत्येक युग मे युगानुरूप व्यवस्था बनाई जाती है। समय आने पर उसमे आवश्यक परिवर्तन भी किया जाता है, किन्तु यह परिवर्तन व्यवस्था की दृष्टि से होता है, भावात्मक दृष्टि से नही। महापुराण के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये तीन वर्ण स्थापित किये थे।[७] श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ आवश्यक चूर्णि और त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की। उसका वर्णन इस प्रकार है—ऋषभदेव ने जब गृहस्थ जीवन का परित्याग कर मौन-सयम साधना स्वीकार की तो भरत ने उनके राज्यभार को अपने कन्धो पर लिया। भरत चक्रवर्ती सम्राट् बने। राज्य व्यवस्था के लिए भरत ने चतुरगिनी सेना तथा राजनीति का नूतन पद्धति से निर्माण किया। भरत ने अपने भाईयो को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए अत्यधिक विवश किया। किन्तु भरत की अधीनता स्वीकार करना किसी ने पसन्द नही किया। अन्ततोगत्त्वा समस्त बन्धु प्रतिबुद्ध हुए और राज्य-लिप्सा को ठुकरा कर श्रमण बन गए।

केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् भगवान् ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर पधारे। भरत चक्रवर्ती को ज्ञान होने पर वे भगवान् के दर्शन करने को तैयार हुए। मुनियो को दान देने की भावना से उत्प्रेरित होकर भरत पका-पकाया भोजन गाडियो मे भरकर अपने साथ ले चले। भगवान् के दर्शन करने के पश्चात् भरत ने भगवान् से भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना की। किन्तु भगवान् ने राजपिंड अकल्पनीय है, कहकर उसे अस्वीकृत कर दिया। इस घटना से भरत को खिन्नता का अनुभव होने लगा। निराश भरत को स्वर्गाधिपति इन्द्र ने आकर आश्वस्त किया, समझाया और उस नैमित्तिक विपुल भोजन का उपयोग स्वधर्मी गृहस्थो को भोजन कराने मे करने को कहा। इन्द्र के कथनानुसार भरत ने उस भोजन का उपयोग स्वधर्मी गृहस्थो को जिमाने मे किया।

---

७ उत्पादितास्त्रयो वर्णा तदा तेनादिवेधसा।
क्षत्रिया वणिज शूद्रा क्षतत्राणादिभिर्गुणं ॥
—महापुराण, १६३ । १६ । ३६२

भरत चक्रवर्ती ने वहाँ एक भोजनशाला का निर्माण किया। उसमे कई धर्मनिष्ठ सद्गृहस्थ भोजन करते। जब उस भोजनशाला मे भोजनलुब्धक मानवो की सख्या दिनानुदिन बढने लगी, और कई व्यक्ति नकली श्रावक बनकर आने लगे तो अन्त मे भरत चक्रवर्ती के पास शिकायत पहुँची, भरत चक्रवर्ती ने श्रावको की परीक्षा के हेतु एक सुन्दर युक्ति निकाली और उस परीक्षा मे जो श्रावक पास हो गये, उनके बाये कधे से दाहिने उदर तक यज्ञोपवीत के चिह्न की तरह काकिणी रत्न से तीन रेखाएँ खिचवादी,[८] जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के प्रतीक रूप मे थी। परिणामत भरत चक्रवर्ती का यह प्रयोग सफल रहा। नकली श्रावको की भीड छँट गई और वास्तविक श्रावक रह गए। वे श्रावक वहाँ भरत-निर्मापित आर्य वेदो का अध्ययन करते और भरत के आदेशानुसार उन्हे सावधान रखने हेतु "**जितो भवान् वर्द्धते भी तस्मान्माहन माहन**' इन शब्दो को उद्घोषित करते रहते। जिससे भरत चक्रवर्ती सदा सजग एव जागृत रहते। वे श्रावक 'मत मार मत मार' इस अर्थ को सूचित करने वाले मा हन् मा हन्-पद को बार बार बोलने के कारण माहन के नाम से प्रसिद्ध हो गये। जो कालान्तर मे जैन ब्राह्मण कहलाये।

महापुराण के अनुसार एक दूसरा विकल्प यह भी मिलता है कि जब भरत चक्रवर्त्ती छह खण्ड की विजय करके अपनी राजधानी को लौटे, तब उन्हे यह विचार उत्पन्न हुआ कि प्रस्तुत विपुल धनराशि का त्याग कहाँ करना चाहिए ? इसका पात्र कौन हो सकता है ? भरत ने शीघ्र ही निर्णय किया कि ऐसे सदाचार युक्त प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियो को चुनना चाहिये जो तीनो वर्णों को चिन्तन का आलोक प्रदान कर सके। उसके लिए भरत ने एक विराट् उत्सव का आयोजन किया। उस आयोजन मे नगर निवासियो को सादर आमन्त्रित किया। भरत ने व्रतधारी विज्ञो की परीक्षा हेतु राजभवन के पथ पर हरियाली उगवादी, जिसे देख कर हरियाली पर न चलने के व्रत के कारण पाप भय

---

८ क्रमेण माहनास्ते तु, ब्राह्मणा इति विश्रुता ।
काकिणीरत्नलेखास्तु, प्रापुर्यज्ञोपवीतताम् ॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, १ । ६ । २४८

से व्रतीजन वही रुक गये और जो व्रतरहित थे वे उसको रौंदते हुए भीतर चले गये। जब भरत ने उन व्रतधारियो से इसका कारण पूछा तो उन्होने बतलाया कि "हम लोग व्रतधारी है। आपके राजभवन के पथ पर हरितकाय वनस्पति उगी हुई है। उसे पैरो से कुचल कर हम किस प्रकार आ सकते है ? उसे कुचलने से जीवो का प्राणघात होता है।" भरत का हृदय उनकी इस दया-वृत्ति से खिल उठा। अन्त मे उन्हे दूसरे प्रासुक मार्ग से राजभवन मे प्रवेश कराया गया और भरत ने उन्हे ब्राह्मण की सज्ञा प्रदान की।

इन वृत्तान्तो से स्पष्ट है कि वर्णों के सम्बन्ध मे जैन दृष्टि क्या है ? वर्णों की व्यवस्था वास्तव मे गुण कर्म के आधार पर ही की गई है, और समाज की विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति करना इसका मूल ध्येय रहा है।

वैदिक संस्कृति मे

श्वेताम्बर ग्रन्थो मे वर्ण व्यवस्था का स्पष्ट ऐतिहासिक वर्णन देखने को नही मिलता। दिगम्बर जैन विद्वानो ने अपने ग्रन्थो मे वर्ण० यवस्था का उल्लेख अवश्य किया है। वैदिकसाहित्य मे तो वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध मे विस्तृत चर्चा है ही। वहाँ ईश्वर को जगत्कर्त्ता मानकर एक लाक्षणिक रूपक बतलाया गया है, और वह रूपक वर्ण व्यवस्था की निष्पत्ति का उल्लेख करता है। विराट् पुरुष (ब्रह्मा) के शरीर से *चारो वर्णों की निष्पत्ति हुई है। मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, पेट से वैश्य, और पैरो से शूद्र।*[१] वास्तव मे यह एक आलकारिक वर्णन है। इस अलकार के पीछे रहे हुए आशय को हमे ढूढना है। ब्रह्मा जी के मुख से ब्राह्मण पैदा हुए है, इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि ब्राह्मण ज्ञान और उपदेश के द्वारा जन समाज की सेवा करे। समाज मे फैले हुए अज्ञान के तिमिर को ज्ञान की रोशनी फैलाकर दूर करे। इसी प्रकार क्षत्रिय की उत्पत्ति भुजा से मानी है। इसका रहस्य यह

---

१ ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृत।
उरु तदस्या यद्वैश्य पद्भ्या शूद्र अजायत॥
—ऋग्वेद सहिता १०।९०।
(क) शुक्ल यजुर्वेद सहिता —३१।१०।११

है कि क्षत्रिय अपनी भुजाओं के बल से देश मे होने वाले अन्याय-अत्याचार को रोके। सबल के द्वारा सताये जाने पर निर्बलो की रक्षा करना और देश की शासन व्यवस्था को सुदृढ व सुन्दर बनाए रखना, क्षत्रिय के भुजा से उत्पन्न होने का आशय है। वैश्य की उत्पत्ति पेट मे कही है। इसका अर्थ भी गभीर है। भोजन पेट मे पहुँचता है और उस भोजन से रस बनता है। वह रस सारे शरीर मे शक्ति का सचार करता है। वैसे ही वैश्य जीवनोपयोगी वस्तुओ का उत्पादन कर वाणिज्य द्वारा उनका वितरण करे और समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति करे। यह वैश्य का कर्तव्य है। चौथा वर्ग है शूद्र। शूद्र का जन्म पैरो से होना कहा गया है। इसका अर्थ है कि शूद्र समस्त मानव समाज की सेवा करे। अपने मूल्यवान् श्रम और शक्ति के द्वारा समाज को सुख-सुविधा पहुँचाता रहे। जैसे शरीर के भिन्न-भिन्न अगो से भिन्न-भिन्न काम लिये जाते है, वैसे ही समाज रूप शरीर के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार अग है। इन सभी मे भिन्न-भिन्न काम लिया जाता है। इनके सहयोग से ही समाज का कार्य सुचारु रूप से चल सकता है।

जैसे एक परिवार मे चार भाई अपने-अपने कर्तव्यो का बँटवारा कर लेते है तो उस परिवार का सचालन सुचारु रूप से होता है, इसी प्रकार समाज के सुव्यवस्थित सचालन के उद्देश्य मे चार वर्णो की व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था के मूल मे उच्च-नीच की कल्पना को कोई स्थान नही था। धीरे-धीरे स्वार्थभाव उत्पन्न हुआ और उच्चता-नीचता का सम्बन्ध इस व्यवस्था के साथ जुड गया। इस प्रकार विशुद्ध समाज व्यवस्था मे भावात्मक हिसा का सम्मिश्रण हो गया। शोषण का भाव उत्पन्न हो गया।

४ | मानव जाति एक है

•

जैन-दर्शन एक विराट् दर्शन है। वह किसी प्रान्त, देश या राष्ट्र की चार दिवारी मे रहकर ही चिन्तन नही करता। उसके चिन्तन का पैमाना व्यापक है। वह अपने आप तक ही सीमित नही है, किन्तु विश्व के समस्त पहलुओ पर उसने गम्भीरता से सोचा है, चिन्तन किया है। मानव जाति के प्रति उसका यह दिव्य सन्देश कितना मर्मस्पर्शी है—"विश्व के जितने भी मनुष्य हैं वे सभी मूलत एक है। कोई भी जाति अथवा कोई भी वर्ग मनुष्य जाति की मौलिक एकता को भग नही कर सकता।"[१०] आचार्य जिनसेन ने इस सम्बन्ध मे यह स्पष्ट उद्घोषणा की है कि—'आज जो मनुष्य जाति मे विभिन्न वर्ग दिखलाई दे रहे हैं, वे अधिकाश कार्यों तथा धन्धो के भेद से है, न कि जाति भेद से।[११] व्रतसस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण से क्षत्रिय, न्यायपूर्ण धनार्जन से वैश्य और सेवा वृत्ति से शूद्र होता है।[१२] श्री ऋषभदेव ने मानवो को प्रेरणा प्रदान की कि

---

१०. अहिंसा दर्शन, —(उपाध्याय अमर मुनि) पृ० स० १९३

११. मनुष्यजातिरेकैव, जातिनामोदयोद्भवा।
वृत्तिभेदाहिताद् भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥
—महापुराण, पर्व० ३८ श्लोक ४५ पृ० २४३

१२. ब्राह्मणा व्रतसस्कारात् क्षत्रिया शस्त्रधारणात्।
वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्याच्छूद्रा न्यग्वृत्तिसश्रयात् ॥
—महापुराण, श्लोक ४६ पर्व० ३८ पृ० २४३

कर्म-युग मे एक दूसरे के विना सहयोग के कार्य नही हो सकता। अत ऐसे सेवानिष्ठ व्यक्तियो की आवश्यकता है जो विना किसी भेदभाव के सेवा कर सके। जो व्यक्ति सेवा के लिए तैयार हुए उनको श्री ऋषभदेव ने शूद्र कहा। इसी प्रकार शस्त्रधारण कर आजीविका करने वाले क्षत्रिय हुए। खेती और पशु पालन के द्वारा जीविका करने वाले वैश्य कहलाए।[13]

अतीत के तलहट मे जाकर जब हम देखते है तो वहाँ समस्त मानवजाति एक अखण्ड इकाई के रूप मे परिलक्षित होती है। किन्तु समय के परिवर्तन ने उसे विभिन्न वर्ग तथा वर्णों मे विभाजित कर उसके टुकडे-टुकडे कर दिये हैं। इन टुकडो मे उसका मूलरूप इतना विकृत हो गया है कि उसकी असलियत का अता-पता ही नही रहा।

जाति से पहचान

आज मानव की पहचान उसके पवित्र आचार-विचार से नही है। वह जाति विशेष से पहचाना जाता है। जाति ही उसकी ऊँचता नीचता का मापदण्ड है। इस ऊँच-नीच की कल्पना से मानवजाति का गौरवपूर्ण इतिहास धूमिल हो गया है और भारतीय सस्कृति को इस कारण कई बार दुर्दिन भी देखने पडे है। भारत की पराधीनता का भी यह एक मुख्य कारण रहा है। फिर भी दुर्भाग्य है कि भारत अब तक भी नही सम्भल सका। भारत और पाकिस्तान का विभाजन मानवमन की इस सकीर्ण वृत्ति का ही दुष्परिणाम है।

घृणा मानव हृदय की एक भीषण आग है। इस आग मे हजारो लाखो व्यक्ति झुलस गये। वह आग अब भी शीतल नही हो पाई है। दिन-प्रतिदिन उसकी तेज लपटे आसमान को छूने के लिए लपलपा रही है।

---

१३ क्षत्रिया शस्त्रजीवित्व अनुभूय तदाभवन्।
वैश्याश्च कृषिवाणिज्यपशुपाल्योपजीविता :
—महापुराण, १८४।१६।३६२

५ | मानव और उसके कार्य

•

सामाजिक हित के उद्देश्य से किए जाने वाले सभी कार्य समाज के लिए उपयोगी होते है। उनमे कौन ऊँचा और कौन नीचा ? काम कोई ऊँचा नीचा नही होता। जहाँ प्रेम और सद्भावना की सुरसरी प्रवाहित है, वहाँ सभी काम समान है। एक बार धर्मराज-युधिष्ठिर ने कोई बहुत बडा उत्सव किया। उसमे बडे-बडे प्रतिष्ठित व्यक्तियो को आमन्त्रित किया गया। व्यवस्था के लिए कामो का बँटवारा किया गया। सभी काम जब बँट चुके तो अन्त मे श्रीकृष्ण से पूछा गया—'आप कौन-सा काम करेगे ?' श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले—"जो काम शेष रह गया हो उसी को मै करूँगा। राजभवन मे प्रवेश करते समय आगन्तुको के पैर धोना और उनकी झूठी पत्तले उठाना, ये दो कार्य अभी शेष रहे है, मै सहर्ष इन्हे करूँगा। यही कार्य मुझे सौप दिये जाएँ।" यह है—श्रीकृष्ण के महान् जीवन की एक झाकी। इसी प्रकार की एक दूसरी घटना भी श्रीकृष्ण के जीवनादर्श पर प्रकाश विकीर्ण कर रही है। द्वारिका के बाहर उपवन मे तीर्थ-कर नेमिनाथ का समवसरण लगा हुआ था। उनके लघुभ्राता नव-दीक्षित मुनि गजसुकुमाल भी भगवान् के साथ थे। उनके दर्शनार्थ श्रीकृष्ण सेना के साथ गजारूढ होकर राजपथ पर चले जा रहे थे। मार्ग मे एक जरा-जर्जरित वृद्ध पुरुष ईटो के ढेर मे से एक-एक ईट को उठाकर दूसरी ओर रख रहा था। श्रीकृष्ण ने जब अपनी आँखो से उसे निहारा तो उनका हृदय दया से द्रवित हो उठा। वे हाथी से नीचे उतर पडे और उस वृद्ध पुरुष को सहयोग देने के लिए

उन्होने भी एक ईट उठाकर दूसरी ओर रख दी। जब द्वारिकाधीश के इस सौजन्यपूर्ण व्यवहार को उनके अनुचरो ने देखा तो उस श्रम के महायज्ञ मे वे सबभी जुट पडे और ईटो का ढेर कुछ ही समय मे इधर से उधर हो गया।[१४] वस्तुत काम कोई छोटा-वडा नही होता। काम मे कर्त्तव्य की भावना व मन की रसधारा होनी चाहिए। वह किसी का हितविघातक न हो, वरन् हितविधायक हो तो उच्च और पवित्र होता है।

वहुत से व्यक्ति यह सोचते है—हमारा काम उच्चस्तरीय है, दूसरो का निम्नस्तरीय है। किन्तु यह भावना मानवमस्तिष्क की सकीर्णता है। इसी सकीर्णवृत्ति ने जातिवाद को जन्म दिया है, और इसी मे हिसा के नग्नताण्डव उपस्थित हुए है। जातिवाद का विप अहिंसा की साधना मे वाधक व अवरोधक तत्त्व सिद्ध हुआ है। आज उस विष को हटाने की सवसे वडी आवश्यकता है, तभी अहिंसा का अमृत हमारा मगल व कल्याण कर सकेगा।

सामाजिक हिसा की लहर से बचाव

सामाजिक हिसा की लहर आज विद्युत् तरगो की तरह सम्पूर्ण मानव समाज के जीवनाकाश मे लहरा रही है। इस हिंसा का प्रतिरोध तभी सम्भव है जब मनुष्य जातीयता एव प्रान्तीयता की कल्पित दीवारे लाघकर मानव मात्र से प्रेम करेगा, उसके पवित्र आचार-विचार के प्रति सम्मान करना सीखेगा व उसमे भ्रातृभाव की अनुभूति करेगा। समाजिक हिसा का उन्मूलन होकर जिस दिन विश्व के सुरम्य प्रागण मे सामाजिक अहिसा की प्रतिष्ठा होगी, भेद एव घृणा की जगह अभेद एव प्रेम का वातावरण वनेगा, उस दिन मानव इस धरती पर स्वर्गीय जीवन विताता हुआ शान्ति का सुखमय सुराज्य प्राप्त कर सकेगा।

---

१४ अन्तकृत् दशा सूत्र

तीन : अहिंसा की साधना : अपरिग्रहवाद

* परिग्रह स्वरूप और त्याग
  परिग्रह की परिभाषा
  परिग्रह का त्याग
* आवश्यकता और उसकी सीमाएँ
* विषमता की जननी सग्रहवृत्ति
* सादा जीवन ऊँचे विचार
* मानव और मानवता
* अपरिग्रहवाद की ओर
* इच्छाओ पर नियन्त्रण
* साम्यवाद और उसके निर्माता
* सर्वोदय और अपरिग्रहवाद
* अपरिग्रहवाद की उपयोगिता

१ | परिग्रह : स्वरूप और त्याग

०

परिग्रह की परिभाषा

❀ अहिसा के साथ अपरिग्रह का एक प्रकार का तादात्म्य सम्बन्ध है। परिग्रह (सम्पत्ति) के उपार्जन के लिए हिंसा करनी होती है, उसके सरक्षण के लिए भी हिंसा का आश्रय लेना होता है। परिग्रह अर्थात् अर्थसग्रह, सम्पत्ति आदि पर ममत्व अपने आप मे हिसा है। इसलिए परिग्रह का त्याग किए विना अहिंसा का वास्तविक सौन्दर्य खिल नही सकता। क्योंकि जहाँ परिग्रह है, वहाँ हिंसा अवश्यभावी है। भगवान् महावीर की भाषा मे आत्मा के लिए यदि कोई सबसे वडा वन्धन है तो वह परिग्रह है।[1] परिग्रह के जाल मे आवद्ध आत्मा विविध हिसामय प्रवृत्तियो मे प्रवृत्त होता है। आचार्य उमास्वाति ने परिग्रह की व्याख्या करते हुए वतलाया है—'**मूर्च्छा परिग्रह**' अर्थात् मूर्च्छाभाव परिग्रह है। पदार्थ के प्रति हृदय की आसक्ति-ममत्व की भावना ही परिग्रह है। आचार्य शय्यम्भव ने भी परिग्रह की व्याख्या इसी प्रकार की है—"**मुच्छा परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा**।" (दशवै०६।) किसी भी वस्तु मे वँध जाना अर्थात् उसे अपनी मान कर, उसकी ममता मे लिप्त हो जाना, तथा ममत्व के वश होकर आत्म-विवेक को खो वैठना परिग्रह है। इस प्रकार किसी वस्तु को मोहवुद्धिवश, आसक्ति पूर्वक ग्रहण करना ही परिग्रह है।[2] परिग्रह हिंसा को जन्म देने वाला है। साथ ही परिग्रह आत्मविकास मे एक

---

१ नत्थि एरिसो पासो, पडिवधो अत्थि सव्वजीवाण।

—प्रश्न व्याकरण सूत्र २।१

२ परिसमन्तात् मोहवुद्ध्या गृह्यते स परिग्रह.।

बहुत बडा बाधक तत्त्व हैं। इससे आत्मविकास की दिशा अवरुद्ध हो जाती है।

विश्व का कोई भी धर्म परिग्रह को स्वर्ग या मोक्षका साधन स्वीकार नही करता। सभी धर्मो ने इसे पापो का सग्रह व आत्म-पतन का मूल कारण माना है। परिग्रह की कडी आलोचना करते हुए ईसाई धर्म के महान् प्रवर्तक ईसा ने बाईबिल मे कहा है—'सूई की नोक मे ऊँट कदाचित् निकल जाय, किन्तु धनवान् स्वर्ग मे प्रवेश नही कर सकता।' क्योकि परिग्रह आसक्ति का मूल करण है, और जहाँ आसक्ति है, वहा अनासक्ति का अभाव रहता है, और अनासक्ति के बिना कोई भी व्यक्ति सद्गति सम्पादन नही कर सकता। परिग्रह का आरम्भ आसक्ति से होता है, और साथ ही वह आसक्ति को बढाता भी है। इसी का नाम मूर्च्छा है। ज्यो-ज्यो मूर्च्छा-गृद्धि आसक्ति बढती है त्यो-त्यो हिसा भी बढती है, और यह हिसा आत्मपतन के साथ-साथ सामाजिक वैषम्य को भी जन्म देती है। अत परिग्रह सामाजिक विषमता का मूल है। विषमता स्वय मे एक हिसा है। इस दृष्टि से परिग्रह को भी हिसा की परिधि मे लिया गया है। प्रश्न व्याकरण सूत्र (१।५) मे एक उपमा द्वारा बताया गया है कि—परिग्रहरूपी वृक्ष के स्कन्ध अर्थात् तने है लोभ, क्लेश और कषाय। चिन्ता रूपी सैकडो ही सघन और विस्तीर्ण उसकी शाखाएँ है।" इसलिए अहिसा और शान्ति की कामना करने वाले को अपरिग्रह की साधना करनी होगी।

परिग्रह का त्याग

भारतीय तत्त्व-चिन्तको ने अहिसा की साधना-आराधना के लिए परिग्रह का त्याग आवश्यक ही नही, वरन् अनिवार्य बतलाया है। इसके बिना हमारी अहिसा अपूर्ण है। सयम की साधना करने वाला व्यक्ति यदि किसी प्रकार का संग्रह स्वय करता है, दूसरो से करवाता है अथवा करने वाले का अनुमोदन व प्रेरणा करता है तो वह दु खो से कदापि छुटकारा नही पा सकता। यह भगवान् महावीर

का स्पष्ट उद्‌घोष है।[3] जैनदर्शन की दृष्टि मे महा आरम्भी एव महापरिग्रही व्यक्ति नरकगति का अधिकारी होता है।[4] अत परिग्रह का त्याग करके अपरिग्रह भाव की ओर बढना अहिसा की साधना के लिए अपेक्षित है।

जैनाचार्यो ने बतलाया है कि अल्प परिग्रह, और अल्प हिंसा करने वाला व्यक्ति और कुछ भी साधना न करे तब भी वह अगले जन्म मे मनुष्य गति प्राप्त करता है।[5] आवश्यकता मे अधिक सग्रह करना व्यर्थ परेशानी मोल लेने के अतिरिक्त एक प्रकार की सामाजिक चोरी भी है। महाभारत के प्रणेता महर्षि व्यास ने कहा है—"उदर-पालन के लिए जो आवश्यक है, वह व्यक्ति का अपना है। इससे अधिक जो व्यक्ति सग्रह करके रखता है वह चोर है, और दण्ड का पात्र है।[6] इस तस्करवृत्ति से बचने के लिए ही अपरिग्रह वृत्ति को स्वीकार करना परमावश्यक है। आज व्यक्ति, समाज और राष्ट्रो मे जो अन्तर्द्वन्द्व चल रहे है, उसके मूल मे भी अनुचित सग्रह वृत्ति ही मूल कारण है। रक्षा के लिए उचित प्रतीकारात्मक साधन-प्रसाधन जुटाना और बात है, और दूसरो की सुख-सुविधाओ का अपहरण करके उन पर अनुचित अधिकार करना दूसरी बात है।

---

३ चित्तमतमचित्त वा, परिगिज्झ किसामवि।
अन्न वा अणुजाणाइ, एव दुक्खा ण मुच्चइ॥
—सूत्रकृताग १।१।१।२

४ बह्वारम्भपरिग्रहत्त्व नारकस्यायुष। —तत्त्वार्थ सूत्र ६।१५

५ अल्पारम्भपरिग्रहत्त्व मानुषस्य —तत्त्वार्थ सूत्र ६।१७

६ उदर भ्रियते यावत् तावत् स्वत्व हि देहिनाम्।
अधिक योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ —महाभारत

२ | # आवश्यकता और उसकी सीमाएँ

❁

* अहिंसा मूलक आचार पद्धति का अनुसरण करने के लिए अपरिग्रह वृत्ति को अपनाना नितान्त आवश्यक है । अपरिग्रहभावना जब तक जीवन क्षेत्र मे नही उतरती, तब तक जीवन मे शान्ति के दर्शन नही हो सकते ।

एक व्यक्ति अपने ही भोग के लिए स्वार्थान्ध होकर आवश्यकता से अधिक परिग्रह सचित कर लेता है तो उससे समाज मे असमानता पैदा होती है और भविष्य मे उसका परिणाम अत्यन्त हानिकारक होता है । आवश्यकता से अधिक सग्रह सामाजिक, राष्ट्रीय एव आध्यात्मिक आदि सभी दृष्टियो से हानिप्रद है ।

हमारे समक्ष प्रश्न यह है कि आवश्यकता का मापदण्ड क्या है ? वास्तव मे यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है । मनुष्य की रुचि, परिस्थिति और जीवन पद्धति की विचित्रताओ को देखते हुए, आवश्यकता का एक मापदण्ड निर्धारित करना बहुत ही कठिन है । तथापि मोटे तौर पर आवश्यकता की परिभाषा यह हो सकती है कि—"जिन साधन-प्रसाधनो से व्यक्ति सयम एव सादगी के साथ अपनी जीवन-यात्रा सुख पूर्वक बिता सके, जिस वस्तु के अभाव मे उसे जीवन निर्वाह करना कठिन या असम्भव हो, तथा सामाजिक, आध्यात्मिक एव नैतिक विकास मे जो साधन रूप हो, वही वास्तविक आवश्यकता है ।"

आवश्यकता के सम्बन्ध मे गाँधी जी के विचार भी मननीय है । उनका सिद्धान्त था कि "प्रत्येक व्यक्ति को यह ध्यान रखना चाहिए कि जो कुछ उसके लिए आवश्यक है, वह दूसरो के लिए भी

आवश्यक होगा। इसलिए उसमे सबका भाग होना चाहिए। जब तक ऐसा सम्भव न हो, तब तक मुझे उस चीज को अपने लिए आवश्यक मानने का कोई अधिकार नही। इस सीमा का उल्लघन कर अपनी आवश्यकताओ की वृद्धि और उनका विस्तार ही हिंसा है। इस असन्तोष के रहते शान्ति हो ही नही सकती। अत हमे समाज की शान्ति और कल्याण के लिए आवश्यकताओ के क्षेत्र मे पीछे हटना होगा। कारण, यह आवश्यकता ही तो सघर्ष का मूल है। इसी का नाम अपरिग्रह है।"[७] इसी प्रकार एक बार गाधी जी से मद्रास मे रचनात्मक कार्यकर्ताओ के सम्मेलन मे पूछा गया कि—"आपकी राय मे आर्थिक समानता के सही माने क्या है?" उत्तर मे गाधी जी ने कहा—"आर्थिक समानता की मेरी कल्पना का यह अर्थ नही कि हर एक को शब्दश एक ही रकम दी जाय। उसका सीधा-साधा मतलब यह है कि हर स्त्री या पुरुष को उसकी जरूरत की रकम मिलनी चाहिए। हाथी को चीटी से हजार गुना खाना ज्यादा लगता है, मगर यह असमानता का सूचक नही। इसलिए आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है—'हर एक को उसकी जरूरत के माफिक दिया जाय।'[८] यदि सामाजिक लोग आवश्यकता की इस मर्यादा को समझकर चलते तो उन्हे असमानता के कही दर्शन नही होते, और न समाजवाद, साम्यवाद आदि वादो को ही जन्म ग्रहण करना पडता। आज इस मर्यादा का पालन न करने के कारण ही देश मे वैषम्य और वर्ग सघर्ष के बीज दिनानुदिन पनपते जा रहे है। अत इस स्थिति के निराकरण के लिए आवश्यक तो यह है कि मानव अपने वैज्ञानिक साधनो का उपभोग करता हुआ दूसरो की जिन्दगी की तरफ भी लक्ष्य दे। साथ ही उनकी आवश्यकताओ पर कुठाराघात न करता हुआ अपनी आवश्यकताओ पर नियन्त्रण रखे, और अन्य को अधिकाधिक सुख शान्ति पहुँचाने का प्रयास करे। यही सामाजिक शान्ति की वास्तविक भूमिका है।

---

७ गाधी और विश्व शान्ति, —देवीदत्त शर्मा पृ० ७०

८. गांधी और विश्व शान्ति, —देवीदत्त शर्मा पृ० ६२

३ | विषमता की जननी : संग्रहवृत्ति

३ विषमता की जननी : संग्रहवृत्ति

•

* सग्रह वृत्ति अनर्थो की विष बेल है। यह निरन्तर बढती रहती है। इसमे अनेक कटुतारूपी फल लगते है। ये फल भले ही दीखने मे अत्यन्त सुन्दर व रमणीय होते हो, किन्तु उनका परिणाम मारणान्तिक है। रशियन क्रान्तिकारक 'लेलिन' ने तो इस सग्रह वृत्ति को मानव-समाज की पीठ का एक जहरीला फोडा कहा है। उसका आपरेशन हो, तभी उसमे रहा हुआ कालाबाजार और अप्रामाणिकता का खून तथा उसमे फैलने वाली शोषणवृत्ति की दुर्गन्ध दूर हो सकती है। परन्तु आज तो मानव का मानस ऐसे फोडो को बढाने मे ही विशेष प्रयत्नशील है। एक व्यक्ति के पास इतना अधिक सग्रह हो रहा है कि दूसरे उसके अभाव मे रोते और विलखते हुए दम तोडते रहते है।

आज धनी और गरीब के बीच जो एक गहरी खाई परिलक्षित होती है, वह इसी आर्थिक वैषम्य का परिणाम है। हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील कवि श्री रामधारी सिह 'दिनकर' ने वर्तमान मे फैली देश की विषमता का जो मार्मिक चित्रण किया है वह दिल को गुद-गुदा देने वाला है—

> श्वानो को मिलता दूध-वस्त्र,
> भूखे बालक अकुलाते हैं।
> माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर,
> जाड़े की रात बिताते हैं।।

युवती की लज्जा वसन बेच,
जब ब्याज चुकाये जाते हैं ।।
मालिक तब तेल फुलेलो पर,
पानी-सा द्रव्य बहाते हैं ।।

यदि मानवता की दृष्टि को सन्मुख रख कर विचार किया जाय तो कोई भी विज्ञ इस बात को स्वीकार नही करेगा कि हमे असीम वैभव का उपभोग करने का हक है, जबकि दूसरी ओर इस धरती पर लाखो व्यक्ति भूखे और नगे घूमते हो । पर, समाज की स्थिति तो आज अत्यन्त विचित्र है ।

समाज का एक वर्ग वह है, जो खाने के नाम पर दाने-दाने के लिए तरसता है । पेट की ज्वाला बुझाने के लिए दर-दर का भिखारी बन कर गलीकूचो मे घूमता है । कडी मेहनत के बावजूद भी जिसे शाम तक दो रोटी नही मिल पाती । तो दूसरा वर्ग वह है जो बादाम व पिस्तो की बर्फी खा-खा कर बीमार हो रहा है, और वैद्यो तथा डाक्टरो के द्वार खट-खटा रहा है । एक के पास गर्मी -सर्दी व वर्षा से बचने के लिए एक सामान्य घास-फूस का झोपडा भी नही है, तो दूसरी ओर कई हिमधवल गगनचुम्बी एव वातानुकूलित अट्टालिकाएँ है, जो बिजली की जगमगाहट मे प्रभास्वर है । एक ओर तन ढकने के लिए लज्जा निवारण हेतु फटे-पुराने वस्त्र का चिथडा भी नही है, दूसरी ओर इतने मूल्यवान् वस्त्र सन्दूको मे भरे पडे है जो भीतर ही भीतर सडे-गले जा रहे ह ।

कहना चाहिए, आज की भौतिक सुख-सुविधा के साधन कुछ इने-गिने व्यक्तियो के पास ही एकत्रित हो गए है । शेष व्यक्ति अनिवार्य आवश्यक सामग्री के अभाव से पीडित हे । इस स्थिति मे वे न अपनी भौतिक उन्नति करने मे समर्थ हो रहे है और न आध्यात्मिक उन्नति करने मे ही । इस विषमता का हटना तभी सम्भव है जब कि व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक सग्रह अपने पास न रखे, और जिसको आवश्यकता है, या जिसके अभाव मे दूसरा कोई पीडित है, उसे वह दे डाले । इसी के प्रकाश मे 'कुरुक्षेत्र' की ये पक्तियाँ बोल रही है —

जब तक, मनुज मनुज का यह,
सुख भाग नहीं सम होगा ।

शमित न होगा कोलाहल,
संघर्ष नहीं कम होगा ।।

मानवता प्रिय मानव को चाहिए कि वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के साथ अपने भाइयो की आवश्यकताओ की पूर्ति का भी ध्यान रखे। यद्यपि ऐसा करने से भले ही भौतिक दृष्टि से वह कुछ खो सकता है किन्तु आध्यात्मिक एव मानवता की दृष्टि से वह बहुत कुछ पायेगा। उक्त दृष्टि को जीवन धरा पर उतारने के लिए मानव को अपने उच्चतम रहन-सहन के स्तर को कुछ नीचा करना होगा, और जो अत्यन्त निम्नस्तर पर अवस्थित है, उन्हे कुछ ऊपर की ओर उठाना होगा। पर, यह मानव की सहयोग-सहअस्तित्व की भावना पर ही आधारित है।

यही बात राष्ट्रो के सम्बन्ध मे लागू होती है। जो राष्ट्र निर्बल है, उन्हे सबल राष्ट्र अर्थात् साधन सम्पन्न राष्ट्र अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर उन्नतिशील बनाएँ। इसके लिए धनिक राष्ट्र अमेरिका आदि जैसो का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने बन्धु राष्ट्रो के लिए कुछ त्याग करे, अपनी पूँजी का उत्सर्ग करे। अपने सुख सुविधाओ, तथा साधनो का बटवारा करे। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का, एक मानव दूसरे मानव का भाई-बन्द है, और भाई के नाते उसे बटवारे का अधिकार है। वे अपनी पूँजी का उत्सर्ग करे। ऐसा करने से प्रथम बात तो यह होगी कि वे राष्ट्र विश्व मे अनुपम उदार वृत्ति के गौरव से प्रतिष्ठित होगे। दूसरी बात, भविष्य मे आने वाले युद्धो के खतरो से वे अनायास ही बच सकेंगे। तीसरी बात, इनकी उदारता-परायण वृत्ति से अर्धोन्नत व अर्धविकसित राष्ट्र समृद्ध हो जायेगे। फिर न उन्हे भय रहेगा और न युद्ध का खतरा ही। वे सर्वथा निर्भय रहेगे।

आज हम देखते है कि धनिक राष्ट्रो की जनता अत्यन्त भयाकुल हो रही है। उन्हे सोते-बैठते चैन नही पडती। उनके सामने सतत दुश्मनो का खतरा बना हुआ है। यह स्थिति पूर्वोक्त प्रक्रिया से ही दूर की जा सकती है।

एक बार स्वामी विवेकानन्द अमेरिका गए। वहाँ के किसी वरिष्ठ धनी ने स्वामीजी से तीन प्रश्न किये—

१ मुझे नीद नही आती, उसका क्या कारण है ?

२ मेरे दुश्मन अधिक क्यो है ?

३ मेरी सद्गति का क्या उपाय है ?

क्रमश तीनो प्रश्नो का उत्तर देते हुए स्वामी जी बोले —

आप जिस पलग पर सोते है, वह पलग कितने मूल्य का है ?

'बीस करोड की कीमत का।'-धनिक ने स्वामीजी की तरफ देखते हुए उत्तर दिया।

स्वामी जी ने कहा— 'आप इस पलग को गरीब भाईयो के सहायतार्थ बेच दे, और एक सामान्य बिस्तर लगाकर सोये, अवश्य ही निद्रा देवी आपके चरण चूमेगी।'

'आप अपना उद्योग-व्यापार बन्द कर दे, दुश्मन स्वत कम हो जायेंगे।'

'सद्गति के लिए 'ओम्' का स्मरण करे। यह भारतीय सस्कृति का महामत्र निश्चय ही आपको सद्गति प्रदान करेगा।'

यह स्थिति है उस देश की जहाँ मानव विलासिता के अतल सागर मे डुबकिया लगाते रहने पर भी सुखभरी नीद से भी वचित रहता है। सतत भय से व आशका मे उद्विग्न बना रहता है। उस स्थिति के निवारण का उपाय एकमात्र है—अपनी अनावश्यक सम्पत्ति का वितरण कर जीवन को पूर्ण सादा, सादगीमय एव सेवा परायण बना दिया जाय।

४ | सादा जीवन और ऊँचे विचार

•

"सादा जीवन और उँचे विचार," यह एक आदर्श वाक्य है। इस आदर्श तक पहुँचने के लिए मानव को अपने रहन-सहन के स्तर को बदलना होगा, साथ ही विचार-परिष्कार भी अनिवार्यत करना होगा। यदि खान-पान, रहन सहन आदि मे, बाह्य क्रियाओ मे सादगी है, किन्तु विचारो मे सादगी न ढल सकी, विचार विलासिता के अतल सागर मे गोते लगाते रहे तो यह बाह्य सादगी एक प्रकार से व्यर्थ ही सिद्ध होगी। क्योकि विचारो के द्वारा ही जीवन की सम्पूर्ण क्रियाएँ स्पन्दित होती है। अत विचार की उच्चता हर दृष्टि से अपेक्षित है।

आज के इस विज्ञानवाद के युग मे बहुत से व्यक्तियो की यह आस्था बन चुकी है कि हमारे पास जितने विलासिता के व सुखोपभोग के साधन-प्रसाधन अधिक होगे, उतना ही समाज मे हमारा प्रभाव एव दबदबा बना रहेगा, और मान—प्रतिष्ठा भी बढेगी। किन्तु उनकी यह धारणा नितान्त मिथ्या है। आज की सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था मे विलासप्रियता और साधनो की अधिकता कोई महत्त्व नही रखती। अतीत की ओर जब हम निगाह डालते है तो सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामन्त्री चाणक्य का सादगीप्रिय जीवन स्मृति के क्षितिज पर चमक उठता है। चाणक्य एक महान् व्यक्ति था। यो कहना चाहिए कि उस युग के भारत का निर्माता चाणक्य ही था। किन्तु उसका जीवन कितना सीधा-साधा एव निष्परिग्रह था। जब चाणक्य आश्रम मे रहते और विद्यार्थियो को पढाते थे उस

समय उनके पास क्या था ? "एक पत्थर जो कडे तोडने के लिए था, और विद्यार्थियो द्वारा एकत्रित ईन्धन-राशि बस यही उनका सब कुछ था।"¹ और जब वे महामन्त्री के पद पर अवस्थित हुए तब भी उनके पास वही सादगी थी, जो पहले थी। वे वृक्ष के नीचे बैठकर भारत के शासन—सूत्र का सचालन किया करते थे। उनके पास न सुरम्य कोठियाँ थी, और न चमचमाती कारें ही। इस सादगी प्रधान जीवन मे रहकर ही चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के शासन को चमकाया और भारत के यश को विदेशो तक फैलाया।

वर्तमान मे वियतनाम के राष्ट्रपति हो० ची० मिन्ह की सादगी भी अनुकरणीय है। जब वे राष्ट्रपति चुने गए, तब उन्होने अपने वक्तव्य मे जो कहा था, उसकी कुछ पक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती है—"मुझे राष्ट्रपति इसलिए चुना गया है कि मेरे पास ऐसी कोई चीज नही, जिसे मै अपनी कह सकूँ। न मेरा अपना मकान है, न परिवार और न भविष्य की चिन्ता। राष्ट्र का हित ही सब कुछ है। राष्ट्र ही मेरा भविष्य और परिवार है।" राष्ट्रपति हो० ची० मिह्न के रहने का मकान भी सामान्य—व्यक्तियो की ही तरह कच्चा बास का ही बना हुआ है, और अन्य आवश्यक साधन भी सीमित-परिमित है।

आज हमारे देश के मन्त्रियो व राष्ट्रपति को भी इनसे प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता है जो रहन-सहन के ऊँचे स्तर मे विश्वास जमाए बैठे है। पर यह स्मरण रहे कि मानव की शान-शौकत रहन-सहन के ऊँचे स्तर मे नही है, सादगी और अपरिग्रह वृत्ति मे है। आज इस आदर्श का पालन करने वाले मन्त्री हमारे देश मे कितने है ? गाधी जी आश्रम मे थे, निष्परिग्रह बनकर रहते थे। किन्तु उनके अनुयायी आज कहाँ रहते है ? विराट् भवनो मे ! आश्रम सूने-सूने पडे है। आज यह अपेक्षित है कि हमारे नेतागण भी जनता के सन्मुख कुछ त्याग-भावना का आदर्श उपस्थित करते हुए भारत के उस गौरव पूर्ण अतीत को पुन साकार करे।

---

१ उपलशकलमेतद् भेदक गोमयानाम्।
बटुभिरुपहृताना बर्हिषा स्तोम एष ॥ —मुद्राराक्षस नाटकम्

५ | मानव और मानवता

•

मानव का जीवन पशु की तरह आहार और निद्रा तक ही सीमित नही है। विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के नाते उसमे दया, प्रेम, क्षमा और सहानुभूति के भाव भी है। इन भावो का क्षेत्र जितना विस्तृत होता चलता है, मानव उतना ही ऊपर से ऊपर उठता जाता है, और जब उसका यह प्रेम विश्व-व्यापी बन जाता है, तब वह पूर्ण मानव अर्थात्—महामानव कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लेता है। किसी विपत्तिग्रस्त भाई को यदि वह उस विपत्ति से मुक्त नही कर सकता, उसके लिए अपने स्वार्थों का बलिदान नही दे सकता, तो वह पशु की स्थिति से उन्नत नही कहा जा सकता। जीवन मे आध्यात्मिक एव मानवीय गुणो का विकास ही तो मानव को पशु से पृथक् करता है। जब तक मानव अपने भीतर रही हुई पशुवृत्ति का दमन नही करता वहाँ तक अपने जीवन का वास्तविक मूल्याकन नही कर सकता।

कभी-कभी व्यक्ति अपने स्वार्थो की सृष्टि रचने के लिए दूसरो की जिन्दगी तक को भी कुचल डालता है, क्या यह उसकी मानवता है? कहना चाहिए मानवता नही, दानवता है, पशुता है। जव किसी एक प्रमुख अतिथि के स्वागत हेतु बन रहे मार्ग मे बाधक एक गरीव की झोपडी ही उखाड़कर फेंक दी गई तब एक कवि की हृदयतन्त्री अनन्त वेदना के स्वर मे घुलकर इस प्रकार झकृत हो उठी—

हाय रे! एक पाषाण का,
रूप इतना सवारा गया।

और उसकी खुशी के लिए,
फूल बेमौत मारा गया।

वस्तुत आज के इस भौतिकवाद की चकाचौंध मे मानव मानवता को ही भुला बैठा हैं। प्रसिद्ध सर्वोदयी विचारक दादा धर्माधिकारी ने अपने जीवन का आँखो देखा एक जीता-जागता सस्मरण लिखा है—"कोई तीस साल पहले की बात है। एक रियासत की राजधानी मे शहर के बाहर सुन्दर बगीचे मे बना हुआ एक राजमहल हम देखने गए। वहाँ की एक-एक चीज अनुपम और दर्शनीय थी। हाथी दात के पलग, सुन्दर शीशे, चाँदी से मढी हुई कुर्सियाँ और कोच। उस वैभव का वर्णन कौन करे? लेकिन उसमे मनुष्यता का स्पर्श नही था। महल के मालिक के आत्म-स्पर्श की कोई भी निशानी नही थी। दफ्तर के बाबू से पूछा—यह महल किसका है? कुछ लोग हँसकर बोले—'महाराज का है। और किसका?' मैने पूछा—महाराज इसमे कभी रहते है? उन्होने कहा—नही। तो फिर इसमे कौन रहता है? मैने कहा। वे बोले—'कोई नही।' तुम लोग कहाँ रहते हो? मैने पूछा तो वे बोले-अपने-अपने घरो मे! फिर यहाँ क्यो आते हो? मैने कहा। उन्होने कहा—इसलिए कि यहाँ कोई रहने न पाए, इन शीशो मे कोई देखने न पाए, इन मचको पर कोई सोने न पाए, इन कुर्सियो पर कोई बैठने न पाए। इसी काम के लिए हम को तैनात किया गया है, और इसी काम के लिए हमको तनख्वाह मिलती है।"[१०] यह है मानव की विलासप्रियता का एक चित्र जिसमे मानवता के दर्शन तक नही हो पाते।

आज विलासप्रधान साधनो का अधिकाधिक महत्व दिया जा रहा है। यही कारण है कि मानव के जीवन मे भ्रष्टाचार की दुर्गन्ध दिन-ब-दिन अधिक फैल रही हे। मानव का विलासी मन सोचता है-मेरे पास ऐसे विलक्षण प्रकार के साधन हो जो अन्य के पास न हो। मेरे कपड़े, मेरा मकान, मेरी घडी, मेरा रेडियो, मेरी साईकिल, मेरी मोटर आदि ऐसे हो जो अन्य व्यक्तियो से बढ-चढकर हो। जब मानव का मन इस प्रकार की स्पर्धा मे दौड लगाने लगता है तब वह उन्हे जुटाने के लिए अनुचित उपायो को स्वीकार करने मे जरा भी नही

---

१० सर्वोदय, मासिक पत्र,

हिचकिचाता। येन-केन प्रकारेण वह साधन-सम्पादन कर ही लेता है। मानव की तृष्णा इतनी बढ चली है कि वह सुरसा के मुख की तरह सब कुछ निगलने को तैयार है। सतोष कोसो दूर भागता जा रहा है। परिणामत इसी से समाज मे सघर्षो का एक भूचाल पैदा हो गया है। इस बुराई को दूर करने के लिए ही तो भगवान् महावीर ने अपरिग्रहवाद की दिशा मे प्रयाण करने का सकेत किया है। इच्छाओ को कम करने से आवश्यकताएँ कम होगी और आवश्यकता कम करने से भौतिक प्रतिस्पर्धा भी शान्त हो जायगी। यही मानवता के आनन्द का एक मात्र मार्ग है।

शोषण-दमन का कुचक्र चल रहा है और भोगवाद को विशेष बढावा मिल रहा है, तथा समाज के अन्तर मे विषमता की जो ज्वाला दहक रही है, यदि उसके मूल कारण की खोज की जाय तो अपरिग्रहवृत्ति का अभाव ही परिलक्षित होगा। क्योकि परिग्रह से जीवन मे कभी भी शान्ति का अनुभव नही किया जा सकता। तभी तो भारत के इस पावन प्राङ्गण मे बडे-बडे महान् त्यागी पुरुषो—राम, बुद्ध, महावीर गाधी, आदि ने जनसमाज को अपरिग्रहवृत्ति का दिव्य-सन्देश दिया। वे स्वय निष्परिग्रही थे और यही कारण है कि विश्व पर उनकी वाणी का चमत्कारी प्रभाव होता था। वर्तमान मे भी भूदान यज्ञ के प्रणेता सन्त विनोबा भावे गरीबो की सेवा के लिए भारत मे घूम-घूम कर प्रयत्न कर रहे है, जो अत्यन्त मूल्यवान है।

विश्व के सभी राष्ट्रो मे अमेरिका अधिक धनी माना जाता है। वह अपनी अतुल धन–राशि के बल पर समस्त विश्व मे अपना वर्चस्व तथा प्रभाव जमा देना चाहता है। यद्यपि अमेरिका की वैभव-शीलता और विलासप्रियता से भले ही भारत का दिल गुद्गुदाता हो, किन्तु अमेरिका की आन्तरिक स्थिति का अध्ययन किया जाय तो रोमाच हो उठेगा। अमेरिका का एक पत्रकार अमेरिका की आन्तरिक स्थिति का क्या चित्रण प्रस्तुत कर रहा है—"अमेरिका मे ६० लाख व्यक्ति मानसिक व्याधियो से सत्रस्त हैं तथा १५ लाख व्यक्ति बुद्धिहीनता से पीडित है। १ करोड ७० लाख व्यक्ति ऐसे है, जिनका सन्तुलन ठीक नही है। अमेरिका के प्रति १२ बच्चो मे से १ बच्चा प्रतिवर्ष किसी न किसी भयकर मानसिक रोग से पीडित होता है। गत महायुद्ध मे अमेरिका मे १ करोड ४० लाख आदमियो की जाच की गई थी। जिनमे केवल २० लाख ही सेना मे भर्ती के योग्य पाए गए। वहाँ प्रति २०० व्यक्तियो मे से एक व्यक्ति पागल हो जाता है। १५ हजार आदमियो मे से ७६ को कोई न कोई साधारण बीमारी है। आजकल अमेरिका मे २ करोड ५० लाख लोग यानी वहा की सारी जनसख्या के छठे भाग से भी अधिक किसी न किसी बीमारी से पीडित है। ५५ साल की आयु के बाद प्रति ८ पुरुषो में १ और प्रत्येक १४ महिलाओ मे एक की मृत्यु कैंसर से होती है। लगभग १७ लाख ५० हजार गम्भीर अपराध वहाँ प्रतिवर्ष किए जाते हैं। लगभग ५० हजार लोग शराब पीने के आदी हैं। धूम्रपान तो वहाँ

का आम रिवाज ही बन गया है। प्रतिवर्ष १७ हजार व्यक्ति आत्म-हत्या करते है। प्रतिवर्ष होने वाले प्रति ४ विवाहो के पीछे एक तलाक होता है। प्रति ७ से १७ वर्ष की आयु के करीब २ लाख ६५ हजार अपराधी बच्चे अदालत मे पेश किये जाते है।" यह है अमेरिका के विलासपूर्ण जीवन का एक नग्न-चित्र! रोमाचक आकडे! क्या भारत उसके पदचिह्नो पर चलकर अपनी अपरिग्रह परायण वृत्ति की गोरवगरिमा को सुरक्षित रख सकेगा? और शान्ति प्राप्त कर सकेगा? कदापि नही!

आज अपरिग्रहवृत्ति के अभाव के कारण ही नैतिक और भौतिक-स्थिति मे कोई सन्तुलन प्रतीत नही हो रहा है, और विषमता प्रति-दिन बढती जा रही है। वर्तमान युग की विषमताओ से पीडित विश्व को सचेत करते हुए श्रीकिशोरलाल मशरुवाला लिखते है—"आज की स्थिति मे जो धन या जाति आदि के रूप मे विशेष अधिकारो का सुख भोग रहे है वे यदि उनका त्याग नही कर देते, अपनी सम्पत्ति के ईमानदार ट्रस्टी नही बन जाते, ऊँच-नीच का भेदभाव छोडकर जनता मे घुलमिल नही जाते, देश की गरीबी के साथ अपनी शान-शौकत कम नही कर लेते तो गाधी जी के समान अहिंसा-मार्गी नेता के अभाव मे साम्यवाद और उसके साथ चलने वाली हिंसा अवश्य आयेगी? इस सघर्ष से बचने का एक ही उपाय है, और वह यह कि हम अपनी इच्छा के अनुसार आज का जीवन बदलते जाय। ये सब परिवर्तन भी एकदम गाधी जी के आदर्श तक नही पहुँचा देगे। ये अभीष्ट सीढियाँ तो है, यदि हम सीढियो द्वारा भी आगे बढने को उत्सुक नही तो साम्यवाद की बाढ रुक नही सकती और यह बाढ विनाशक ही होगी।"[12]

साराश यह है कि अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त मानव जाति की सुख-शान्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसका जितना विस्तार होगा उतना ही विश्व मे राजनैतिक और धार्मिक सह अस्तित्व के साथ सार्वभौम सह—अस्तित्व की भावना जागृत होगी।

---

१२ गाधी और विश्व शान्ति, —पुस्तक मे उदधृत

७ | इच्छाओं पर नियन्त्रण

●

कोई भी बाह्य वस्तु अपने आप मे पाप नही है। किन्तु उस वस्तु के प्रति मानव मन की आसक्ति ही पाप और हिंसा है। भगवान् महावीर का अपरिग्रहवाद इस आसक्ति को घटाता है, और साथ ही इच्छाओ पर नियत्रण भी करता है। मानव मन की अनन्त इच्छाएँ है। उनका कभी अन्त नही आ सकता। तभी तो भगवान् महावीर ने इच्छाओ की तुलना अनन्त आकाश से की है।[13] जैसे आकाश का कही और छोर नही है, कही समाप्ति नही है, वह सभी ओर से अनन्त है। ठीक उसी प्रकार इच्छाएँ भी अनन्त है। मानव जब अपनी इच्छाओ के पीछे पागल बन जाता है तब उसकी पूर्ति के लिए वह रात-दिन एक कर देता है। सफलता प्राप्त न होने पर सघर्ष व लडाई लडने के लिए भी समुद्यत हो जाता है। समरभूमि मे तलवारे चमकती है और रक्त की नदिया वह निकलती है। अतीत हमारे सन्मुख है। पाण्डवो की ओर से शातिदूत बनकर श्री कृष्ण ने कौरवो से एक छोटी-सी माँग की, और वह भी उस विराट् साम्राज्य मे से केवल पाँच गाव ही मागे। किन्तु समस्त कौरवो का प्रतिनिधित्व करने वाले दुर्योधन का जो अमानवीय उत्तर था उसे हजारो वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जनमानस भूल नही सका। दुर्योधन ने कहा—हे केशव ? तुम तो पाँच गावो को देने की बात कहते हो, न जाने वे

---

१३ इच्छा हु आगाससमा अणतया। —उत्त० अ० ९ गा० ४८

कितने बडे होगे किन्तु मै तो सूई के नोक के अग्रभाग पर आए उतनी भूमि भी पाण्डवो को बिना युद्ध के नही दे सकता।'[१४]

दुर्योधन की इस दुर्नीति के कारण ही महाभारत जैसा भयकर युद्ध हुआ। इतिहास के हजारो पन्ने ऐसी घटनाओ के रग से रगे पडे है। वर्तमान मे भी लडाइयो का मूल कारण परिग्रह ही है। जब तक मानव का मन सतोष के माधुर्य से तृप्त नही होगा, तब तक ये लडाईयाँ चलती ही रहेगी।

पदार्थ परिमित है और इच्छाएँ असीम है। पेट भरना आसान है, पर पेटी (मन) का भरना कठिन है। ऐसी स्थिति मे मानव मन को विराम कहाँ? विश्राम कहाँ? मृग मीरीचिका की तरह भटकते-भटकते जीवन ही समाप्त हो जाय, किन्तु शान्ति के दर्शन नही हो सकते। शान्ति इच्छाओ के प्रसार मे नही, निरोध मे है। बस, इसी शान्ति सूत्र को लेकर भगवान् महावीर ने अपरिग्रहवाद का यह आदर्श सन्देश दिया है कि—"मानव! सबसे पहले तू अपनी इच्छाओ पर विजय प्राप्त कर। अपनी बढती हुई इच्छाओ को रोक।" उनको रोके बिना तुम्हारा जीवन बिना ब्रेक की गाडी के समान है। बिना ब्रेक की गाडी 'स्व' और पर दोनो के लिए बहुत बडा खतरा है। अत अपने जीवन को नियत्रित बना लो। जब जीवन नियत्रित हो जायगा, इच्छाएँ सीमित हो जायेगी, तब आवश्यकताएँ भी सीमित हो जायेगी और तब मानव का मन ससार की अनन्त सुख-सुविधाओ की ओर नही भटकेगा, वह अपने में ही केन्द्रित रहेगा। तब न कही युद्ध होगे, न विग्रह और न सघर्ष।

---

१४. सूच्यग्र नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव।

८

साम्यवाद और उसके निर्माता

•

परिग्रहवाद ने अनेक बुराइयो को जन्म दिया है। आज हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि समाज मे स्वामी और सेवक, शोषक और शोषित अमीर और गरीब की ये भेद–दीवारे किसने खडी की है? इसी परिग्रहवाद ने! और जब तक भेद-दीवारे समाज मे खडी रहेगी, तब तक समाज की विषमता मिट नही सकेगी।

वर्तमान मे साम्यवाद की जो लहर विश्व के वायु मण्डल मे तरगित हो रही है, उस के मूल मे क्या है? अनावश्यक परिग्रह का अतिसचय! अतिसग्रह!

'साम्यवाद' शब्द कितना सुन्दर है। यदि साम्यवाद शब्द से ध्वनित होने वाले सही अर्थ को प्रत्येक व्यक्ति आत्मसात् करले तो निश्चय ही देश, समाज और विश्व मे व्याप्त विषमताएँ समाप्त हो सकती है। यहा साम्यवाद से मेरा तात्पर्य कम्युनिज्म से नही है, न उसके प्रणेता रूस के मार्क्स से ही है, और न उसके प्रबल प्रचारक लेलिन और स्टालिन से ही है। किन्तु मै उस साम्यवाद के सम्बन्ध मे बता रहा हू कि जिसके सच्चे निर्माता भारत के सन्त-मनीषी हैं, जिन्होने विश्व को एक दिन साम्यवाद का दिव्य सन्देश दिया था। भगवान् महावीर ने करुणार्द्र होकर कहा था—'दुनिया के मानवो! तुम अपनी आवश्यकताओ से अधिक सग्रह न करो,

और जो जीवन की आवश्यकताएँ है उनको भी तुम नियन्त्रित करते जाओ। उन्हे बढाओ नही।" इस साम्यवाद को परिग्रह-परिमाणव्रत के नाम से भी अभिहित किया जाता है। यह अहिंसा-प्रधान विचार और पद्धति है। जबकि कार्लमार्क्स, लेलिन, स्टालिन आदि साम्यवादियो द्वारा अपनाई गई विचारधाराएँ व पद्धतियाँ हिंसापूर्ण व सघर्षमय है। उनमे अहिंसा को स्थान नही। रक्तमयी-क्रान्ति और वर्ग सघर्ष उसका मूल आधार है। हिंसा के विरोध मे हिंसा ही काम करती रही है। क्या कभी हिंसा मे हिंसा शान्त हो सकेगी? कदापि नही! किन्तु भगवान् महावीर का अपरिग्रह अहिंसा की भावना से आप्लावित है, और विश्वशान्ति की भावना के अत्यन्त सन्निकट है।

साम्यवाद-समाजवाद का जन्म सामन्तशाही एव पूँजीवादी उत्पीडन एव शोषण के कुचक्र को समाप्त करने के लिए हुआ है। ये वाद व्यक्ति हित की अपेक्षा समाज और राष्ट्रहित को अधिक महत्त्व देते हुए परिलक्षित होते है। इनके मूल मे एक सघर्प और विरोध की भावना है। त्याग और समर्पण का आदर्श उनके समक्ष नही रहा किंतु छीनने की और जबरदस्ती हडपने की कल्पना ही मुख्य रही है। दूसरी बात उनकी कल्पना मे व्यक्ति व राष्ट्र का भौतिक विकास ही प्रधान रहा है। उनका लक्ष्य है—देश के सभी व्यक्तियो को विकास का समान सुअवसर प्राप्त हो। खाना-पीना पहनना आदि सुख-साधन सब के समान हो। तभी तो कवि का स्वर साम्यवाद के रस मे घुलकर बोल रहा है —

नही किसी को बहुत अधिक हो,
नही किसी को कम हो।

क्रान्ति के स्वर मे—

आज सेठो की हवेलियां,
कल बनेगी पाठशालाएँ।

देश में न कोई भूखा रहे और न कोई नगा रहे। सब को समान अधिकार प्राप्त हो। साम्यवादी पद्धति मे कोई भी व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति नही बना सकता। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति मे उसकी शक्ति के अनुरूप काम लिया जाय, तथा उसकी आवश्यकता के अनुसार वस्तुओ की पूर्ति की जाय। किन्तु इस स्थिति को लाने

के लिए साम्यवादी नेता जिन साधनो का प्रयोग करते है, वे निर्दोष नही है। उनकी प्रक्रिया शुद्ध नही है, इसलिए भारतीय चिंतन और अहिंसा की साधना यहाँ पर साम्यवाद को रोकती है, कि शुद्ध और पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए शुद्ध और पवित्र साधनो का ही उपयोग होना चाहिए। रक्त क्राति से किसी का हृदय नही बदला जा सकता, हृदय परिवर्तन के लिए तो त्याग, सेवा और प्रेम की आवश्यकता है। यही अहिंसक क्राति का मूल स्वर है और यही भारतीय सस्कृति का अहिंसक तथा शान्तिपूर्ण साम्यवाद है।

९ | सर्वोदय और अपरिग्रहवाद

सर्वोदय का अर्थ है विश्व मे सब देशो की जनता का विकास और कल्याण होना। यह सिद्धान्त भगवान् महावीर के अपरिग्रहवाद से प्राय मिलता-जुलता है, दोनो के व्यवहार और प्रचार की पद्धति मे भिन्नता हो सकती हैं, किन्तु वैचारिक दृष्टि से कोई भिन्नता नही है।

सर्वोदय इस युग की नूतन देन नही है। सर्वोदय की भावना भारत की सस्कृति मे चिरकाल मे कहना चाहिए आदि—काल से ही व्याप्त रही है। "सब सुखी हो, सब निरोग रहे, सब कल्याण के भागी हो, किसी को भी दु ख का सामना न करना पडे।" यह भारतीय मनीपियो की अन्त कामना रही है।[15] इस भावना को व्यक्त करने के लिए सर्वोदय शब्द का प्रयोग भी जैनाचार्य समन्तभद्र ने करीब १५-१६ सौ वर्ष पहले किया है। उन्होने तीर्थंकर के शासन को 'सर्वोदय' तीर्थ कहा है।[16] तीर्थंकर का शासन, सामान्य शासन नही, किन्तु एक विशिष्ट प्रकार का शासन है, जिसमे प्राणीमात्र को आत्म-विकास का अवसर मिलता है। सभी का उत्कर्ष और सभी का उदय होता है। हाँ, वर्तमान मे सर्वोदय के अभियान मे गाँधी जी का विशिष्ट योग रहा है। आज भी उनके प्रमुख शिष्य आचार्य विनोबा भावे सर्वोदय-विचार-दर्शन को लेकर पदयात्रा

---

१५ सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग् भवेत्॥

१६ सर्वापदामन्तकर निरत सर्वोदयतीर्थमिद तवैव।
—युक्त्यनुशासन ६२

करते हुए सर्वोदय का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन कर रहे है। वास्तव मे देखा जाए तो अपरिग्रहवाद और सर्वोदय की भावना मे कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नही होता। दोनो एक ही कार्य के पूरक है, दोनो ही व्यक्ति व समाज की शान्ति के घटक है।

भगवान महावीर ने अपरिग्रह की जो व्याख्याएँ और सीमाएँ बताई है, उनमे सिर्फ धन सम्पत्ति का त्याग ही नही, बल्कि अपने अधिकार मे रहे, हुए, दास, सेवक, पशु, वाहन और खेती, जमीन आदि की सीमा निर्धारण करना भी सूचित किया गया है। अपरिग्रह-वाद मूलत व्यक्ति को अधिक से अधिक स्व केन्द्रित करता है, उसकी आवश्यकताओ पर स्वेच्छया नियन्त्रण लगाता है।

सर्वोदय की मूल भावना भी यही है। वह भी पूँजीपति से धन छीनने का नही कहता, किन्तु वह कहता है— जो धन तुम्हारे पास है, वह समाज को अर्पित कर दो, अपना स्वामित्त्व हटालो, तुम उसके मालिक बनकर नही, किन्तु रक्षक (ट्रस्टी) व व्यवस्थापक बनकर समाज के कल्याण कार्यों मे उसका नियोजन करते रहो।

व्यक्ति अपनी बुद्धि व श्रम से उपार्जित धन को समाज हितार्थ तभी अर्पित करेगा, जब वह अपनी असीम इच्छाओ पर सयम रख सकेगा, आवश्यकताओ पर नियन्त्रण करेगा—इस दृष्टि से सर्वोदय और अपरिग्रह का मूल स्वर एक है, और दोनो की फलश्रुति भी बहुत कुछ समान है, व्यक्ति व समाज शान्ति पूर्वक जीए, सबको आत्म-विकास का अवसर मिले।

वास्तव मे जिस दिन अपरिग्रह एव सर्वोदय के ये सिद्धान्त जन-जीवन मे पूर्णतया उतर आयेगे, और वह सामूहिक रूप मे प्रयुक्त होने लगेगे उस दिन अर्थ-वैषम्य जनित सामाजिक समस्याएँ व राष्ट्रीय समस्याएँ स्वत समाप्त हो जायेगी, और मानव दुर्लभ सुख का खजाना प्राप्त कर लेगा। अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त, उसके व्रत व उपदेश हजारो वर्षों से हमारे समक्ष है, किन्तु अब तक उन व्रतो व उपदेशो का सम्यक् पालन नही किया गया। यदि सम्यक् प्रकार से इसकी परिपालना होती तो विश्व मे हिंसा-जन्य विप्लव कभी नही होते। यह महान् खेद की बात है कि अपरिग्रह के सिद्धान्त का अनुयायी समाज भी आज इससे अछूता है। उसकी वाणी मे तो अपरि ग्रहवाद झलकता है, किन्तु आचरण मे शून्यता दृष्टिगोचर होती है।

अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त मानव को अपनी तृष्णा, ममता एव लोभ वृत्ति को सीमित करने के लिए प्रेरित करता है। साधु-सन्यासियो के लिए ही नही, गृहस्थो के लिए भी अपरिग्रह पॉच मूलव्रतो मे प्रमुख व अन्यतम व्रत है। शेष व्रतो के पालने मे भी इसकी वडी उपयोगिता है। इसका पालन प्रत्येक गृहस्थ के लिए आवश्यक वतलाया गया है। व्यक्ति के लिए ही नही, समाज, देश, व राष्ट्र के लिए भी हितकर है। मानव अर्थलिप्सा के चक्र मे ही न फँसा रहे और जीवन के उच्चतर लक्ष्य को ममत्त्व के प्रगाढ अन्धकार मे ओझल न करदे, इसके लिए अपरिग्रह की भावना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे आनी ही चाहिए। यह आधुनिक युग की ज्वलन्त समस्याओ का सुन्दर अहिंसात्मक समाधान है। यदि विश्वजीवन के कण-कण मे इसका प्रभाव परिव्याप्त हो जाता है, तो फिर हिंसक-क्रान्ति युक्त समाजवाद, या साम्यवाद आदि किसी भी वाद की आवश्यकता ही नही रहेगी।

१० | अपरिग्रहवाद की उपयोगिता

•

वर्तमान विश्व की स्थिति कछ इस प्रकार है कि वह लगभग दो विभागो मे विभक्त हो कर रह गया है। एक विभाग का नेता अमेरिका है जो - पश्चिमी राष्ट्रो के हितो की रक्षा का उत्तरदायित्व लिए बैठा है। दूसरे साम्यवादी राष्ट्रो का नेता रूस है। दोनो अपने-अपने स्वार्थो से खेल रहे है, दोनो के बीच शीतयुद्ध तीव्रता से चल रहा है। दोनो शान्ति के नारे लगाते हुए भी युद्ध के भीषण साधन सम्पादन कर रहे है। यदि ये दोनो देश के किसी भूभाग पर कुछ भी हरकत करते है, तो सम्पूर्ण विश्व को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इस लिए विश्व के अन्य सभी राष्ट्रो की निगाहे इन पर गडी हुई है। इनकी सामान्य-सी भूल भी विश्व युद्ध की चुनौती बन सकती है।

उपर्युक्त समस्या के समाधान मे, और शान्ति का नव-विहान लाने मे अपरिग्रहवाद कितना उपयोगी है, यह किस से छिपा हुआ है? यदि उन व्यक्तियो ने, व राष्ट्रो ने अपना जीवन अपरिग्रहवाद की भावना के अनुकूल बना लिया तो निश्चय ही आज के इस अशान्त वातावरण मे एक नूतन एव सुखद परिवर्तन आ जाएगा। यह तो जन मानस का परखा हुआ सिद्धान्त है कि अधिक साधन मानव की मानवता का अपहरण कर लेता है, उसे दानव बना देता है, और यह दानव-वृत्ति ही हिंसा की जड है। इस हिंसा से बचने के लिए अपरिग्रहवाद को अपनाना आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। अपरिग्रहवाद जनतन्त्रवाद की बहुत बडी शक्ति है, और इस की सुखद छाया मे रह कर ही हम अहिंसा के उच्च आदर्श को प्राप्त कर सकते है।

चार : अहिसा और अनेकान्तवाद

---

* अहिंसा के दो रूप

बौद्धिक अहिंसा की आवश्यकता

* अनेकान्तवाद का स्वरूप

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद

* क्या स्याद्वाद सशयवाद है ?

* एकान्तवाद नही, अनेकान्तवाद

* पदार्थ की नित्यानित्यता

जीव और लोक की नित्यानित्यता

सत् असत् पर विचार

त्रिगुणात्मक पदार्थ

* अनेकान्त की आधारशिला

अनेकान्तवाद एक सुन्दर उद्यान !

समस्या के समाधान की दिशा मे

१ | अहिंसा के दो रूप

●

✽ अहिसा और अनेकान्तवाद जैनदर्शन के प्राणभूत तत्व है। जैन दर्शन मे इनका वही महत्व है जो महत्व हमारे शरीर मे हृदय और मस्तिष्क का है। अहिसा-आचार प्रधान है, तो अनेकान्त विचार-प्रधान। अथवा यो कहना चाहिए कि अहिसा व्यावहारिक अहिसा है, तो अनेकान्त बौद्धिक अहिसा। व्यावहारिक अहिसा मे—पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति तथा त्रस जीवो की हिसा से विरत रहना, और इनके प्रति दया, करुणा, मैत्री व आत्मौपम्यता की भावना की जाती है। बौद्धिक अहिसा—अनेकान्त से विचारो का वैषम्य, मनोमालिन्य, विचारगत सघर्ष या दार्शनिक विचार-भेद और तज्जन्य सघर्ष दूर होता है। अनेकान्त मे—सहअस्तित्व, सद्-व्यवहार तथा विरोधी विचारो के प्रति सम्मान का सौरभ महकता है।

बौद्धिक अहिसा की आवश्यकता

●

आज मानवीय जीवन मे आचार-प्रधान अहिसा के साथ ही विचार-प्रधान अहिसा की भी अपेक्षा है। जहाँ विचारो का सुमेल अर्थात् समानता नही है, वहाँ अनेक प्रकार के सघर्ष, कलह, द्वन्द्व व आलोचना प्रत्यालोचना की बाढ–सी आजाती है। मानव एकान्त पक्ष का आग्रही बन कर अन्धविश्वासो का शिकार बन जाता है, और सकुचित व क्षुद्र मनोवृत्ति मे फस कर एक दूसरे के प्रति छीटाकसी करने लग जाता है। वह अपने विचार व धर्म को सत्य बताता है और दूसरे विचारो तथा धर्मों को मिथ्या। अपनी साधना–आराधना की पद्धति को ही साध्य की सप्राप्ति मे एक मात्र निमित्त मानता है। दूसरो की साधना को तथ्यहीन व

विडम्बना मात्र समझता है। 'सच्चा सो मेरा' इस सिद्धान्त को न स्वीकार कर 'मेरा सो सच्चा' इसी सिद्धान्त की रट लगाता रहता है। परिणामतः इस सकीर्ण वृत्ति से मानव समाज मे अशान्ति की लहर-लहराने लगती है। इतना ही नही, जब मानव मे सकीर्ण-वृत्ति जनित-अहकार, आग्रह तथा असहिष्णुता चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है, तो सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र भी समर-भूमि का रूप धारण कर लेते हैं, और खून की नदियाँ बह चलती है। इस परिस्थिति के निराकरण के लिए ही जैन दर्शन ने विश्व को अनेकान्त-वाद की दिव्य-दृष्टि प्रदान की है।

ससार के विविध प्रकार के सतापो से मुक्ति पाने का साधन धर्म और दर्शन है। इसी पवित्र उद्देश्य से आचार्यो ने इसका प्रचार—प्रसार किया है, किन्तु मनुष्य की दुर्बलता धर्म और दर्शन को भी दूषित बनाने से नही चूकी। मानव हृदय की सकीर्णता ने धर्म और दर्शन के क्षेत्र मे भी अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न कर दी। उसमे भी सकीर्णता आई। सकीर्णता की बदौलत धर्म और दर्शन को लेकर भी सघर्ष हुए। आग बुझाने के लिए पानी का उपयोग किया जाता है और यदि पानी ही आग का काम करने लगे तो आग कैसे बुझेगी? यही हाल यहाँ हुआ। शान्ति की प्राप्ति के लिए धर्म व दर्शन आए, मगर वे भी जब अशान्ति की आग फैलाने लगे तो शान्ति की स्थापना कौन करता? भगवान् महावीर और उनके पूर्ववर्त्ती तीर्थकरो ने मानव जाति की इस दयनीय दशा को समझा और उसके प्रतीकार का एक अमोघ साधन बतलाया। वही साधन अनेकान्तवाद के नाम से अभिहित हुआ।

अनेकान्तवाद एक ही दृष्टिकोण से ससार को देखने-परखने की हिमायत नही करता, वरन् प्रत्येक वस्तु को विविध दृष्टि-बिन्दुओ से देखने-परखने की प्रेरणा देता है। अनेकान्तवाद अनाग्रहवाद है। इसका कहना है कि—जहाँ एक व्यक्ति के दृष्टि-कोण मे सत्य है, वहाँ अन्य के दृष्टि-कोण मे भी सत्य हो सकता है। अत अन्य के दृष्टि-कोण के प्रति भी हमे उदार होना चाहिए। उसे मध्यस्थ-भाव मे समझने का धैर्य उत्पन्न करना चाहिए।

२ | अनेकान्तवाद का स्वरूप

•

जैनसस्कृति का यह अमर स्वर है कि—प्रत्येक पदार्थ अनन्त धर्मो का पिण्ड है ।[1] अनन्तगुणो व विशेषताओ को धारण करने वाला है। वस्तु के अनन्तधर्मात्मक होने का अर्थ हुआ कि सत्य अनन्त है, तो फिर उस अनन्त सत्य को देखने के लिए दृष्टि भी अनन्त चाहिए। अर्थात् विराट् दृष्टि के द्वारा ही उस अनन्त सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है । सीमित व एकागी दृष्टि से सत्य के पूर्णाश को देखा-परखा नही जा सकता। पदार्थ के समस्त धर्मो को अर्थात् पूर्ण सत्य को समझने के लिए विविध दृष्टिकोणो की आवश्यकता है । एक ही दृष्टि से पदार्थ का पर्यालोचन करने की पद्धति एकागी व अप्रामाणिक है। जब कि भिन्न-भिन्न दृष्टि बिन्दुओ से पदार्थ—धर्म का कथन करना प्रमाणिक व सत्य है। किसी भी पदार्थ के प्रकट गुणो को ग्रहण करते हुए अप्रकट गुणो को भुलाया नही जा सकता ।

एक बार गणधर गौतम चिन्तन की चाँदनी मे घूम रहे थे कि सामने निकटवर्ती वृक्ष पर एक भ्रमर उडता हुआ दिखलाई पडा। गौतम ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—'भगवन् ? यह जो सामने भ्रमर उडरहा है, इसके शरीर मे कितने रग है ?'

---

१ अनन्तधर्मात्मकं वस्तु, प्रमाणविषयाविह ।

—षड्दर्शनसमुच्चय

जिज्ञासु की जिज्ञासा को शान्त करते हुए भगवान् ने उत्तर दिया—'गौतम ? व्यवहार नय से भ्रमर का एक ही रग है, काला, किन्तु निश्चय नय मे इसके शरीर मे पाँचो ही वर्ण है।'[२]

इसी प्रकार गुड के सम्वन्ध मे भी गौतम ने एक प्रश्न किया। 'भगवन् ? फाणित-प्रवाहित गुड मे कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस, और कितने स्पर्श है ?

सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने उत्तर दिया—'गौतम ? व्यवहार नय की अपेक्षा तो वह मधुर कहा जाता है, पर निश्चय नय की अपेक्षा मे उसमे पाच वर्ण, दो गन्ध और आठ स्पर्श है।'[३]

निश्चय नय वस्तु के वास्तविक, मौलिक एव अन्तरग स्वरूप का निर्णय करता है, और व्यवहारनय केवल वाह्य एव ऊपरी स्वरूप का। इसमे यह सिद्ध होता है कि वस्तु का वास्तविक स्वरूप कुछ और होता है और इन्द्रिय-ग्राह्य स्वरूप कुछ और। अल्पज्ञ छद्मस्थ—वस्तु के वाह्य स्वरूप को (जो इन्द्रिय ग्राह्य है) ही जान सकता है। किन्तु सर्वज्ञ आत्मा वाह्य और आभ्यन्तर दोनो स्वरूपो को जानते, देखते है। और इसीलिए उन्हे सर्वज्ञ कहा गया है कि वे वस्तु को सम्पूर्ण रूप से जानते है।

हाँ तो, अनेकान्तवाद पदार्थ के उन अनन्त धर्मो की तरफ ध्यान केन्द्रीभूत कराता हुआ कहता है—'वस्तु अनन्त गुणात्मक है। उसमे एक नही, अनन्त गुण है। उन अनन्त गुणो को जानने के लिए अपेक्षा-दृष्टि की आवश्यकता है, और यह अपेक्षा दृष्टि ही अनेकान्तवाद है। इस अनेकान्तवाद को स्याद्वाद भी कहते है।

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद

जैनदर्शन का मूल आधार अनेकान्तवाद है और उसकी अभिव्यक्ति स्याद्वाद है। अनेकान्त केवल एक ज्ञानात्मक अनुभूति है, और यह अनुभूति जब वाणी द्वारा अभिव्यक्त होती है तो उसे स्याद्वाद कहा जाता है। 'स्यात्' का अर्थ है कथचित्, किसी एक दृष्टि विशेष से, और 'वाद' का अर्थ है कहना। अर्थात् किसी अपेक्षा से वस्तु तत्त्व

---

२ —भगवती सूत्र १८–६

३ —भगवती सूत्र १८—६

का निरूपण करना स्याद्वाद है। स्याद्वाद समन्वयपरक और शान्ति का सर्जक है। वह मानव की बुद्धि का वैषम्य दूर करता है और समता का साम्राज्य स्थापित करता है। जीवन के हर क्षेत्र मे इसकी बडी उपयोगिता है। स्याद्वाद के सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वान् डा० थामस के विचार मननीय है। उन्होने लिखा है—"स्याद्वाद का सिद्धान्त बडा गम्भीर है। यह वस्तु की भिन्न-भिन्न स्थितियो पर अच्छा प्रकाश डालता है। स्याद्वाद के अमर सिद्धान्त का दार्शनिक जगत् मे बहुत ऊँचा स्थान माना गया है। वस्तुत स्याद्वाद सत्य ज्ञान की कुञ्जी है। दार्शनिक क्षेत्र मे स्याद्वाद को सम्राट् का रूप दिया गया है। 'स्यात्' शब्द को एक प्रहरी के रूप मे स्वीकार करना चाहिए, जो उच्चरित धर्म को इधर-उधर नही जाने देता। यह अविवक्षित धर्मो का सरक्षक है, सशयादि शत्रुओ का सरोधक व भिन्न दार्शनिको का सपोषक है।" स्याद्वाद मे जीवन की जटिल से जटिल समस्या को हल करने की क्षमता है। स्याद्वाद की दृष्टि से छोटा भी बडा और बडा भी छोटा है, पिता भी पुत्र और पुत्र भी पिता है। इस व्यावहारिक सत्य को दार्शनिक रूप देकर विचारो की सही विवक्षा एव प्रतिपादन करने की क्षमता स्याद्वाद मे ही है। स्याद्वाद की दृष्टि से ही उक्त कथन की अभिव्यञ्जना की जा सकती है। प्रत्येक वस्तु सम्बन्धी हमारी अनुभूति सापेक्ष होती है और उसी का व्यवहार मे प्रयोग किया जाता है।

स्याद्वाद के गम्भीर रहस्य को बतलाने के लिए आचार्यो ने एक बहुत सुन्दर व सरल उदाहरण प्रस्तुत किया है। किसी व्यक्ति ने पूछा—'आपका स्याद्वाद क्या है?' तो आचार्य ने कनिष्ठा व अनामिका, दोनो अगुलियाँ फैलाते हुए उससे कहा—'इन दोनो मे से बडी कौन-सी है?' उत्तर मिला—'अनामिका।' कनिष्ठा को समेट कर मध्यमा अगुली फैलाते हुए पूछा—'अब बतलाइए, दोनो मे से छोटी कौन-सी है?' उत्तर मिला—'अब अनामिका छोटी है।' तब आचार्य बोले—'बस, यही हमारा स्याद्वाद है, सापेक्षवाद है, जो तुम एक ही अगुली को छोटी भी कहते हो और बडी भी।[४] ●

---

४ यथा अनामिकायाः कनिष्ठामधिकृत्य दीर्घत्व,
मध्यमामधिकृत्य ह्रस्वत्वम्। —प्रज्ञापनासूत्र, वृत्ति

३ | क्या स्याद्वाद संशयवाद है ?

०

बहुत से व्यक्ति स्याद्वाद के गभीर रहस्य को न जानने के कारण स्याद्वाद को सशयवाद या अनिश्चित-वाद कहते है। वैदिक परपरा के आचार्य शकर ने अपने शाकरभाष्य मे स्याद्वाद को सशयवाद के रूप मे उपस्थित किया है। जिन आधुनिक दार्शनिको ने निष्पक्षभाव से स्याद्वाद को समझने का प्रयास किया है, उन्होने शकराचार्य के इस निरूपण पर आश्चर्य व्यक्त किया है, और स्पष्ट टीका की है कि वेदान्त के आचार्य ने स्याद्वाद को समझा ही नही। इसी प्रकार कतिपय अन्य दार्शनिको ने भी इसी प्रकार की भूल की है। किन्तु स्याद्वाद की अन्तरात्मा मे प्रवेश कर देखेगे तो प्रभात के उजेले की तरह स्पष्ट ज्ञात हुए बिना नही रहेगा कि स्याद्वाद सशयवाद नही है। यह तो एक सुनिश्चित दृष्टिकोण है। प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय ने लिखा है—"यह अनेकान्तवाद सशयवाद का रूपान्तर नही है। आप उसे सभववाद कहना चाहते है, परन्तु 'स्यात्' का अर्थ सम्भवत करना भी न्याय सगत नही है। स्यादस्ति घट —अर्थात् स्वद्रव्य, क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से घट है, स्यान्नास्तिघट –अर्थात् पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से घट नही है। जब स्याद्वाद स्पष्ट रूप मे यह कह रहा है कि 'स्यादस्ति' यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इस स्वचतुष्टय की अपेक्षा से है ही, तो यह निश्चित अवधारण है। अत यह न सम्भववाद है और न अनिश्चयवाद है, किन्तु खरी अपेक्षा युक्त निश्चयवाद है।"[५]

---

५ भारतीय दर्शन, पृ० १७३

नारगी निम्बू की अपेक्षा बडी है, और खरबूजे की अपेक्षा छोटी है, इस कथन की सत्यता मे कोई सदेह नही है। क्या इसे सशय परक कथन कहा जा सकता है ? क्या इसका अर्थ यह है कि सभवत नारगी बडी हो, सभवत छोटी हो ? नही ! नारगी मे छोटापन और बडापन दोनो धर्म सुनिश्चित है। यद्यपि बडापन और छोटापन एक दूसरे से विरुद्ध धर्म है, मगर अपेक्षा भेद उस विरोध का निवारण कर देता है। विरोध का शमन कर देने मे ही तो स्याद्वाद की सफलता है।

अभिप्राय यह है कि एक ही अपेक्षा से यदि परस्पर विरोधी दो धर्मों का विधान किया जाय तो विरोध को अवकाश मिल सकता है। किन्तु विभिन्न अपेक्षाओ से जब विरोधी धर्मो का विधान किया जाता है, तो विरोध के लिए गुजाइश नही रहती। 'नारगी नीम्बू से बडी भी है और छोटी भी है' यह कथन परस्पर विरोधी है, किन्तु 'नारगी नीम्बू से बडी और खरबूजे से छोटी है' इस कथन मे अपेक्षाओ की भिन्नता के कारण विरोध को कोई स्थान नही है। यह एक सुनिश्चित सत्य है, जिसकी हमे अपने दैनिक जीवन मे प्रतिपद अनुभूति होती है। अत स्याद्वाद न सशयवाद है और न कल्पना लोक की हवाई उडान ही है। यह तो एक बुद्धिगम्य और सत्य पर अधारित सिद्धान्त है।

४ | एकान्तवाद नहीं, अनेकान्तवाद

०

वस्तु स्वरूप के सम्बन्ध मे एक पक्ष को ही आधार बनाकर किसी तथ्य का प्रतिपादन नही किया जा सकता। यदि कोई एक पक्ष का ही प्रतिपादन करता है तो वह एकागी दृष्टि-कोण है, यह एकान्तवाद है। एकान्तवाद मे मिथ्यात्व का अधकार भरा पडा है। अनेकान्तवाद मे सम्यक्त्व का प्रकाश जगमगा रहा है। अनेकान्तवाद की यह सर्वोपरि विशेषता है, कि वह वस्तु के अन्य विद्यमान धर्मों की ओर से नेत्र बद करके किसी एक ही धर्म को ग्रहण नही करता। वह जिस वस्तु स्वरूप का निरूपण करेगा उसके विविध धर्मों का परिज्ञान कराता हुआ कहेगा—इस अपेक्षा से ऐसा 'भी' है और अन्य अपेक्षा से ऐसा 'भी'। यह 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग करता है। 'ही' और 'भी' के अभिप्राय मे पर्याप्त अन्तर है। 'ही' के प्रयोग मे एकान्त आग्रह समाया हुआ है। वह एक विचार पक्ष के सामने दूसरे विचार पक्षो को ठुकराता है। अपूर्णता मे पूर्णता मानकर मनुष्य को भ्रम मे डालता है। जब कि 'भी' दूसरे पक्षो का स्वागत करने के लिए सतत समुद्यत है। समग्र सत्य की ओर इगित करता है। अत 'भी' विरोधी धर्मों से इन्कार नही होता, किंतु उनकी सभावना की ओर सकेत करता है। यह समन्वयवाद और अपेक्षावाद की भावना से अनुस्यूत है। इसमे वस्तु के प्रधान धर्म के साथ अन्य गौण धर्मों के कथन करने की गु जाइश रहती है। 'भी' विचार वैपम्य और सघर्प की स्थिति को मिटाता है। वैर-विरोध की भावना का उन्मूलन करता है। यदि यो कह दे तो गलत नही होगा कि 'भी' स्याद्वाद है तो 'ही'

मिथ्यावाद। 'भी' अपेक्षावाद का द्योतक है, 'ही' एकान्तवाद का प्रतीक है।

कल्पना कीजिए, घर मे एक नारी है। उस नारी को कोई पत्नी कहता है, कोई मा कहता है, कोई पुत्रवधू कहता है, तो कोई उसे भाभी कहता है। वास्तव मे वह नारी क्या' है ? इसका सही उत्तर अनेकान्त-वाद ही दे सकता है। अनेकान्तवाद की स्वर लहरी अपेक्षा वाद पर बल देती हुई कहती है, पति की अपेक्षा से वह नारी पत्नी है, पुत्र की अपेक्षा से वह मा है, सास-स्वसुर की अपेक्षा से वह पुत्रवधू है, देवर और ननद की अपेक्षा से वह भाभी है। वस्तुत नारी एक है, किन्तु गुरा-धर्म की अपेक्षा से उसके अनेक रूप है। यदि यहाँ अपेक्षा दृष्टि से काम नही लिया जाय तो गृहस्थ जीवन के सम्बन्धो मे भयानक उथल-पुथल होने की सभावना रहेगी। यही बात एक अन्य उदाहरण से और स्पष्ट की जाती है।

चार यात्री थे। चारो विभिन्न दिशाओ के रहने वाले थे। घूमते-घामते एक दिन एक स्थान पर सहज भाव से एकत्रित हो गए। उनमे एक रूमी था, एक अरबी था, एक पारसी था, एक तुर्की था। चारो भूख से अत्यन्त विकल थे। पर मजे की बात यह थी कि वे एक दूसरे की भाषा नही समझते थे। बडी कठिनाई से इशारो की भाषा मे उन्होने यह समझाने का प्रयास किया कि वे सब के सब भूखे है। भूख मिटाने के लिए कुछ साधन चाहिए। चारो ने अपने पास के पैसे इकट्ठे किये। अब सवाल था, आखिर इन पैसो से क्या लिया जाय ?

रूमी ने कहा—अस्ताफिल

अरबी ने कहा—एनब

पारसी ने कहा—अगूर

तुर्की ने कहा—उजम

सब अपनी-अपनी माग कर रहे थे, और वे इस वात पर डटे हुए थे कि अपनी मन पसन्दगी की ही वस्तु ली जाय। किन्तु जव किसी भी दृष्टि से समझौता न हो सका तो एक दूसरे का चेहरा तमतमा उठा, और परस्पर लड पडे। यहाँ तक कि घूसे वाजी की नौवत भी आ गई।

तभी उधर से एक फल वाला फलो की टोकरी लिए आ निकला। वह इन यात्रियो की भाषा को अच्छी तरह से समझता था। उसने अगूरो का एक गुच्छा निकाल कर इनके सामने रख दिया। अगूरो के गुच्छे को देखकर सब प्रसन्नता के मारे नाच उठे। वे जो वस्तु चाहते थे वह उन्हे मिल गई। पारसी जिन्हे अगूर कहता था, उन्हे ही रूमी अस्ताफिल कहता था, अरबी—एनव और तुर्की उजम के नाम से पुकारता था।

यहाँ फल एक है, किन्तु भापा की अपेक्षा से फल के नामो मे भिन्नता आगई है। यही वात वस्तु के स्वरूप की है। एक ही वस्तु मे अपेक्षा-कृत अनेक रूप देखे जा सकते है।

एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न दृष्टियो से भिन्न-भिन्न रूपो मे देखी जाती है। जिसका उदाहरण हमने पिछले पृष्ठो मे दिया ही है कि एक ही नारी किसी दृष्टि से माता भी है, पत्नी भी है, बहन भी है। —अनेकान्तवाद इन दृष्टियो को समझने की कला है। वह कहता है किसी वस्तु के एक ही पक्ष पर अपना निर्णय मत दो, किन्तु उसके दूसरे पक्ष को भी समझने का प्रयत्न करो—इसी का नाम जैन दर्शन है। वहुत से एकान्तवादी दर्शन, धर्म, सम्प्रदाय, व मजहब वस्तु के एक धर्म को ही पूर्ण वस्तु समझ बैठते है और उस पर ही अपना सिद्धान्त स्थिर कर लेते है। किन्तु यह बिल्कुल गलत विचार सरणि है, और यही सघर्ष की जड है। वस्तु का एक अश, या धर्म कभी भी पूर्ण वस्तु नही हो सकता। वह तो उसका एक अश मात्र है। अनेकान्तवाद एकान्त दृष्टि को मिटाकर सापेक्षवाद की दृष्टि को जन्म देता है। 'न एकान्त-अनेकान्त है'—जो एकान्त नही है, वह अनेकान्त है। एकान्तवाद मे कानापन समाया हुआ है। वह वस्तु या पदार्थ का एक पक्ष ही देखता है। इतर पक्षो को देखने के लिए उसकी दृष्टि वन्द हो जाती है। किन्तु अनेकान्तवाद वस्तु के सभी पक्षो पर गम्भीरता से विचार करता है और यथार्थ निर्णय के द्वारा सत्य के दर्शन कराता है।

५ | पदार्थ की नित्यानित्यता

जैन दर्शन प्रत्येक पदार्थ को नित्यानित्य मानता है। अर्थात् पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी है। नित्यत्व पदार्थ के उस मूल स्वभाव से अर्थात् द्रव्य से सम्बन्ध रखता है जिसका कभी नाश नही होता। पदार्थ अपने मूल रूप मे ध्रुव है, शाश्वत है। अनित्यत्व पदार्थ की पर्याय से सम्बन्धित है। उदाहरण के रूप मे मिट्टी का घडा नित्य भी है, और अनित्य भी। मिट्टी और घडे की आकृति दोनो घडो के निज रूप है। इसका एक रूप विनाशी है दूसरा अविनाशी। घडे का आकार सम्बन्धी रूप विनाशी है। यह आज है और कल नही। घडा बनता भी है और मिटता भी है। जैन दर्शन ने अनित्य रूप को पर्याय कहा है। पर्याय बदलता रहता है. इसलिए यह नाशवान् है। घडे का दूसरा रूप मिट्टी है। मिट्टी गतकाल मे अर्थात् घडा बनने से पूर्व भी थी, वर्तमान काल मे भी अवस्थित है, और आगामी काल मे भी रहेगी। अर्थात् घडे के नष्ट होजाने पर भी मिट्टी तो, मिट्टी रूप मे विद्यमान ही रहती है। जैन दर्शन ने पदार्थ के इस द्विविध स्वरूप को द्रव्य और पर्याय कहा है। इस दृष्टि से पदार्थ न एकान्त नित्य है और न अनित्य ही। वह तो तदुभय रूप नित्यानित्य है।

जीव और लोक की नित्यानित्यता

जीव भी कथचित् शाश्वत है और कथचित् अशाश्वत है। भगवान् महावीर ने कहा है—'गौतम! द्रव्यार्थिक दृष्टि से जीव शाश्वत है,

पर्यायार्थिक दृष्टि से अशाश्वत है।[६] यहां पर दो दृष्टियो से उत्तर दिया गया है। द्रव्य दृष्टि से जीव नित्य है और पर्याय दृष्टि से अर्थात् भाव दृष्टि से जीव अनित्य है। जीव मे जीवत्त्व का कभी अभाव नही होता। वह किसी भी अवस्था मे हो जीव ही रहता है, अजीव नही वनता। यह हुई द्रव्य दृष्टि। इस दृष्टि मे जीव नित्य, शाश्वत है, किन्तु जीव एक रूप मे कभी कायम नही रहता,अर्थात् उसके पर्याय वदलते रहते है। एक पर्याय से मुक्त होकर दूसरे पर्याय को ग्रहण करता है। ये पर्याय भी दो प्रकार की है—व्यजन पर्याय और अर्थ-पर्याय। व्यजन पर्याय—वह स्थूल अवस्था है जो त्रिकाल-स्पर्शी होने के कारण चर्मचक्षु द्वारा भी देखी जा सकती है, जैसे जीव की देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि पर्याय। यह पर्याय एक लम्वे समय तक टिकती है। किन्तु अर्थ पर्याय सिर्फ वर्तमान-स्पर्शी होती है। वह एक समय तक ही रहती है, दूसरे समय नही रहती। जीव मे अर्थात् आत्मा मे प्रतिक्षण, निरन्तर जो परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही है, वही अर्थ-पर्याय है। इन दोनो प्रकार के पर्यायो की दृष्टि से प्रत्येक जीव और विश्व के अन्य सभी पदार्थ अशाश्वत है—अनित्य है।

इसी प्रकार लोक कथचित् शाश्वत है, और कथचित् अशाश्वत है। क्यो कि अव तक ऐसा समय न तो आया और न आयेगा ही कि जिस समय लोक का अस्तित्त्व न हो, अत यह लोक ध्रुव, नित्य व शाश्वत है। काल-चक्र के परिवर्तन-प्रभाव के कारण लोक अशाश्वत भी है। अवसर्पिणी के वाद उत्सर्पिणी और उत्सर्पिणी के वाद अव-सर्पिणी काल आता है।[७] यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। इस काल भेद की अपेक्षा कभी उस मे सुख की मात्रा वढ जाता है तो कभी दुख की मात्रा अधिक हो जाती है। इस विविध रूपता के कारण लोक अनित्य है, अशाश्वत है और परिवर्तन शील है।

---

६ जीवाण भन्ते ! किं सासया, असासया ? गोयमा ! जीवा सिय सासया, सिय असासया। गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, भावट्ठयाए असासया !

भगवती सूत्र—७ । २ । ७७३

७ भगवती सूत्र—६ । ६ । ३८७

सत् असत् पर विचार

●

जैन दृष्टि के अनुसार पदार्थ अपने आप मे सत् भी है और असत् भी है। यहाँ पर यह शका उपस्थित हो सकती है कि जो पदार्थ सत् है वह असत् कैसे हो सकता है ? और जो असत् है वह सत् कैसे ? एक ही वस्तु मे दो विरोधात्मक धर्म कैसे पाये जाते है ? इस रहस्य का परिज्ञान करने के लिए अनेकान्तवादी दृष्टि की अपेक्षा है। अनेकान्तवाद कहता है–स्व-रूप से पदार्थ सत् है, पर-रूप से असत् है। दूध दूध के रूप मे सत है, दही के रूँप मे असत् है। यदि दूध की दूध के रूप मे सत्ता न मानी जाये तो वह शून्य हो जाएगा और यदि दही के रूप मे भी सत्ता मानी जाय तो उसमे खट्टापन की अनुभूति होनी चाहिए जो प्रत्यक्ष अनुभव विरुद्ध है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ का वास्तविक एव नियत स्वरूप तभी प्रतिफलित होता है जब उसे सत् असत् उभय रूप मे स्वीकार किया जाय।

त्रिगुणात्मक पदार्थ

●

जैन दर्शन में पदार्थ की परिभाषा करते हुए बताया है कि प्रत्येक पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति गुण स्वभाव से युक्त है। जहाँ पदार्थ की उत्पत्ति और विनाश है, वहाँ उसकी स्थिरता भी निश्चित है। इनको उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भी कहते है।[८] यहा उत्पाद और व्यय पर्याय रूप हैं, और ध्रौव्य द्रव्य का गुण रूप है। सुवर्ण के पुराने गहनो को तोडकर नवीन आकार-प्रकार के गहनो का निर्माण करने पर पुराने आकार का विनाश होता है, नये आकार का निर्माण होता है और दोनो ही अवस्थाओ मे स्वर्णत्व अवस्थित रहता है। यहाँ स्वर्णद्रव्य ध्रुव है, और पूर्वाकार का त्याग व उत्तराकार का ग्रहण क्रमश व्यय और उत्पाद है।

यह ध्रुव सिद्धान्त है कि विश्व का कोई भी पदार्थ मूलत नष्ट नही होता। पदार्थ मे उत्पत्ति और विनाश जो देखा जाता है वह केवल उसकी बाह्य आकृति आदि का है, न कि मूल तत्त्व का।

---

८ उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत्—तत्त्वार्थ सूत्र ५।२९।

वस्तु का जो अंश उत्पन्न व नष्ट होता है उसे जैन दर्शन की भाषा मे पर्याय कहा है, और जो उसकी अवस्थिति रहती है, वह द्रव्य माना जाता है।

द्रव्य वह है जो गुण और पर्यायो का आश्रय है।[९] उत्पत्ति, विनाश और स्थिति ये तीनो गुण पदार्थ के स्वाभाविक धर्म हैं। जैनाचार्यों ने पदार्थ के इन गुण धर्मों को स्पष्ट करने के लिए एक सुन्दर रूपक दिया है[१०]—तीन व्यक्ति एक साथ एक स्वर्णकार की दुकान पर पहुचे। एक को स्वर्ण का घट चाहिए था, दूसरे को स्वर्ण का मुकुट, और तीसरे को केवल सोना। उस समय स्वर्णकार स्वर्ण कलश को तोड कर स्वर्ण मुकुट बना रहा था। यह दृश्य देखकर पहले व्यक्ति को परिताप-सताप हुआ कि यह स्वर्ण कलश तोड रहा है। दूसरे व्यक्ति को सुखानुभूति हुई कि यह मुकुट बना रहा है। तीसरा व्यक्ति बिलकुल मध्यस्थ भावो से देखता रहा। क्योकि उसे स्वर्ण की आवश्यकता थी। तीन व्यक्ति एक ही स्वर्ण मे एक साथ तीन रूप देख रहे है। एक कलश रूप का विनाश, एक मुकुट रूप की उत्पत्ति और एक स्वर्ण रूप की ध्रुवता। उक्त रूपक के द्वारा पदार्थ के तीनो गुण धर्मो की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है। मुकुट रूप मे उत्पाद, घडे के रूप का विनाश और सोने के रूप मे ध्रौव्य। तीनो तत्त्व एक ही वस्तु मे स्पष्ट परिलक्षित होते हैं।

---

९ गुणपर्यायवद् द्रव्यम्—तत्त्वार्थ सूत्र ५।३७

१० घटमौलिसुवर्णार्थी नाशो पादस्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोद-माध्यस्थ्य, जनो याति सहेतुकम्॥
—समन्तभद्र, आप्तमीमांसा

६ | अनेकान्त की आधारशिला

तत्त्व के स्वरूप का निश्चय प्रमाण द्वारा होता है, यह प्राय सर्ववादि-सम्मत सिद्धान्त है। प्रमाणो की सख्या और स्वरूप आदि के सम्बन्ध मे भारतीय दर्शनो मे भले ही मतभेद रहा हो, मगर प्रमाण द्वारा वस्तु के निश्चय करने मे किसी का मतभेद नही है। किन्तु इस विषय मे जैन दर्शन एक मौलिक दृष्टि प्रदान करता है। उसका निरूपण यह है कि प्रमाण से वस्तु स्वरूप का निर्णय होता है, यह सही है, किन्तु अकेला प्रमाण वस्तु के परिपूर्ण स्वरूप का प्रतिपादन नही कर सकता। वस्तु के विश्लेषण के लिए प्रमाण के अतिरिक्त एक और तत्त्व अपेक्षित है, जिसे जैन परिभाषा मे 'नय' कहा गया है।[11]

प्रमाण और नय की परिभाषा करते हुए आचार्यों ने बताया है, —समग्र वस्तु का ग्राहक ज्ञान 'प्रमाण' है और वस्तु के एक अश का ग्राहक ज्ञान 'नय' है। इस प्रकार नय न प्रमाण के अन्तर्गत है और न अप्रमाण ही कहा जा सकता है। जैसे समुद्र का एक अश न समुद्र है और न असमुद्र है, बल्कि समुद्राश है, उसी प्रकार नय प्रमाणाश है।

नय ज्ञाता का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। एक ही वस्तु के विषय मे अनेक दर्शको के अनेक दृष्टिकोण होते है, जो परस्पर मेल खाते प्रतीत नही होते, तथापि उन्हे असत्य नही कहा जा सकता। कल्पना कीजिए, हमारे समक्ष 'क' नामक एक व्यक्ति है। उसको ओर लक्ष्य करके हम कई मनुष्यो से प्रश्न करते है—यह कौन है?

---

११ प्रमाणनयैरधिगम

— तत्त्वार्थ सूत्र अ० १।६

एक कहता है— यह जीव है।

दूसरा कहता है—यह मनुष्य है।

तीसरा कहता है—यह क्षत्रिय है।

चौथा कहता है—यह मेरा भाई है।

पाँचवाँ कहता है—यह मेरा काका है।

इसी प्रकार के अन्यान्य उत्तर भी उसके सम्बन्ध मे दिये जा सकते है। प्रश्न यह है कि ये सब पृथक्-पृथक् उत्तर सत्य पर आधारित है, या इन मे कोई उत्तर ऐसा भी है जो उस व्यक्ति पर लागू नही हो सकता हो।

उत्तरो मे भले ही विभिन्नता हो, फिर भी वे सब सत्य हैं। उत्तर भेद का कारण दर्शक का दृष्टि-भेद है। प्रथम उत्तरदाता उस व्यक्ति को एक पूर्ण द्रव्य के रूप मे देखता है। दूसरा उसे द्रव्य-पर्याय के रूप मे देखता है। तीसरा पर्याय के रूप मे, और आगे के उत्तरदाता और अधिक बारीकी मे जाकर पर्याय के भिन्न-भिन्न रूपो मे देखते हैं। इस प्रकार का दृष्टिकोण ही नय कहलाता है। नय की समीचीनता इस बात पर निर्भर है कि वह अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन तो करे, किन्तु दूसरे के दृष्टिकोण का निषेध न करे। नय-दृष्टि की एक सीमा है और वह यह है कि नय सदा विधायक दृष्टि से ही देखता है, वह अपने धर्म का, अपनी सत्ता का प्रतिपादन तो करता है, किन्तु दूसरे धर्म व दूसरी सत्ता का अपलाप नही करता। प्रथम व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह 'क' को जीव कहे, किन्तु 'यह मनुष्य है' इस उत्तर का निषेध करने का अधिकार उसे नही है। इसी प्रकार दूसरे को अधिकार है कि वह उसे मनुष्य कहे, मगर 'यह जीव नही है', ऐसा कहने का अधिकार उसको नही है। क्योंकि 'क' मे जीवत्व और मनुष्यत्व दोनो धर्म विद्यमान है। और उनमें से किसी का अपलाप करना मिथ्या है। इस प्रकार पूर्वोक्त सभी उत्तरदाता अगर दूसरे उत्तरदाताओ को सच्चा मानता है तो वह स्वयं भी सच्चा ठहरता है और यदि उन्हे झूठा कहता है तो स्वयं भी झूठा सिद्ध होता है। यही नयवाद अनेकान्त की आधार शिला है। अनेकान्तवाद का यही मन्तव्य है कि ससार के समस्त एकान्तवादी वस्तु के एक-एक धर्म के अंश को ही स्वीकार किये हुए चलते है। यही कारण है कि उनके निरूपण मे भेद दिखाई देता है। यदि वे

सभी एक दूसरे के दृष्टिकोण को उदार दृष्टि से समझने का प्रयत्न करे, अपने दृष्टिकोण के प्रतिपादन के साथ अन्य के दृष्टिकोण का खण्डन न करे तो उनमे कोई विरोध नही रह जाएगा। दूसरो को सच्चा मानने पर वह स्वय सच्चा साबित होगा। इसके विपरीत अगर वह दूसरो को मिथ्याभाषी कहता है, तो वह स्वय भी मिथ्या-भाषी है, क्योकि सत्य के एक अश को स्वीकार करके वह समग्र सत्य को स्वीकार करने का झूठा दावा करता है और दूसरे सत्याशो को स्वीकार करने वालो को मिथ्याभाषी कहने के कारण वह स्वय मिथ्याभाषी ठहरता है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु मे नित्यता, अनित्यता, सत्ता, असत्ता, एकता, अनेकता आदि अनेक धर्म विद्यमान है। उन्हे विभिन्न दृष्टिकोणो से घटित करने पर विरोध की कोई सभावना नही रहती। वस्तु मे एक-एक धर्म की सघटना के लिए जैन दार्शनिको ने सप्तभगीवाद का बडा ही सुन्दर एव तर्कसगत निरुपण किया है, जिसे दार्शनिक ग्रन्थो से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि विचार जगत् के सघर्ष को टालने के लिए और वैचारिक हिंसा का निवारण करने के लिए अनेकान्त-वाद एक अमोघ अस्त्र है। विचार जगत् के सघर्ष प्राय. एक दूसरे के सत्य पर आधारित दृष्टिकोण को न समझने और न स्वीकार करने के कारण ही उत्पन्न होते है। अनेकान्तवाद दृष्टि मे समग्रता उत्पन्न करके पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा करने की दिशा सुझाता है और जब पूर्ण सत्य को हृदयंगम कर लिया जाता है तो विचार-लोक के सभी सघर्ष स्वत समाप्त हो जाते है।

अनेकान्तवाद एक सुन्दर उद्यान

६

पदार्थ मे नित्यत्व-अनित्यत्व, सत्त्व-असत्त्व, एकत्व अनेकत्व, और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य जैसे विरोधात्मक तत्त्वो के समावेश के रहस्य का परिज्ञान कराने वाला सिद्धान्त अनेकान्तवाद व स्याद्वाद वस्तुत सुन्दर सुरभित फूलो का एक बगीचा है, जिसमे नाना रग और नाना प्रकार की सौरभ मे महकते हुए अनेक प्रकार के फूल खिले रहते है। प्रत्येक फूल अपनी मादक सौरभ मे महकता है, किंतु दूसरे की सौरभ व सुन्दरता पर किसी प्रकार का आघात नही करता। इसी प्रकार

अनेकान्तवादके उद्यान मे विविधता मे एकता और एकता मे विविधता, नित्यत्व मे अनित्यत्व, अनित्यत्व मे नित्यत्व आदि विविध प्रकार के विचार-पुष्पो के दर्शन किए जा सकते है। इस विराट् सिद्धान्त के द्वारा विश्व के समस्त दर्शन व धर्मो का समन्वय सहजतया किया जा सकता है।

समस्या के समाधान की दिशा मे

यह तो हम पिछले पृष्ठो पर लिख ही चुके है कि अहिंसा और अनेकान्तवाद जैनदर्शन के दो स्तभ है। दोनो के आधार पर जैन दर्शन टिका हुआ है। यो भी कह सकते है कि अहिंसा और अनेकान्त ने एक दूसरे का संतुलन बनाए रखा है। अनेकान्त के बिना अहिंसा अधूरी है, और अहिंसा के बिना अनेकान्त का कोई मूल्य नही। दोनो एक दूसरे के पूरक है। अनेकान्त मे अहिंसाकी भावना और अहिंसा मे अनेकान्त की भावना का स्पन्दन स्पष्ट दिखाई देता है। अनेकान्त को अहिंसा के अन्तर्गत भी लिया जा सकता है, और तब यह कह सकते है कि—अनेकान्त का माने है, बौद्धिक अहिंसा, वैचारिक अहिंसा।

शास्त्रो मे अहिंसा की जो सीमाए निश्चित की गई है, वे लगभग हमारे जीवन व्यवहारो को छूने वाली है। जीवन व्यवहार शुद्ध हो, किसीका शोषण न हो, उत्पीडन न हो, किसी के साथ क्रूरता पूर्ण व्यवहार न हो, अधिक सग्रह न किया जाय और खान पान की शुद्धता तथा पवित्रता रखी जाय, यह अहिंसा का एक व्यवहार पक्ष है। दूसरा पक्ष करुणा और मैत्री का है, अनेकान्त इसी भावात्मक पक्ष को परिपुष्ट करता है। हमारे विचारो मे उदारता, सहिष्णुता और मैत्री भावना का सचार अनेकान्त के विचार से ही हो सकता है।

वर्तमान युग मे मनुष्य के अन्तर मन से लेकर, जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र और अतर्राष्ट्रीय वातावरण तक दो प्रकारकी स्थितिया उलझी हुई है। आज मनुष्य एक ओर मनुष्य का शोषण कर रहा है, उसके सा निर्दयतापूर्ण पाशविक व्यवहार कर रहा है, और उसके विनाश के लिए सहारक शस्त्रो के निर्माण मे जुटा हुआ है। तो दूसरी ओर वैचारिक द्वन्द्व, पारस्परिक मत मुटाव, भय व आशका के कारण प्रत्येक राष्ट्र शीतयुद्ध की स्थिति से गुजर रहा है।

सभी एक दूसरे के दृष्टिकोण को उदार दृष्टि से समझने का प्रयत्न करे, अपने दृष्टिकोण के प्रतिपादन के साथ अन्य के दृष्टिकोण का खण्डन न करे तो उनमे कोई विरोध नही रह जाएगा। दूसरो को सच्चा मानने पर वह स्वय सच्चा साबित होगा। इसके विपरीत अगर वह दूसरो को मिथ्याभाषी कहता है, तो वह स्वय भी मिथ्याभाषी है, क्योकि सत्य के एक अश को स्वीकार करके वह समग्र सत्य को स्वीकार करने का झूठा दावा करता है और दूसरे सत्याशो को स्वीकार करने वालो को मिथ्याभाषी कहने के कारण वह स्वय मिथ्याभापी ठहरता है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु मे नित्यता, अनित्यता, सत्ता, असत्ता, एकता, अनेकता आदि अनेक धर्म विद्यमान है। उन्हे विभिन्न दृष्टिकोणो से घटित करने पर विरोध की कोई सभावना नही रहती। वस्तु मे एक-एक धर्म की सघटना के लिए जैन दार्शनिको ने सप्तभगीवाद का बडा ही सुन्दर एव तर्कसगत निरुपण किया है, जिसे दार्शनिक ग्रन्थो से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि विचार जगत् के सघर्ष को टालने के लिए और वैचारिक हिंसा का निवारण करने के लिए अनेकान्तवाद एक अमोघ अस्त्र है। विचार जगत् के सघर्ष प्राय. एक दूसरे के सत्य पर आधारित दृष्टिकोण को न समझने और न स्वीकार करने के कारण ही उत्पन्न होते है। अनेकान्तवाद दृष्टि मे समग्रता उत्पन्न करके पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा करने की दिशा सुझाता है और जब पूर्ण सत्य को हृदयंगम कर लिया जाता है तो विचार-लोक के सभी सघर्ष स्वत समाप्त हो जाते है।

अनेकान्तवाद एक सुन्दर उद्यान

पदार्थ मे नित्यत्व-अनित्यत्व, सत्त्व-असत्त्व, एकत्व अनेकत्व, और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य जैसे विरोधात्मक तत्त्वो के समावेश के रहस्य का परिज्ञान कराने वाला सिद्धान्त अनेकान्तवाद व स्याद्वाद वस्तुत सुन्दर सुरभित फूलो का एक बगीचा है, जिसमे नाना रग और नाना प्रकार की सौरभ मे महकते हुए अनेक प्रकार के फूल खिले रहते है। प्रत्येक फूल अपनी मादक सौरभ मे महकता है, किंतु दूसरे की सौरभ व सुन्दरता पर किसी प्रकार का आघात नही करता। इसी प्रकार

अनेकान्तवादके उद्यान मे विविधता मे एकता और एकता मे विविधता, नित्यत्त्व मे अनित्यत्त्व, अनित्यत्त्व मे नित्यत्त्व आदि विविध प्रकार के विचार-पुष्पो के दर्शन किए जा सकते है। इस विराट् सिद्धान्त के द्वारा विश्व के समस्त दर्शन व धर्मों का समन्वय सहजतया किया जा सकता है।

समस्या के समाधान की दिशा में

यह तो हम पिछले पृष्ठो पर लिख ही चुके हैं कि अहिंसा और अनेकान्तवाद जैनदर्शन के दो स्तभ है। दोनो के आधार पर जैन दर्शन टिका हुआ है। यो भी कह सकते हैं कि अहिंसा और अनेकान्त ने एक दूसरे का सतुलन बनाए रखा है। अनेकान्त के बिना अहिंसा अधूरी है, और अहिंसा के बिना अनेकान्त का कोई मूल्य नही। दोनो एक दूसरे के पूरक है। अनेकान्त मे अहिंसाकी भावना और अहिंसा मे अनेकान्त की भावना का स्पन्दन स्पष्ट दिखाई देता है। अनेकान्त को अहिंसा के अन्तर्गत भी लिया जा सकता है, और तब यह कह सकते हैं कि—अनेकान्त का माने है, बौद्धिक अहिंसा, वैचारिक अहिंसा।

शास्त्रो मे अहिंसा की जो सीमाए निश्चित की गई है, वे लगभग हमारे जीवन व्यवहारो को छूने वाली है। जीवन व्यवहार शुद्ध हो, किसीका शोषण न हो, उत्पीडन न हो, किसी के साथ क्रूरता पूर्ण व्यवहार न हो, अधिक सग्रह न किया जाय और खान पान की शुद्धता तथा पवित्रता रखी जाय, यह अहिंसा का एक व्यवहार पक्ष है। दूसरा पक्ष करुणा और मैत्री का है, अनेकान्त इसी भावात्मक पक्ष को परिपुष्ट करता है। हमारे विचारो मे उदारता, सहिष्णुता और मैत्री भावना का सचार अनेकान्त के विचार से ही हो सकता है।

वर्तमान युग मे मनुष्य के अन्तर मन से लेकर, जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र और अतर्राष्ट्रीय वातावरण तक दो प्रकारकी स्थितिया उलझी हुई है। आज मनुष्य एक ओर मनुष्य का शोषण कर रहा है, उसके सा निर्दयतापूर्ण पाशविक व्यवहार कर रहा है, और उसके विनाश के लिए सहारक शस्त्रो के निर्माण मे जुटा हुआ है। तो दूसरी ओर वैचारिक द्वन्द्व, पारस्परिक मन मुटाव, एव भय व आशका के कारण प्रत्येक राष्ट्र शीतयुद्ध की स्थिति मे गुजर रहा है।

धार्मिक जगत मे आये दिन होने वाले साप्रदायिक संघर्ष, कलह आदि की जड आखिर क्या है ? इस प्रकार विचार करने से ज्ञात होगा कि करुणा की बात और दया का सन्देश देने वाला धार्मिक मानस भी आज विचारो मे अत्यत आग्रही और असहिष्णु बना बैठा है। विचारो की यह हठवादिता जातीय, प्रान्तीय और अन्तर्राष्ट्रीय विवाद एव सघर्ष का मूल कारण है।

जीवन की इन उग्र समस्याओ का समाधान यदि कुछ है तो वह अहिंसा और अनेकान्त के मार्ग से ही हो सकता है। अहिंसा जगत की क्रूरता एव शोषण-मूलक प्रवृत्तियो पर रोक लगाएगी। अपरिग्रहवाद मनुष्य की भोगलिप्सा और तज्जन्य सघर्ष को शात करेगा और अनेकान्तवाद वैचारिक क्षितिज पर गहराने वाले अशाति के अन्धकार को मिटाकर, शाति का प्रकाश जगमगाएगा। सुरसा के मुख की तरह वर्तमान मे फैलती जाती हुई अशाति और समस्याओ के समाधान की यही एक सही दिशा है।

पांच :

भारतीय परम्परा मे शाकाहार का रूप

१ | # आदि मानव

❋ वर्तमान कालचक्रार्ध के पूर्व के तीन आरको मे भोगभूमि की प्रवृत्ति रही है। उस युग के मानव शान्त, निर्मल, अपरिग्रही एव अल्प-कषायी थे। उनके जीवन मे हिंसात्मक प्रवृत्तियो का उदय बहुत अल्प था। वे सभी सुखी तथा अहिंसक जीवन व्यतीत करते थे। हिंसक पशु भी उस समय क्रूर नही थे। मानवो के साथ निर्वैरभाव से विचरण करते, और घास आदि खाते थे। मानव-युगल स्त्री पुरुष साथ साथ जन्मते, बड़े होते और मरते थे। प्राणी मात्र प्रकृति पर निर्भर था। कल्पवृक्षो की सभ्यता थी, वृक्षो से ही मानव की सम्पूर्ण आवश्यकताएँ पूर्ण होती थी। या यो कहे कि उस समय के मानव की आवश्यकताएँ उतनी ही थी जितनी कि वृक्षो से पूरी हो सकती थी। वे वृक्षो की शीतल छाया मे फलाहार करके सात्विक जीवन के आनन्द का रसास्वादन करते थे। जैनागमो मे उक्त वृक्षो को कल्प-वृक्षो के नाम से अभिहित किया जाता है। कई स्थानो पर इनका सविस्तार वर्णन मिलता है। अकर्मभूमि मे मनुष्यो के उपभोगार्थ दशविध कल्पवृक्ष बतलाये है।[1]

युग परिवर्तन शील है। युग के साथ साथ प्रकृति मे भी परिवर्तन-प्रत्यावर्तन होता रहता है। जब तक मानव को वृक्षो से जीवनोपयोगी

---

१. मत्तगया य भिगा तुडियगा दीव जोइ चित्तगा।
चित्तरसा मणिअगा गेहागारा अनिगिणा य॥ प्रव० सा० १७१

अर्थ—१ मदाङ्ग २ भृङ्गाङ्ग ३ त्रुटिताङ्ग ४ दीपाङ्ग ५ ज्योतिरङ्ग ६ चित्राङ्ग ७ चित्ररसाङ्ग ८ मण्यङ्ग ९ गृहाकार १० अनाग्न्याङ्ग।

तत्त्वो की उपलब्धि होती रही, तब तक उनकी मन स्थिति मे दु सकल्प एव दुर्विकल्पो का प्रसव नही हुआ था। पर काल परिवर्तन होने पर जब वृक्षो का अभाव हुआ और जनसख्या के साथ मानव मन की इच्छाएँ विराट् बनने लगी, तब आवश्यकताएँ बढने लगी। आवश्यकताओ के अनुपात मे साधन बढे नही, अत उनकी पूर्ति के साधनो के अभाव मे मानव इधर-उधर भटकने लगा। असतोष की ज्वाला मे झुलसने लगा। असतुष्ट मनुष्य परस्पर मे सघर्ष और आक्रमण के शिकार होने लगे। आक्रमण के शिकार होने वालो की शिकायत कुलकर के पास की जाने लगी। कुलकर अपने समय का एक सर्वेसर्वा शासक होता था। अन्य व्यक्तियो से वह विशिष्ट विज्ञ होता था। तात्कालिक मानव समाज की उचित व्यवस्था करता था। अत कुलकर अपनी स्थिति तथा अपराधी के अपराध के अनुसार उनको शिक्षा देते।* समाज मे सतोष और समता का साम्राज्य सस्थापित करने के लिए कुलकरो ने कुछ नियम-उपनियम बनाये, जिनका आधार अहिंसात्मक दृष्टि थी।

कुलकरो की दण्ड नीति

कुलकरो के समय तीन प्रकार की दण्डनीतियाँ प्रचलित थी—हाकार, माकार और धिक्कार।[२] सात कुलकरो[3] की दृष्टि से विमल-

---

*कुलकरो की सख्या के सम्बन्ध मे मतैक्य नही है। उसमें विभिन्न मत हैं। स्थानाङ्ग सूत्र, समवायाङ्ग सूत्र, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक निर्युक्ति, तथा त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र मे सात कुलकरो के नाम उपलब्ध होते हैं। पउमचरियं, महापुराण और सिद्धान्त सग्रह मे चौदह व जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे पन्द्रह कुलकरो का उल्लेख मिलता है। सभवत यह अन्तर वाचना भेद से हुआ हो। किन्तु गभीरता से अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि—चौदह, पन्द्रह जो कुलकर है, उन मे भी सात कुलकर आ जाते हैं, और वे ही मुख्य हैं। सातो के नाम सर्वत्र उपलब्ध हैं, अत सात कुलकरो की दृष्टि से उन की अहिंसात्मक दण्ड नीति पर हम यहाँ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

२ हक्कारे मक्कारे, धिक्कारे चेव दडनीईओ।
वुच्छ तासि विसेस, जहक्कम्म आणुपुव्वीए॥
—आवश्यक निर्युक्ति, १६०

वाहन और चक्षुष्मान के समय 'हाकार' नीति, यशस्वी और अभिचन्द्र के समय 'माकार' नीति तथा प्रसेनजित, मरुदेव और नाभि के समय 'धिक्कार' नीति का प्रचलन हुआ।

प्रथम तथा द्वितीय कुलकर के समय मे मानव बहुत सीधे-साधे स्वभाव के और स्वच्छ प्रकृति वाले थे। उनके द्वारा किसी प्रकार का अपराध होने पर उन्हे इतना ही कहा जाता "हा"-अर्थात् तुमने यह क्या किया ? इसको वे बहुत बडा दण्ड समझते, और अपनी भूल स्वीकार कर नीति पथ पर आ जाते। समय के साथ मनुष्य की भावना मे भी परिवर्तन आता है। जब हाकार नीति का प्रभाव क्षीण होने लगा, तब तीसरे और चौथे कुलकर के समय' माकार' नीति का आविष्कार हुआ। 'मत करो' यह निषेधाज्ञा महान् दण्ड समझी जाने लगी और 'माकारनीति' के भी असफल हो जाने पर पाचवें, छठे तथा सातवें कुलकर ने 'धिक्कार' नीति का आश्रय लिया। अपराधी को धिक्कार देते तो अपराधी पानी-पानी हो जाता और वह अपने को एक प्रकार से दण्डित-सा समझता। इस प्रकार खेद, निषेध और तिरस्कार तीनो दण्ड मृत्यु-दण्ड से भी अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए। आदि युग की दण्ड नीतियो के अन्वीक्षण से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मानव, सभ्यता के आदि युग मे बहुत ही सरल, दयालु और निश्छल था, अपराध करते-करते उसकी वृत्ति अपराधी जैसी बनने लगी और क्रमश. वह धूर्त, क्रूर और अपराध-स्वभाव वाला बनता गया। अन्तिम कुलकर नाभि हुए है, जिन्होने अपना कार्यभार अपने पुत्र ऋषभदेव को सौप दिया। नि सन्देह ऋषभदेव ने राजनीति व समाज नीति को एक नया मोड दिया, और मानव सभ्यता के विकास की नई परम्परा का श्री गणेश किया।

भारतीय सस्कृति के आद्य संस्थापक

०

श्री ऋषभदेव भारतीय सस्कृति के आद्य संस्थापक थे। आपने अकर्मभूमि युग की वनवासी सभ्यता को समाप्त कर कर्मभूमि युग

---

३ पढमित्थ विमल वाहण, चक्खुम जसम चउत्थमभि चदे।
तत्तो य पसेणइ, पुणमरुदेवे चेव नाभी य। —स्थानांग० ७
(ख) आवश्यक नियुक्ति

के अनुरूप नूतन समाज की व्यवस्था का शिलान्यास किया। प्रकृति-प्रदत्त साधनो पर ही निर्भर न रह कर मनुष्य को अपने हाथो से श्रम करने का सन्देश दिया। साथ ही आवश्यक उद्योग धन्धो एव कलाओ का शिक्षण-प्रशिक्षण भी प्रदान किया। भगवान् ऋषभदेव ने सर्व प्रथम सामाजिक क्रान्ति की। समाज को नई दिशा दी। उसके पश्चात् अध्यात्मवाद का मार्ग प्रदर्शित करके आत्म साधना की ओर उन्मुख हुए। ऋषभदेव भारतीय सस्कृति मे प्रथम राजा, प्रथम मुनि, प्रथम केवली और प्रथम तीर्थंकर थे।[४] भगवान् ऋषभदेव का महत्त्व केवल जैन-परपरा मे ही नही है। वैदिक परपरा मे भी उनको विष्णु का अवतार मानकर उनकी पूजा-अर्चना की जाती है। श्रीमद्भागवत[५] मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण आदि मे ऋषभदेव की जीवन रेखाएँ स्पष्ट अकित है।

आदि मानव का आहार

श्री ऋषभदेव के पूर्व भोग भूमि के मानव का आहार कन्द-मूल, पुष्प-फल और पत्र आदि था।[६] जन सख्या की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होने से जब कन्द-मूल पर्याप्त मात्रा मे नही मिलने लगे, तब ऋषभदेव ने मानवो को कन्द मूल के अतिरिक्त जगली अन्नादि को हाथो मे मसल कर साफ कर खाना सिखाया। पकाने के साधनो के अभाव मे कच्चा अन्न दुष्पाच्य होकर मनुष्यो को उदर-पीडा देने लगा। तब मानवो ने भगवान् ऋषभदेव से प्रार्थना की और समस्या का समाधान मागा। इस पर ऋषभदेव ने अन्न को पानी मे भिगोकर मुठ्ठी व

---

४ (क) कल्पसूत्र, पुण्य विजय जी। —सू० १९४ पृ० ५७

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति।

५ भागवत, स्कन्ध ५

६. (क) आसी अ कन्दाहारा, मूलाहारा य पत्तहारा य।
पुप्फ फलभोईणो ऽवि य जइया किर कुलगरो उसभो॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० २०३

(ख) आव० मूलभाष्य गा० ५ हारिभद्रीय वृत्ति।

(ग) आवश्यक चूर्णि जिनदास गणी प० १५४।

बगल मे दबाकर उष्ण करके खाने की राय दी।[७] किंतु इससे भी समस्या का सही समाधान न हो सका। कुछ दिनो बाद अजीर्ण की व्याधि मानवो को फिर सताने लगी। इधर समय की अनुकूलता होने पर एक बार वृक्षादि के परस्पर सघर्ष से आग पैदा होती देखी गई। ऋषभदेव ने मिट्टी के पात्र मे अन्न को अग्नि पर पकाकर खाने की प्रवृत्ति चलाई।[८]

श्री ऋषभदेव ने मानव जीवन को अधिकाधिक सात्त्विक बनाने के उपायो की खोज की और मासाहार से बचाने के लिए कृषि का आविष्कार किया। यह आविष्कार उस युगका एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक चमत्कार था, और अहिंसा की तो यह एक सुदृढ नीव थी, जिसकी नीव पर आज हजारो लाखो वर्ष के इतिहास का सुरम्य-मनोहर प्रासाद अवस्थित है।

आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि से

जैन परम्परा की मान्यतानुसार आदि युग का मानव मासाहारी नही, शाकाहारी था। जिसका दिग्दर्शन ऊपर की पक्तियो मे हम करा चुके है। किन्तु आधुनिक इतिहास और अर्थ शास्त्र की दृष्टि से समाज के आर्थिक सगठन का इतिहास साधारण पाँच अवस्थाओ मे विभाजित किया जाता है,[९]—

(१) आखेट अवस्था.
(२) पशुचारण अवस्था

---

७ (क) आसी य पाणिघसी तिम्मिय तंदुल-पवालपुडभोई।
हत्थयलपुडाहारा जइया किल कुलगरो उसभो॥
घसेऊण तिम्मण घसणतिम्मणपवालपुडभोई।
घसियतिम्मपवाले हत्थउडे कक्खसेए य॥
—आव० नि० गा० २०६–२०७

(ख) आव० सू० हारिभद्रीयावृत्ति० मू० भा० ८ प० १३।१

८. पक्खेवडहणमोसहिकहण निग्गमण हत्थिसीसम्मि।
पयणारभपवित्ती ताहे कासीय ते मणुया॥
—आव० नि० गा० २०६

९ उच्चतर माध्यामिक अर्थ शास्त्र, —पृ० ४६, प्रो० सत्य देव

(३) कृषि अवस्था.
(४) हस्तकला अवस्था
(५) उद्योग अवस्था.

जब इस भूमि पर सभ्यता का सूत्रपात नही हुआ था, उसके पूर्व अर्धनग्न मानव जगलो मे, पहाडो मे, कन्दराओ मे और गुफाओ मे निवास करता था। प्रकृति से जीवन निर्वाह के तत्त्व पर्याप्त परिमाण मे उपलब्ध नही होने से क्षुधा से छटपटाने लगा। तब "**बुभुक्षित किं न करोति पाप**"के अनुसार मानव हाथोमे तीर कमान लेकर जगल मे निकल पडता, और शिकार के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करता था। पर सृष्टि पर जब सभ्यता के कुछ कुछ चिह्न प्रस्फुटित होने लगे और मानव ने अपनी बौद्धिक शक्ति का कुछ विकास किया तो वह मासाहार से हटकर वनस्पत्याहार की तरफ आकर्षित हुआ। प्रगति के कुछ और चरण आगे बढे, तथा कृषि का आविष्कार हुआ तो मानव ने अपने हाथो के तीर कमान दूर फेक दिये और हल, हासिया लेकर वह मैदान मे उतर पडा। सदियो से खून का प्यासा मानव अहिंसा के प्रतिष्ठान मे श्रम की महत्ता को पहचानकर विश्व के सुनहरे प्रागण मे आगे बढ गया।

२ | अहिसा के इतिहास में निरामिषता:

•

जब मानव समाज मे आसुरी वृत्ति चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है, और हिसा का विप्लव होने लगता है उस समय इस आर्यभूमि पर दिव्यदृष्टि वाले किसी न किसी नरपुगव का जन्म होता है। वह नरपुगव अपने प्रभास्वर- व्यक्तित्व के द्वारा समाज मे फैली हुई आसुरी वृत्ति का दमन करता है।

धरती का आदि मानव जब गडबडाने लगा—सघर्ष और आक्रमण बढने लगे, मनुष्य के मन मे हिंसा-प्रतिहिंसा की भावनाएँ जाग्रत होने लगी, उस समय मे अहिंसा के आद्यप्रणेता भगवान् ऋषभदेव ने अवतरित होकर मानव जाति के अव्यवस्थित जीवन को यथावत् मर्यादित एव सस्कारित किया। कृषि के माध्यम से अन्नाहार का आविष्कार किया। क्रियात्मक अहिंसा के इतिहास मे यह एक महत्त्वपूर्ण आलेख है। डा० कामता प्रसाद जैन ने 'विदेशी सस्कृतियो मे अहिसा' शीर्षक निम्बन्ध मे तीर्थंकर कालीन हिंसा-अहिंसा के विकास का ब्यौरा देते हुए बतलाया है कि "भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् काल क्रम से २३ तीर्थंकर हुए है। वे भी अहिसा धर्म के प्रचारक थे। ऋषभदेव से १८ तीर्थंकरो पर्यन्त अहिसा धर्म का प्राबल्य रहा। किन्तु तीर्थंकर मल्ली और मुनिसुव्रत के काल मे यहाँ आसुरी-वृत्ति का श्री गणेश हुआ। असुरो ने आकर अहिंसक ब्राह्मणो को भगाकर पशु यज्ञ करने की कुप्रथा को जन्म दिया, तभी से यहाँ हिंसा-अहिंसा का द्वन्द्व चला।"[१०]

---

१० गुरुदेव श्री रत्न मुनि स्मृति ग्रन्थ पृ० सं० ४००

सोलहवे तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ ने मेघरथ राजर्षि के भव मे एक कपोत की प्राणरक्षा कर विश्व को अहिंसा-प्रेम का पाठ पढाया था। मौत के मुख से किसी प्राणी को बचाना यह धर्म का उच्चादर्श है। प्रस्तुत आदर्श के सरक्षणार्थ ही राजर्षि ने अपने शरीर के मास को काट कर क्षुधापीडित व्याध को अर्पण कर दिया। किन्तु शरणागत कपोत की उपेक्षा नही की। करुणा के उस मसीहा ने प्राणो की ममता त्याग कर भी कपोत की जान बचाई।

प्रस्तुत घटनाचक्र मे मासाहार का निषेध और अहिंसा धर्म की पुष्टि के ही सदर्शन होते हैं।

भगवान् अरिष्ट नेमि का जीवन तो अहिसा के इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ रहा है। उन्होने अपने विवाह प्रसग पर होने वाले पशु-वध से दयार्द्र होकर सदा-सदा के लिए विवाह से ही मुख मोड लिया।[11] प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलाल जी ने 'जैन सस्कृति का अन्तर हृदय' शीर्षक निवन्ध मे भगवान् नेमिनाथ के जीवन तत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"एक समय था जब कि केवल क्षत्रियो मे ही नही, पर सभी वर्गों मे मास खाने की प्रथा थी। नित्य-प्रति के भोजन, सामाजिक उत्सव, धार्मिक अनुष्ठान के अवसरो पर पशु-पक्षियो का वध ऐसा ही प्रचलित और प्रतिष्ठित था जैसा आज नारियलो और फलो का चढाना। उस युग मे यादवजाति के प्रमुख राजपुत्र नेमि कुमार ने एक अजीब कदम उठाया। उन्होने अपनी शादी पर भोजन के लिए कतल किए जाने वाले निर्दोष पशु-पक्षियो की अति-मूक वाणी से सहसा पिघल कर निश्चय किया कि वे ऐसी शादी न करेगे जिसमे अनावश्यक और निर्दोष पशु-पक्षियो का वध होता हो। उस गभीर निश्चय के साथ वे सब की सुनी अनसुनी करके बारात से शीघ्र लौट आए, द्वारिका से सीधे गिरनार पर्वत पर जाकर उन्होने तपस्या की। कौमार वय मे विवाहार्थ प्रस्तुत सुन्दर राजकन्या का त्याग और ध्यान-तपस्या का मार्ग अपना कर उन्होने उस चिर प्रचलित पशु-पक्षी वध की प्रथा पर आत्म-दृष्टान्त से इतना प्रहार किया कि जिससे गुजरात भर मे और गुजरात के प्रभाव वाले दूसरे प्रान्तो मे भी वह प्रथा नाम शेष हो गई। वह परपरा वर्तमान मे चलने वाली पिंजरापोलो की

---

११. उत्तराध्ययन सूत्र, अ० २२

लोकप्रिय सस्थाओ मे परिवर्तित हो गई।"[१२] यदुकुमार नेमिनाथ के पश्चात् भगवान् पार्श्वनाथ ने अहिंसा तत्त्व को विकसित करने के लिए एक दूसरा नया ही कदम उठाया। पञ्चाग्नि जैसी तामस तपस्या का खण्डन करते हुए प्रभु ने बतलाया कि वह तपस्या किसी काम की नही, जिसमे अनेको सूक्ष्म व स्थूल प्राणियो के जल जानेका कोई ज्ञान ही नही रहता। सद् असद् का कोई भान ही नही होता। ऐसी हिंसाजन्य तपस्या, तपस्या नही, निरा देह दण्ड है, उसमे आत्मविकास की कोई गुञ्जाइश नही है। इतना ही नही, प्रभु ने जन समाज को पाखण्ड-धर्म से सावधान किया और वास्तविक धर्म से परिचित कराकर जीवन के साथ उसका सम्बन्ध जोडा। इस प्रकार धर्म क्षेत्र मे सदियो से फैले हुए अज्ञानतिमिर को दूर कर विवेक के प्रकाश से अहिंसा तत्त्व को जगमगाया।

यद्यपि सर्प की घटना को लेकर भगवान् पार्श्वनाथ को कर्मठ तापस व उनके अनुयायियो का कोप पात्र बनना पडा, फिर भी उन्होने उसकी तनिक भी परवाह नही की, और हिंसाजन्य अज्ञान-तप की जड ही उखाड डाली। यह भगवान् पार्श्वनाथ की अपूर्व देन है कि आज भी जैनधर्म या उससे प्रभावित क्षेत्र मे सर्पों के प्रति करुणा की वर्षा बरसती हुई दिखलाई पडती है, मानव सर्पों को नागदेवता के रूप मे पूजने लगा है।

भगवान् पार्श्वनाथ के द्वारा विकसित अहिंसा की भावना ज्ञात-पुत्र भगवान् महावीर को विरासत मे प्राप्त हुई। भगवान् महावीर और बुद्ध के युग का इतिहास तो बडा ही विचित्र रहा है। जब भारत के धर्म क्षेत्रो मे यज्ञ यागादि के नाम पर पशुबलि और दास-प्रथा के रूप मे शोषण का दौर चल रहा था, स्वार्थी, धर्मान्ध व रस-लोलुप व्यक्ति हिंसा को विशेष प्रोत्साहित कर रहे थे। "**वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" यज्ञार्थं पशव सृष्टा "स्वर्गकामो यजेत"** आदि आदि सूत्रो का निर्माण कर धर्म के नाम पर पशुओ का बेरहमी से वध किया जाता था। इस नृशस-हिंसा को वे अहिंसा का चोगा पहना देते थे। हिंसा, अहिंसा का नकाव पहनाकर खुले आम जनता के सन्मुख आने लगी। मानव के द्वारा मानव का तिरस्कार और अपमान देखकर वस्तुत

---

१२ दर्शन और चिन्तन,

मानवता अपमानित होने लगी, वह हजार-हजार आसुओ से सिसक उठी। उस समय भगवान् महावीर और तथागत बुद्धने अहिंसा मे नये प्राण और नई चेतना का स्पदन भरने के लिए सपूर्ण मानव जाति को दया और करुणा का दिव्य-सन्देश दिया। सारे समाज मे अहिंसक क्रान्ति की व्यापक लहर पैदा की। इतना ही नही, अपने धर्म प्रवचनो मे खुल्लम-खुल्ला आम प्रचलित यज्ञो का खण्डन करते हुए कहा— "धर्म का सम्बन्ध आत्मा की पवित्रता से है, मूक पशुओ का रक्त बहाने मे धर्म कहा है? यह तो आमूलचूल भयकर भूल है, पाप है। जब आप किसी मरते जीव को जीवन नही दे सकते, तो उसे मारने का आपको क्या अधिकार है? पैर मे लगा जरा-सा काँटा जब हमे बैचेन कर देता है, तो जिनके गले पर छुरियाँ चलती है, उन्हे कितना दुःख होता होगा? यज्ञ करना बुरा नही है। वह अवश्य होना चाहिए। परन्तु ध्यान रखो, कि वह विषय-विकारो के पशुओ की बलि से हो, न कि इन जीवित देहधारी मूक पशुओ की बलि से। सच्चे धर्म यज्ञ के लिए आत्माको अग्निकुण्ड बनाओ, उसमे मन, वचन और कार्य के द्वारा शुभप्रवृत्ति रूप घृत उडेलो। अनन्तर तप-अग्नि के द्वारा दुष्कर्म का ईधन जलाकर शान्ति रूप प्रशस्त होम करो।"[13] इस प्रकार भगवान् महावीर ने हिंसात्मक यज्ञो का विरोध कर अहिसा तप आदि रूप यज्ञो का निरूपण किया।[14] तथा प्रचलित मासाहार का सबल स्वर मे घोर विरोध किया। विरोध की आवाज इतनी प्रचण्ड थी कि स्वार्थी—धर्मान्ध व्यक्ति अपने स्वर्थों पर होने वाले आघातो से आहत होकर कुछ समय के लिए कुलबुला उठे। किन्तु शान्ति के इस महान देवदूत की एकाग्र तपस्या व उसकी अहिंसा परायण निष्ठा के सन्मुख एक दिन उन्हे नतमस्तक होना पडा। परिणामत जो व्यक्ति मास व यज्ञप्रिय थे, उनके शुष्क हृदयो मे करुणा का अजस्र-स्रोत प्रवाहित हो उठा।

भगवान महावीर और बुद्ध के पश्चात् तो अहिंसा भावना की जड भारत के मानस मे इतनी अधिक गहरी जमी कि समस्त

---

१३ महावीर सिद्धान्त और उपदेश, पृ० २३ —उपाध्याय अमर मुनि

१४ तवो जोई, जीवो जोइठाण, जोगा सुया सरीर कारिसग,
कम्मेहा सजम जोग सन्ती, होम हुणामि इसिण पसत्थ ।।
— उत्तराध्ययन सूत्र, अ० १३।२४

भारतीय धर्मों का वह हार्द बन बैठी। तात्कालिक बडे-बडे प्रभावशाली ब्राह्मण व क्षत्रियो को उसने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। सामाजिक, धार्मिक आदि उत्सवो मे भी अहिंसा ने अपना प्रभाव जमा लिया। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य फैल गया। भगवान महावीर ने विश्व को जो अनेक प्रकार की देन दी है, उनमे अहिंसा सवन्धी यह देन सर्वोपरि है।

भगवान् महावीर तथा बुद्ध द्वारा उपदिष्ट अहिंसा और करुणा-तत्त्व को सम्राट् चद्रगुप्त, अशोक तथा उसके पौत्र सप्रति ने और अधिक प्रतिष्ठित एव व्यापक बनाया, इतिहास जिसका साक्षी है। कलिंग-युद्ध मे नर-रक्त को बहते देखकर अशोक का हृदय करुणाद्र हो उठा, और उसने भविष्य मे युद्ध न करने का सकल्प कर लिया। अशोक ने अहिंसा और करुणा के सदेश को शिला लेखो द्वारा स्थान-स्थान पर उत्कीर्ण कराके प्रचारित किया। अशोक का पौत्र सम्राट सम्प्रति ने अहिंसा की भावना को अपने अधीनस्थ राज्यो तक ही सीमित नही रखा, वरन् राज्यो के सीमावर्त्ती-प्रदेशो मे भी दूर-दूर तक फैलाकर उसका प्रबल प्रचार किया। बाहरवी सदी मे आचार्य हेमचन्द्र ने गुर्जरपति सिद्धराज को अहिंसा की भावना ने प्रभावित कर एक बहुत बडा आदर्श उपस्थित किया। सिद्धराज के राज्य मे जहाँ देवी-देवताओ के समक्ष नानाविध हिसाएँ होती थी, वे हिंसाएँ सब रुक गई। सिद्धराज का उत्तराधिकारी महान सम्राट कुमारपाल भी अहिंसा मे सपूर्ण निष्ठा रखता था। उसने अहिंसा-भावना का जितना विस्तार किया वह इतिहास मे बेजोड है। उनकी दयार्द्र वृत्ति के लिए एक सुप्रसिद्ध जनश्रुति है कि—'कुमारपाल अपने राज्य के अश्वो को पानी भी छान-छान कर पिलाया करता था।' उस की 'अमारि-घोषणा' अत्यन्त लोकप्रिय बनी, जो अहिंसा-भावना की एक विशिष्ट द्योतक थी।

अहिसा भावना के प्रचार मे जहाँ अनेको वरिष्ठ व्यक्तियो के हाथ अग्रसर रहे है, वहाँ निर्ग्रन्थ परपरा के श्रमणो का भी इसमे विशेष श्रेय रहा है। वे हिमालय से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक पदयात्रा करके, अनेक मुसीबतो व अनेक कष्टो को झेलकर, जन जन को अहिंसा का अमृत बाँटते रहे है। उनके अन्तर मे प्रेम-पीयूष उछलते

रहे है। अगणित व्यक्तियो को हिंसा-जनित मास-मदिरा के व्यसनो का परित्याग करवा कर उन्हे धर्माभिमुख किया है।

"जैसे शकराचार्य ने भारत के चारो कोनो पर मठ स्थापित करके ब्रह्माद्वैत का विजय स्तम्भ रोपा है, वैसे ही महावीर के अनुयायी अनगार निर्ग्रन्थो ने भारत जैसे विशाल देश के चारो कोनो मे अहिंसाद्वैत की भावना के विजय स्ततभ रोप दिए है, ऐसा कहा जाय तो अत्युक्ति नही होगी। लोकमान्य तिलक ने इस बातको यो कहा था कि—"गुजरात की अहिंसा-भावना जैनो की ही देन है, पर इतिहास हमे कहता है कि अहिंसामूलक धर्मवृत्ति मे निग्रेन्थ—सम्प्रदाय का थोडा बहुत प्रभाव अवश्य काम कर रहा है। उन सम्प्रदायो के प्रत्येक जीवन-व्यवहार की छानबीन करने से कोई भी विचारक यह सरलता से जान सकता है कि इसमे निर्ग्रन्थो की अहिंसा भावना का पुट अवश्य है।"[१५]

वस्तुत निर्ग्रन्थ परपरा के श्रमणो का अहिंसा के उत्कर्ष मे विशेष अवदान रहा है। श्री हीरविजय सूरि ने भारत के मुगल-सम्राट अकबर को अपने प्रभाव मे खीच कर अहिंसा का दिव्य सन्देश दिया और सम्राट से कुछ प्रमुख तिथियो पर 'अमारि-घोषणा' जारी करने का वचन भी प्राप्त किया। कई मासाहारी जातियो को अहिंसा धर्म मे दीक्षित किया। भारत मे बहुत-सी मासाहारी जातिया आज अहिसक जीवन बिता रही है, इसका श्रेय अधिकाश मे निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के श्रमणो को ही प्राप्त है।

मध्यकाल मे कुछ ऐसे सत-महात्माओ की अवतरणा भी हुई है कि जिनका उपदेश, वाणी व रचना अहिंसा-दया का अमृत-कोष कहा जा सकता है। भारत की वायु मे अहिंसा के जो परमाणु देखे जाते हैं, वे सब इन्ही सत महात्माओ की देन है। भारत उनके उपकारो से उपकृत है।

महात्मा गाधी ने भारत मे नवजीवन का प्राण स्पन्दित करने के लिए अहिंसा का ही आश्रय ग्रहण किया था। मै समझता हू गाधी जी की सफलता का रहस्य भी अहिंसा ही है, और अहिंसा के

---

१५ दर्शन और चिन्तन (हिन्दी) खण्ड २ पृ० स० २७६।

—प० सुखलाल जी

सहारे से ही वे एक बहुत बडे राष्ट्र को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र बना सके। इसमे कोई शक नही कि गाधी जी ने अहिंसा का राजनीति मे प्रयोग करके भारत के अहिंसक वातावरण को और अधिक सजीव एव व्यावहारिक बनाया है। यही नही, कहना चाहिए कि गाधी जी ने अहिंसा के इतिहास मे एक नया पृष्ठ जोडा है। उन्होने राजनीति के क्षेत्र मे अहिंसा भगवती की प्रतिष्ठा करके उसके व्यवहार-क्षेत्र मे भी उत्साहजनक अभिवृद्धि की है।

इस प्रकार अहिंसा का इतिहास भगवान् ऋषभदेव से लेकर वर्तमान गाधी युग तक सतत सात्विक गति से चलता रहा है। यह ठीक है कि उसके बीच-बीच मे शिथिलता और रुकावटे अवश्य आती रही, किन्तु शिथिलता और रुकावटे उसे अपने पथ से विचलित न कर सकी। आज भारतीय अहिंसक समाज उन महापुरुषो का अत्यन्त कृतज्ञ है, जिन्होने अपने प्राणो का उत्सर्ग करके दया और करुणा का सदेश दिया। वैवाहिक समारभ का त्याग कर हजारो पशुओ को जीवन दान दिया। अहिंसात्मक तपस्या तथा अहिंसात्मक यज्ञ की साधना बतला कर विश्व को मासाहार एव पशुबलि की घिनोनी परपरा से बचाया और उन्हे निरामिषता की दिशा मे बढने की प्रबल प्रेरणा दी।

३ | प्रकृति की विकृतिः मांसाहार

मासाहार मानव प्रकृति से सर्वथा विरूद्ध है। वह किसी भी अवस्था मे मानव के लिए उपयुक्त नही हो सकता। मास-भक्षी पशुओ की शरीर रचना से मनुष्य के शरीर की रचना नितान्त भिन्न प्रकार की है। विशेषज्ञो के मतानुसार मनुष्य के उदर की रचना इस प्रकार की है कि वह मास को पचाने के योग्य नही है। अतएव मास खाने की जो प्रवृत्ति मानब मे देखी जाती है, वह उसका नैसर्गिक रूप नही, किंतु विकृति-जन्य रूप है।

कभी कभी तो मानव को परिस्थितियो से विवश होकर भी मास खाना पडता है। जैसे कि प्रसिद्ध विचारक उपाध्याय अमर मुनि ने लिखा है— "मासाहार का अन्य कारणो के साथ-साथ एक मुख्य प्रयोजन यह भी रहता है कि ठडे मुल्को मे, पहाडो और जगली प्रदेशो मे जो बहुसख्यक मानव समाज रहता है, उसे अन्न उपलब्ध नही हो सकता, वहा खेती भी सभव नही लगती और वहाँ के वातावरण मे मास जैसी गर्मी देने वाली वस्तु के बिना काम नही चल सकता। इस समस्या का हल शाकाहार के द्वारा कैसे हो सकता है, इसके अनुसधान का प्रयत्न नही हुआ। यह कमी हमे हमारी कमी माननी होगी।"[१६] ये कुछ स्थितियाँ होते हुए भी यह सर्व मान्य सिद्धान्त तो सभी को एक स्वर मे स्वीकार करना ही होगा कि मानव निसर्गत मासाहारी नही, शाकाहारी है। अनुभव से भी यह स्पष्ट है कि शिशु अवस्था मे मनुष्य मुख्यत दुग्ध एव घृत का आहार करता है

---

१६ अहिंसा तत्त्व दर्शन

और बडा होने पर वह ओदनादि अन्न का आहार करता है।[१७] प्रस्तुत गाथा के 'सप्पि' शब्द पर इतिहास महोदधि श्री कल्याण विजय जी ने टिप्पण देते हुए लिखा है—वर्तमान काल मे भी बच्चो को जन्मते ही दूध तथा सर्पिष फाये मे लेकर बच्चे के मुँह मे डाला जाता है, इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य का मुख्यभोज्य पदार्थ दुग्ध एव घृत ही है। परन्तु ये पदार्थ जीवन पर्यन्त सभी के लिए पर्याप्त नही, अत. बडा होने पर उनको अन्न खाना सिखाया जाता है।[१८] वस्तुत मानव का आहार दुग्ध व अन्न ही है। तभी तो अन्न की महत्ता बताते हुए उपनिषद्कार को कहना पडा—"**अन्न वै प्राणा**" अर्थात् अन्न ही प्राण है, जीवन है। इसके बिना मानव जीवन का टिकना सभव नही, अधिकाधिक अन्न उपजाना ही राष्ट्रीय व्रत माना है—**अन्न बहु कुर्वीत तद्व्रतम्**।[१९]

इतिहास के झरोखे से !

●

यह तो सुविदित है कि मासाहार का आम प्रचलन अनार्य लोगो के अतिरिक्त भारतवर्ष मे कही नही था। अनार्य तथा विदेशियो के सपर्क से ही भारत मे इस कुप्रथा को अधिक प्रश्रय मिला है। उनके दीर्घ-कालीन सपर्क सूत्र ने आर्य लोगो के मानस को विकृत बना डाला और मास का खाद्य पदार्थ के रूप मे खुल्लम-खुला प्रयोग किया जाने लगा। जो कि आर्य सस्कृति के विघात के लिए पूर्ण घातक सिद्ध हुआ है। इस सम्बन्ध मे मुनि श्री कल्याण विजय जी के विचार मननीय है। आपने मासाहार के प्रचलन का कारण बतलाते हुए स्पष्ट लिखा है—'प्राण्यगमास' खाद्य पदार्थ है, यह पहले कोई नही जानता था। परन्तु दुष्काल आदि विपम समय मे सभ्य बस्तियो से दूर रहने वाले अनार्य लोगो ने पेट की ज्वाला शात करने के लिए आरण्यक जानवरो को मार कर उनका मास खाने की प्रथा चलाई, और इस प्रथा का शिकार करने वाले क्षत्रिय वर्ग को भी चेप

---

१७. डहरा समाणा खीर, सप्पि अणुपुव्वेण।
वुड्ढा ओयण . । —सूत्रकृताङ्ग सूत्र

१८ मानव भोज्य मीमासा पृ० ११

१९. ऐतरेय उपनिषद् ३।९

लग गया। जो कि पहले मानव-रक्षा के लिए केवल हिंस्र-पशुओ का ही शिकार करना उनके कर्तव्यो मे सम्मिलित था, परन्तु डायोनिसस् आदि विदेशी आक्रमणकारियो के सम्पर्क से यहाँ के क्षत्रिय लोग भी धीरे-धीरे मास-मदिरा खाना सीख गये थे, फिर भी आर्य जातियो मे यह पदार्थ सर्वमान्य कभी नही हो सका।"

"वैदिक धर्म के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ-'ऋग्वेद' मे पशु यज्ञो तथा ब्राह्मणो को मास खाने का अधिकार नही है। वेदो का अनुशलीन करने वाले ब्राह्मण भी अश्वमेध करते और उसका मास खाते थे, यह कथन कोई सत्यता नही रखता।"[२०] इतिहास के झरोखे से देखने पर यह भी ज्ञात होगा कि उत्तर भारत सदा से सभ्य आर्यों से बसा हुआ था, और वह पूर्ण शाकाहारी था। यह तथ्य भारत वर्ष का भ्रमण करने वाले विदेशी यात्रियो ने जो अपनी यात्रा के सस्मरण उट्टकित किए है, उनसे स्पष्ट हो जाता है। "ग्रीकयात्री मेगास्थनीज जो चन्द्रगुप्त मौर्य की राज-सभा मे राजदूत के रूप मे वर्षों तक रहा था, और उत्तरीय भारत के अनेक देशो का भ्रमण किया था, उसके यात्रा विवरण से भी उत्तर भारत मे आर्यो की प्रधानता और वनस्पत्याहार की मुख्यता थी। उसके वृत्तान्तो के अनुसार वहाँ पहाडी अनार्यों को छोड का नागरिक लोग खास प्रसग के विना माँस-मदिरा कर उपयोग नही करते थे।"

बौद्धयात्री फाहियान, जो ईसा की पाँचवी शताब्दी के लगभग भारत मे आया था, वह उत्तर भारत के सीकाश्य देश के विषय मे लिखता है—

'देशभर मे कोई मासाहारी नही है। नही कोई मादक द्रव्यो का उपयोग करता है। वे प्याज और लहसुन नही खाते। केवल चाडाल लोग ही इस नियम का उल्लघन करते है। वे सब बस्ती के बाहर रहते हैं। और अस्पृष्य कहाते है। इनको कोई छूता भी नही, नगर मे प्रवेश करते समय लकडी मे कुछ सकेत और आवाज करते है। जिसको सुनकर नागरिक हट जाते है। इस देश के लोग सुअर नही पालते। बाजार मे मांस और मादक द्रव्य की दुकानें भी नही हैं।

---

२० **मानव-भोज्य-मीमासा पृ० सं० १२०**

व्यापार हेतु यहाँ के निवासी कौडी का व्यवहार करते हैं। केवल चडाल मात्र ही मास,मछली मारते और शिकार करते है।"[२१]

वैदिक परंपरा में

●

भारत वर्ष की प्राचीन सभ्यता के इतिहास के अनुसार वेद-कालीन यज्ञ भी बहुत सीधे-सादे होते थे, उनमे जोवित प्राणियों की आहुति नही दी जाती थी, और न देवता ही मास-भक्षण करते थे। वे 'व्रीहि'-यवादि से सन्तुष्ट हो जाते थे। इतिहासकार लिखते हैं—

'वैदिक काल मे जौ और गेहू खेत की खास पैदावार और भोजन की खास वस्तु जान पड़ती है। ऋग्वेद मे अनाज के जो नाम मिलते है, वे कुछ सन्देह उत्पन्न करने वाले है, क्योकि पुराने समय मे जो उनका अर्थ था वह आजकल बदल गया है। आजकल सस्कृत मे 'यव' शब्द का अर्थ केवल 'जौ' है, पर वेद मे इसी शब्द का मतलब गेहू और यव से लेकर अन्नमात्र से है। इसी तरह आज कल 'धान' शब्द का अर्थ कम से कम बँगाल मे चावल से है, पर ऋग्वेद मे यह शब्द भुने हुए जौ के लिए आया है जो कि भोजन के काम मे आता था, और देवताओ को भी चढाया जाता था।"

"ऋग्वेद म व्रीहि चावल का उल्लेख नही है। हम लोगो को इन्ही अनाजो से बनी हुई कई तरह की रोटियो का भी वर्णन मिलता है, जो खाई जाती थी, और देवताओ को भी चढाई जाती थी। 'पक्ति' (पच-पकाना) का अर्थ है 'पकी हुई रोटी' इसके सिवाय कई दूसरे शब्द जैसे पुरदास (पुरोडाश) 'अपूप' और 'करम्भ' आदि शब्द भी पाये जाते हैं।"[२२]

इस प्रकार मान्य वैदिक ग्रन्थो का पर्यवेक्षण करने से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि देव और मानव का भोजन घृत तथा दुग्ध एव वनस्पतिजन्य पदार्थ ही रहे हैं।

---

२१ फाहियान, पृ० २६–२७ —मानव-भोज्य-मीमासा मे उद्धृत

२२ प्राचीन-भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास —प्र० भा० प्रक० वैदिक काल १ काण्ड

४ | मांसाहारी प्राणी और मानव

•

शरीर-शास्त्रियो का मत है कि मानव शरीर की रचना और उसकी प्रकृति दुग्धपायी प्राणियो से काफी मिलती जुलती है, अत मासाहारी प्राणियो से वह बिल्कुल भिन्न पडता है। मासाहारी जीवो को जन्म काल से जिस प्रकार के तीक्ष्ण नाखून व दाँत होते हैं, वैसे मानव के नही होते। मासाहारी जीवो के दाँत टेढे-मेढे होते है, किन्तु मानव के दात बिल्कुल सीधे और चपटे होते है। मानव की पाचन शक्ति (जठराग्नि) इतनी तेज नही कि वह कच्चे मास को आसानी से पचा सके, जबकि हिंस्र जीव उसे सहज ही पचा लेते है। सिह, चीता, व्याघ्र और विलाव आदि मासाहारी जीव जिह्वा से लप्-लप् करके पानी पीते है, किन्तु मानव जिह्वा से नही, होठो से पीता है। प्रोफेसर विलियम लारेस एफ० आर० एस० ने बतलाया है—'मासाहारियो की आँखे निरामिष भोजियो से भेद रखती हैं, मासाहारी जानवरो की नेत्रज्योति सूर्य का प्रकाश सहन नही कर सकती। लेकिन वे रात को दिन की भाति,देख सकते है। रात को उनकी आँखे दीपक के समान अङ्गारो की तरह चमकती हैं। परन्तु मनुष्य दिन को भलीभाँति देख सकता है। सूर्य का प्रकाश उसका उसकी नेत्र-ज्योति का विघातक नही, बल्कि सहायक है, और मनुष्य की आँखे रात को न तो चमकती हैं और न प्रकाश के बिना देख सकती हैं।"

मासाहारी जीव का बच्चा जब पैदा होता है, तब उसकी आँखे बहुत दिनो तक बन्द रहती है। किन्तु निरामिष भोजी के बच्चे पैदा होते ही थोडी देर मे आँख खोल देते हैं।'

'मासाहारी जानवरो को गर्मी भी सहन नही होती। वे थोड़े

परिश्रम से थक कर हार जाते है, लेकिन मनुष्य गर्मी बरदाश्त कर सकता है और थोडे-से काम से हार नही जाता।'

मासाहारी जीवो के शरीर से अधिक परिश्रम और दौड-धूप के बाद भी पसीना नही निकलता, विपरीत इसके मनुष्य एव निरामिषाहारी जीवो को अधिक श्रम का कार्य करने पर पसीना आ जाता है।"[२३]

राष्ट्रपिता गाधी जी ने एक स्थान पर अपनी विचार श्रेणी प्रस्तुत करते हुए लिखा है—'शरीर-रचना को देखने से जान पडता है कि कुदरत ने मनुष्य को वनस्पति खाने वाला बनाया है। दूसरे प्राणियो के साथ अपनी तुलना करने से जान पडता है कि हमारी रचना फलाहारी प्राणियो से बहुत अधिक मिलती है। अर्थात् बन्दरो से बहुत ज्यादा मिलती है। फाड कर खाने वाले शेर, चीते आदि जानवरो के दात और दाढो की बनावट हम से और ही प्रकार की होती है। उनके पजे के सदृश हमारे पजे नही है। साधारण पशु मासाहारी नही हैं, जैसे गाय बैल। हम इन से कुछ मिलते है। परन्तु घास आदि खाने के लिए आरे जैसी आँते उन की है, वैसी हमारी नही है। इन बातो से बहुत से शोधक ऐसा कहते हैं कि मनुष्य मासाहारी नही है। रसायन-शास्त्रियो ने प्रयोग करके बतलाया है कि मनुष्य के निर्वाह के लिए जिन तत्त्वो की आवश्यकता है, वे सब फलो मे मिल जाते है। केले, नारगी, खजूर, अजीर सेव, अनन्नास, बादाम, अखरोट, मूँगफली, नारियल आदि मे तन्दुरुस्ती को कायम रखने वाले सारे तत्त्व है। इन शोधको का मत है कि मनुष्य को भोजन पकाने की कोई आवश्यकता नही है। जैसे और प्राणी सूर्य के ताप से पकी हुई वस्तु पर तन्दुरुस्ती कायम रखते है, वैसे ही हमारे लिए भी होना चाहिए।"

२३ मानव-भोज्य-मीमांसा

५ | शाकाहारी भारत का सन्देश

भारत वर्ष हजारो लाखो वर्षों से विश्व को शाकाहार का दिव्य सन्देश देता रहा है। यही कारण है कि आज अहिंसा के सम्बन्ध में सूक्ष्मतम चिन्तन करने वाले तथा शाकाहारी जीवन बिताने वाले व्यक्ति भारत मे सबसे अधिक मिलते हैं। शाकाहार का प्रयोग भारत-वर्ष की सस्कृति मे महत्वपूर्ण और गौरवपूर्ण अध्याय है। सभ्यता के आदि सस्कर्ता भगवान् ऋषभदेव का शाकाहार की परपरा मे विशेष अवदान रहा है। कृषि कर्म के माध्यम से मासाहार के स्थान पर शाकाहार की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर उन्होने विश्व को एक महान् देन दी है। उनका यह उपकार अविस्मरणीय है। किन्तु खेद है कि शाकाहार का महान् सिद्धान्त विश्व मे अधिक व्यापक न बन सका। जबकि आवश्यकता इस बात की थी कि यह सिद्धान्त विश्वव्यापी होकर जन-जन के मन का आकर्षण केन्द्र बनता, पर यह नही हो सका। यदि यो कह दे तो अतिशयोक्ति नही होगी कि इस युग मे तो इस सिद्धान्त का विकास न होकर प्रतिदिन ह्रास ही होता जा रहा है। अब भी समय है, भारत के जो शाकाहारी हैं, वे अहिंसा के प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा मासाहारी जन-समाज को शाकाहार की ओर आकर्षित करे, उनके जीवन मे अहिंसा की आस्था जगाए, खोई हुई चेतना का पुन सम्पादन करे। निराश होना मनुष्य का धर्म नही है। कहा भी है—

"जो सोये सपनों के तम में, वे जागेंगे यह सत्य बात।
देखा जिसने जीवन निशीथ, वह देखेगा जीवन प्रभात ॥"

उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज की भाषा में—"उन पर जिम्मेदारी है जो स्वय शाकाहारी होते हुए भी मासाहारियो को

शाकाहारी होने के लिए प्रभावित न कर सकते। शाकाहारियो का कर्तव्य है कि वे शाकाहार की उपयोगिता पर नई खोज करते, तथा उसके अनुसार यह सिद्ध कर देते कि मासाहार न केवल निरर्थक और अनावश्यक है—बल्कि हानिप्रद भी है। मासाहार के बिना भी इस ससार की खाद्य समस्या का हल हो सकता है। इस तरह यदि क्रियात्मक ढग से मासाहार के विरुद्ध वातावरण तैयार किया होता तो निश्चय ही ससार के बहुसख्यक लोग शाकाहार की वास्तविकता का तत्त्व समझ लेते।"[२४]

शाकाहारियो का कर्तव्य

शाकाहार की प्रतिष्ठा के लिये शाकाहारियो का यह कर्तव्य है कि वे अनावश्यक आरभ-समारभ तथा परोक्ष हिंसा जन्य प्रवृत्तियो से बचे। आज हिंसा की कई ऐसी प्रवृत्तियाँ चल रही है, जिन पर विचार व अनुसधान करना आवश्यक ही नही, वरन् अनिवार्य भी है। बिना उस अनुसधान के मासाहारी तथा निरामिषभोजी दोनो समान रूप से उस निर्मम हत्या के साझीदार होते है, जो शाकाहारी के लिए बिल्कुल त्याज्य है। आज कितने ही जीवित पशुओ को मार कर उनके अवयव दवाई आदि के रूप मे काम मे लिये जाते हैं। कितने ही जीवित पशुओ का चर्म फैशन का सामान बनाने मे काम लिया जा रहा है। सम्प्रति बाजारो मे जो नूतन फेशनेबुल घडी के पट्टे, मुलायम जूते और लेदर बैग आदि मिलते है वे सभी जीवित पशुओ को मारकर उनके चमडे से बनाये जाते है। इस सम्बन्ध मे यह भी सुना जाता है कि कोमल नाजुक चमडे की जितनी भी वस्तुओ का निर्माण होता है वह अधिकाश जिन्दी गायो क गर्भाशय से निकाल कर नवजात बछडो को मार कर ही होता है। क्या आज का प्रगतिशील कहलाने वाला तथा शाकाहार को प्रश्रय देने वाला मानव उपयुक्त ढग की क्रूरतापूर्ण हत्या द्वारा निर्मित वस्तुओ का प्रयोग कर सकता है? यदि प्रयोग करता है तो क्या, वह अपने को पूर्ण शाकाहारी कहलाने के गौरव से गौरवान्वित हो सकता है? नही, कदापि नही।

---

२४ अहिंसा तत्त्व दर्शन,

जिस देश मे शाकाहार के प्रचार-प्रसार की लम्बी चौडी चर्चाएँ चलती है, और जो देश अपने को अहिसा का प्रहरी कहता है, उसी देश की सरकार स्वय जनता को मासाहार की ओर ले जा रही है, यह कितने परिताप का विषय है ? जो शासन सदियो से आर्य सस्कारो मे पला-पुसा है, वह आज मुर्गी पालन, मछली पालन तथा वैज्ञानिक ढग के कतलखाने खोलने की योजनाएँ बना रहा है, तथा ऋषि-महर्षियो के द्वारा बतलाई हुइ हजारो वर्षो की आत्मौपम्य की साधना पर पानी फेर रहा है। क्या यह आश्चर्यजनक नही है ? आश्चर्य ही नही, पर इस बात का अत्यन्त खेद भी है कि भारतीय सरकार विदेशी सरकारो द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओ की भोडी नकल कर अपनी आर्य सस्कृति के मुख पर कालिख पोतने का काम कर रही है। ऐसी स्थिति मे निरामिषभोजी जनता को जाग्रत होना है, तथा भारतीय सरकार को अहिसात्मक विद्रोह द्वारा बाध्य करके शाकाहार के पथ को प्रशस्त बनाना है।

शाकाहार की व्यापकता

●

सामान्य रूप से मासाहार विश्व के सभी धर्मो मे निषिद्ध है। यदि कुछ धर्मावलम्बी मासाहार का प्रयोग करते है, तो वे निश्चित रूप से अपने धर्माचार्यों और धर्मप्रवर्तको की आज्ञा का उल्लघन करते हैं। यह तो निश्चित है कि शाकाहार का प्रचार-प्रसार भारत वर्ष मे ही नही, वरन् अन्य भूखडो मे भी रहा है, और वह भी समस्त कालो मे रहा है। श्री शिवचन्द्र कोचर ने 'मनुष्य जाति का सर्वोत्तम आहार–शाकाहार' शीर्षक निबन्ध मे बतलाया है–'ग्रीस देश के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वानो—पिथागोरस, इम्पीडोक्लिस, प्लेटो, सोक्रेटिज, ओविड, सेनेका, पोर्फिटी, प्लूटार्क आदि ने तथा आरिजेन, टरट्यूलियन, क्रिसोस्टोम तथा अलेक्जेड्रिया के क्लीमेट जैसे ईसाई धर्म गुरुओ ने भी शाकाहार का प्रतिपादन किया है। भारतवर्ष के महान् सम्राट अशोक ने अपने विशाल साम्राज्य मे स्थान-स्थान पर इस आशय के शिलालेख उत्कीर्ण करवाये थे कि कोई व्यक्ति किसी प्रणी की हत्या न करे। महान् मुगल सम्राट अकबर ने भी आदेश दिया था कि उसके साम्राज्य मे विशेष पर्वों के अवसरो पर किसी प्रकार का प्राणि-

वध न किया जाय। ससार के प्रसिद्ध विद्वान् स्वीडनवोर्ग, टालस्टाय वाल्टेयर, मिल्टन, वेस्ले आइजक, न्यूटन, बूथ, पिटमैन, बर्नार्डशा इत्यादि शाकाहारी थे, और उन्होने अपनी रचनाओ मे शाकाहार का पूर्णरूपेण प्रतिपादन किया है।"[२५]

मासाहार के सम्बन्ध मे बहुत से व्यक्तियो की यह धारणा है कि मासाहार से शक्ति बढती है, वह शक्ति का अमित स्रोत है। किन्तु उनकी यह धारणा अवैज्ञानिक है। इसका उत्तर सर टी० लोडर ब्रटन के शब्दो मे इस प्रकार है—"मासाहार शक्ति प्रदान करने के बदले निर्बलता का शिकार बनाता है। और उससे जो 'नाइट्रोजिनस' पदार्थ उत्पन्न होता है, वह स्नायु जाल पर जहर का काम करता है। आज कई डाक्टरो तथा वैज्ञानिको ने परीक्षण के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि मास की अपेक्षा फल तथा शाक भाजी एव गोदुग्ध मे अधिक पोषकतत्त्व पाये जाते है। जिन का प्रयोग—शक्ति, स्फूर्ति तथा बुद्धिबल आदि सभी दृष्टि से उपयुक्त-लाभप्रद है। मास मे इनका अभाव पाया जाता है। साथ ही इससे नानाप्रकार की हानियाँ भी होती है। शाकाहारी मनुष्य मे उदारता, सहनशीलता तथा धैर्य प्रभृति गुण जितने अशो मे अधिक पाये जाते है उतने मासाहारी मनुष्य मे नही।

विश्व इतिहास पर नजर डालने से दो बाते स्पष्ट हो जाती है कि—मास मनुष्य का प्राकृतिक भोजन कभी नही रहा है। मानव शरीर के लिए उसकी न कोई आवश्यकता है और नही कुछ उपयोगिता। दूसरी बात—ससार मे जितने भी महान् प्रतिभाशाली पुरुष हुए है, वे लगभग शाकाहारी थे। बडे से बडे वैज्ञानिक, विचारक, साहित्यकार और महापुरुष हुए है वे सभी शाकाहार मे विश्वास रखते थे।

मनुष्य मे मानवीय गुणो की उद्भावना के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम उसे शाकाहार के मार्ग पर लाया जाय।

विद्वानो की दृष्टि मे मांसाहार

:

पण्डित मदनमोहन मालवीय ने मासाहार का विरोध करते हुए

---

२५ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ स० ४७१

एक स्थान पर लिखा है—'पहले राक्षस लोग मनुष्य का मास खाते थे, अब मनुष्य पशुओ का मास खाते हैं, यह सब से बडा पाप है।'

प्रो० एच० शाफ होफ़ेन का अभिमत है कि—'मास खाने का स्वभाव यह कोई मनुष्य की मूल प्रेरणा नही है।'

डाक्टर सिल्वेस्टर ग्रोहास का कथन है कि—'शरीर सम्बन्धी बनावट के मुकाबले की विद्या सिद्ध करती है कि मनुष्य स्वाभाविक रीति से फक्त-फल, बीज, मेवा और अनाज के ऊपर निर्वाह करने वाला प्राणी है।

प्रो० सर चार्ल्स बेल, एफ० आर० एस० का अभिप्राय है कि—'मेरा ऐसा अनुमान है कि इस भाति कथन करने मे जरा भी आश्चर्य नही है कि बनावट के साथ सम्बन्ध रखने पर एक दृष्टान्त सिद्धकर देता है कि मनुष्य मूल से ही फल खाने वाले प्राणी के रूप मे उत्पन्न हुआ था। यह मत दांतो और पाचन करने वाले अङ्गो की बनावट पर से तथा चमडी की रचना के ऊपर से प्रधानत निर्धारित किया गया है।'

डॉ० हेग का वक्तव्य है कि—'मास और शराब के सेवन से मनुष्य की स्नायुएँ इतनी कमजोर बन जाती है कि वह जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने के लिए भी तैयार हो जाता है। उसकी विचार-शक्ति नष्ट प्राय हो जाती है। इग्लेण्ड मे ज्यादा आत्म-हत्याओ का कारण मासाहार ही है।'

डॉ० एस० टी० क्लाउटसन एम०डी० के विचारानुसार पशुओ का आहार क्षेत्र परिमित होता है। सिह आदि ज्यादातर वनचरो को ही खाते हैं। किन्तु सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव—कुत्ता, बिल्ली, चूहा, सर्प, भेर्ड, बकरा, गाय, बेल, सूअर आदि सभी को खा जाता है। इस दृष्टि से मानव गया बीता है, पशुओ से भी।'

श्री दयानन्द सरस्वती ने तो मासाहारियो की वृत्ति पर एक गहरी चोट करते हुए कहा—'हे मासाहारियो ? जब अमुक समय के बाद पशु नही मिलेगे तब तुम मनुष्यो के मास को भी नही छोडोगे क्या ?'

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक साहब का फरमान है कि—'कपडे पर लोहू का दाग पडने से शरीर अपवित्र माना जाता है, तो यह खन-लोहू पेट मे जाने से चित्त निर्मल कैसे हो सकता है ?'

पैगम्बर मुहम्मद साहब का कथन है कि—'हमने स्वर्ग से मेह बरसाया, जिससे बाग पैदा हुए और अनाज की फसल पैदा हुई और खजूरो से लदे हुए मोटे लम्बे वृक्ष उत्पन्न हुए जो मनुष्य के लिए भोजन होगे।''[२५]

'सब प्रकार का मास दयावान के लिए अभक्ष्य है। जो सर्व प्राणियो को अपने समान जानने वाला है, वह इन सब प्राणियो के वध से उत्पन्न हुए मास को कैसे भक्ष्य समझेगा।'[२६]

महात्मा जरथुश्त ने भी कहा है—'प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक प्राणी का मित्र होना चाहिए। दुष्ट व्यक्ति जो अनुचित रूप से पशुओं और भेडो तथा अन्य चौपायो की घोर हत्या करता है, उसके अवयव नष्ट किये जाएँगे।[२७]

जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने चार कारण नरक गति मे उत्पन्न होने के बतलाए है, उनमे चौथा कारण मासाहार है। पचेन्द्रिय प्राणी का मास खाने वाला व्यक्ति नरक गति का बन्ध करता है।[२८]

---

२५ कुरान, सूराकाफ ६, ११।

२६ लकावतार सूत्र।

२७ ग्रादंविरफ १७४-१६२।

२८ एव खलु चर्डाह ठाणेहि जीवा णेरइत्ताए कम्म पकरेंति,
महारभयाए, महापरिग्गहयाए,
पचिदियवहेणं, कुणिमाहारेण।

—औपपातिक सूत्र—१ उपाङ्ग

७ | परीक्षण की तुला पर

मानव जीवन के लिए – मासाहार की क्या उपयोगिता है ? यह वात आज वैज्ञानिक परीक्षणो का विषय वना हुआ है। अनेक स्थानो पर इस प्रकार के परीक्षण हुए है और उनके जो परिणाम आये है, वे यह स्पष्ट उद्घोषित कर रहे हैं कि मानव शरीर के पोपण एव विकास के लिए मास अनावश्यक ही नही, वल्कि हानिकारक है।

सन् १६०५ मे लडन वेजिटेरीअन सोसाइटी की सेक्रेटरी कुमारी एफ० इ० निकल्सन ने कुछ वालको को ६ महीने तक निरामिप भोजन कराया था। उसी समय लदन काउन्टी काउन्सिल द्वारा उतने ही वालको को सामिप-भोजन करवाया गया। ६ महीने के पश्चात् दोनो दलो के वालको का डाक्टरी परीक्षण हुआ। उस परीक्षण से सिद्ध हुआ कि मास खाने वाले वालको की अपेक्षा शाकाहारी वालक अधिक तेज, स्वस्थ व वलिष्ठ हैं। तव से लदन काउन्टी कॉन्सिल की प्रार्थना पर उसकी देख-रेख के नीचे वेजिटेरिअन एसोसिएसन द्वारा लदन के हजारो असहाय गरीव वालको को निरामिष भोजन देने की व्यवस्था की गई।

डा० जोशिया आलडफील्ड डी० सी एम ए एम आर सी, एल आर सी पी सीनियर फिजिसियन, मारगेरेट हास्पिटल, व्राह्मले ने वताया है—'माम अप्राकृतिक भोजन है। इसीलिए शरीर मे अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा करता है। आजकल का सभ्य समाज इस मास के खाने से कैन्सर, क्षय, ज्वर, पेट के कीडे आदि भयानक रोगो से, जो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य मे फैलते है, वहुत—अधिक पीडित होता है। इसमे कोई—आश्चर्य नही कि मासाहार उन भयानक रोगो

के कारणो मे से एक कारण है जो सौ मे निन्यानवे को सताते है।"[२९]

ऐसे सिलपेस्टर, ग्रेहम, ओ० एस० फौल्डर०, जे० एफन्यूटन, जे० स्थिम, डा० ओ० ए० अलकूट हिडककलेण्ड, चीन, लेम्बवकान ट्रजी, ओलास, पेम्बरटर्न, हाईटेला आदि विश्वमान्य डाक्टरो ने अनेक सुदृढ प्रमाणो से यह सिद्ध किया है कि 'मास, मछली के खाने से हमारा शरीर व्याधि मन्दिर बन जाता है। यकृत्, राजयक्ष्मा, मृगी, प्रदर, वातरोग-सधिवात, गठिया आदि तथा नासूर एव क्षय रोग मास खाने से उत्पन्न होते है और बढते है।

इन अनुभवी डाक्टरो ने प्रत्यक्ष उदाहरणो के द्वारा यह सिद्ध किया है कि—मास, मछली खाना छोड देने से कुछ विशेष रोग स्वत ही नष्ट हो जाते है, और मानव शरीर हृष्ट-पुष्ट बन जाता है। डा० एस० ग्रहेमन, डब्ल्यू एस० फूलर, डा० पार्मली लेम्ब, क्वानिस्टर वेलर, जेपोर्टर, ए० जे० नाइट और जे० स्मिथ इत्यादि डाक्टर स्वय मास खाना छोड देने पर यक्ष्मा, अतिसार, अजीर्ण और मृगी रोगो से वियुक्त होकर स्वस्थ एव सबल बने है।

अपने अनुभव के आधार पर उन्होने अन्य रोगियो से भी मास छडवाकर उन्हे स्वस्थ व तन्दुरुस्त बनाया है। कई डाक्टरो ने तो अपने परिवार मे भी मासाहार का बहिष्कार कर दिया है।[३०]

डा० लीओ नाई विलियम्स का कथन है कि—'सुधरी हुई मास खाने वाली प्रजा मे ८५ प्रतिशत छोटे से बडे तक गले की बीमारियो एव आँतो की व्याधियो से दुख पा रहे है। इस कष्ट का मूल कारण मासाहार ही है। मास को चबाते वक्त उसके छोटे-छोटे रेसे दाँतो की सन्धियो मे भर जाते है, जहा वे सडा करते है। चूँकि दाँत साफ करने के चालू रिवाजो से वे बाहर निकलते ही नही। इसके साथ-साथ दाँत भी सडते है, और पायरिया जैसे खतरनाक दन्त-रोग उत्पन्न हो जाते है।

मि० आर्थर अन्डर वुड का कहना है कि इगलेड और अमेरिका आदि मे जहाँ पर मासाहार का प्रचलन है—वहाँ उन देशो मे १५०

---

२९ मांसाहार विचार।

३० " "

वर्ष पहले की अपेक्षा दात के रोग दशगुने बढ गये हैं। इस सम्बन्ध मे मि० थॉमस जे० रोगन लिखते है कि--ब्रिटिश डेन्टल ऐसोसिएशन की योजनानुसार स्कूल के विद्यार्थियो के दाँतो का परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि १०,५०० मे से ८६२५ दाँत के रोगी है। उसका कारण नीरोगी भोजन का अभाव है।

डा० पोल कार्टन कहते है कि—डाक्टरी अनुभव से यह प्रमाण सिद्ध हो चुका है कि मास की खुराक डिस्पेसिया, एपेन्डीसाइटिस आदि दर्दों को उत्पन्न करने मे अग्रतम स्थान रखती है। टाइफाइड, सग्रहणी इत्यादि रोगो को बढाता है और क्षय एव नासूर सदृश प्राण-घातक रोगो के जन्तुओ को शरीर मे प्रविष्ट होने मे सहायक होता है।

डा० कोभन्स बेली ने जाहिर किया है कि—'वर्तमान समय मे एपेन्डीसाइटिस एक सामान्य दर्द हो रहा है, और उसका कारण हम लोगो की खाने पीने की कुप्रथा है।" वे कहते है कि—'पशु-पक्षियो के मास मे एपेन्डीसाइटिस के जन्तु होने से शरीर मे रहे हुए मास को उसका चेप लगता है।'

डा० शेम्पोनीजर को यह ज्ञात हुआ था कि—'रुमानिया के २०,००० रोगी जो अन्न, फल, शाक पर निर्वाह करते हैं, उनमे से सिर्फ एक व्यक्ति को ही इस दर्द ने सताया था। परन्तु मांसभक्षी रोगियो मे से हर २२१ मनुष्य के पीछे एक मनुष्य को यह दर्द हुआ। फ्रेंच सेना के सर्जन जनरल की हैसियत से उन्होने यह प्रकट किया था कि फ्रेंच सिपाही मास पर निर्वाह करते हैं, इस कारण उन्हे एपेन्डीसाइटिस का दर्द विशेष रूप से होता है और अरब लोग अन्न, फल, शाक पर रहते है, अत वे इस रोग से मुक्त रहते है।

डा० एच० एस० ब्रुअर लिखते हैं कि--मास खाने वालो की नसे एव छोटी नसे भर जाती है, एव पतली पड जाती है, अतएव उनको बुखार कम ज्यादा रूप मे निरन्तर सताता रहता है।

मि० जे० एच० ओलीवर लिखते हैं कि--मास खाने वालो का हृदय, अन्न, फल एव शाक खाने वालो के हृदय से दशगुना अधिक जोर से धडकता है।

डा० बोन मुरडन लिखते है कि—मास सदृश नाइट्रोजन वाले पदार्थो मे लीवर किडनी, और ऐसे ही दूसरे भागो पर अधिक बाझ

पडता है और इससे सन्धिवात, लीवर तथा किडनी सम्बन्धी अन्यान्य दर्द उत्पन्न होते है।

डा० किंग्सफोर्ड और हैग ने मास भोजन से शरीर पर होने वाले बुरे असर को बहुत ही स्पष्ट रूप मे बतलाया है। इन दोनो ने यह साबित किया है कि दाल खाने से जो एसिड पैदा होता है, वही एसिड मास खाने से पैदा होता है। मास खाने से दाँतो को हानि पहुँचती है, सन्धिवात हो जाता है, यही तक नही, बल्कि इसके खाने से मनुष्यो मे क्रोध उत्पन्न होता है।' हमारी आरोग्यता की व्याख्या के अनुसार क्रोधी मनुष्य नीरोग नही गिना जा सकता। केवल मास भोजी मनुष्यो के भोजन पर विचार करने की जरूरत नही, बल्कि उनकी दशा भी ऐसी अधम हो जाती है कि उसका ख्याल करके हम मास खाना कभी पसन्द नही कर सकते।[31]

ससार के सुप्रसिद्ध विचारक टालस्टाय ने मास भक्षण के सम्बन्ध मे एक जगह अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—"मास खाने से पाशविक प्रवृत्तियाँ बढती है। काम उत्तेजित होता है, व्यभिचार करने एव मदिरा पीने की इच्छा होती है। इन सब बातो के प्रमाण सच्चे शुद्ध सदाचारी नवयुवक हैं। विशेषकर स्त्रियाँ और जवान लडकिया जो इस बात को साफ-साफ कहती हैं कि मास खाने के बाद काम की उत्तेजना और पाशविक प्रवृत्तियाँ अपने आप ही प्रबल हो जाती है। मास खाकर सदाचारी बनना असम्भव है।[32]

इस सन्दर्भ मे उपाध्याय श्री अमर मुनि जी के विचार भी अत्यन्त मननीय हैं—यह वैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा सिद्ध हो चुका है कि स्वास्थ्य के लिए मास से अधिक शाकाहार ही उपयोगी और निर्दोष है। जिन पशुओ का मास खाया जाता है, वे पशु भी लगभग शाकाहारी होते हैं। शाकाहारी पशु का मास यदि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए शक्तिशाली एव लाभप्रद हो तो,मासाहारी पशुओ का मास तो और भी लाभदायक होना चाहिए। किन्तु यह पाया जाता है कि मासाहारी पशुओ का मांस मनुष्य के लिए उपयोगी नही होता, उसमे एक प्रकार का जहर भरा होता है। फिर यह बात भी ध्यान देने लायक है कि फल, अन्न

---

३१ आरोग्य साधन — गांधीजी।

३२ आरोग्य साधन—गाधीजी।

और तरकारियाँ जल्दी से खराब नही होती जब कि मास तुरन्त खराब हो जाता है। उस मे कीडे पड जाते हैं और बासी मास बदबू देने लगता है।[33]

उपसंहारात्मक दृष्टि

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न देशो के वैज्ञानिको, शरीर-चिकित्सको एव विचारको ने एक स्वर से मासाहार को मानव शरीर के लिए अनुपयोगी ही नही, अपितु भयकर हानिकारक सिद्ध किया है। इन सब उद्धरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि मास भक्षण मानवीय प्रकृति के अनुकूल नही हैं। मनुष्य की प्रकृति मूलत. शाकाहार के अनुकूल है, और उसी ओर नियत क्रम से चलना चाहती है। शाकाहार की मूलप्रकृति मनुष्य की मूलत अहिंसा-प्रिय और कारुणिक होने का स्पष्ट और सबसे प्रबल प्रमाण है।

भारत जैसा अहिंसा-प्रिय देश जिसे ऋषि-भूमि होने का गौरव है, और कृषि-भूमि होने का भी! उस देश मे आज मासाहार का प्रचलन बडी तीव्रता के साथ बढ रहा है। जनता और वर्तमानशासन भी अन्धाधुन्ध इस क्रूर एव खतरनाक मार्ग पर बढते जा रहे है। इसके परिणाम भारत की उच्च सस्कृति के लिए ही घातक नही होगे, बल्कि मानसिक, शारीरिक एव आर्थिक स्थितियो को गडबडा देगे। मासाहार के कारण ही उन्माद, पागलपन, निद्रा-क्षय आदि बीमारियाँ तेजी से बढ रही है। इसी के मानसिक दुष्परिणाम है—निर्मम हत्याएँ, निर्लज्ज व्यभिचार एव लोगो का चारित्रिक अध पतन। देश की आर्थिक स्थिति पर तो स्पष्टत ही इसके दुष्परिणाम नजर आ रहे हैं। खाद्यन्नो की कमी से देश को प्रतिवर्ष अरबो रुपये का अन्न विदेशो से आयात करना क्यो पड रहा है? इसीलिए कि यहाँ कृषि के विकास पर उतना ध्यान नही दिया जा रहा है, जितना कि मास के उत्पादन के लिए शूकर-पालन, मुर्गी-पालन एव मत्स्य-पालन पर दिया जाता है। देश मे पशुधन की रक्षा के लिए कोई विशेप योजना नही बन रही है, किन्तु मासोत्पादन के लिए बडे-बडे वैज्ञानिक

---

३३. अहिंसा तत्त्व दर्शन—पृ० १७४

कट्टीखाने खोलने के लिए सरकार तत्पर हो रही है। कृषि एव पशुओ की हानि से देश को कितना बडा आर्थिक नुकसान हो रहा है, यह इसी बात से स्पष्ट हो जाता है—"एक वैज्ञानिक का कथन है कि पशुधन की बरबादी से हम एक अरब रुपये मूल्य के प्रोटीन खाद्य पदार्थ हर साल खो देते है।[३४]

इस प्रकार भारत की ऋषि-प्रधान सस्कृति मे मासाहार का प्रचलन, धार्मिक, सास्कृतिक, मानसिक शारीरिक एव आर्थिक सभी दृष्टियो से हानिप्रद सिद्ध हो रहा है। अपनी देश की सस्कृति एव धर्म से जिन्हे थोडा भी अनुराग है, उनका कर्त्तव्य है कि वे आज स्वय शाकाहारी बने रहे, एव विश्व मे शाकाहार का प्रचार करने के लिए कटिबद्ध हो जाएँ। सस्कृति के लिए वह दिन गौरव का दिन होगा जब भारत का प्रत्येक निवासी मासाहार को घृणा की दृष्टि से देखने लगेगा। वही दिन अहिंसा और करुणा की महान विजय का दिन होगा।

---

३४ नवभारत टाइम्स—हरीश भगवान का लेख १४ अक्तूबर १९६७

छह : अहिंसा के अंचल में विज्ञान

* अहिंसा और विज्ञान

रेडियो-सक्रियता तथा उसके प्रभाव :

विज्ञान की सहचरी अहिंसा।

* विज्ञान और उसके कार्य
* आणविक शक्ति का उपयोग
* युद्ध और अहिंसा

समस्या का समाधान

* हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ और भारत सरकार

वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग

* विज्ञान पर अहिंसा की स्वर्णिम विजय

भारत की अहिंसात्मक नीति

* अणु परीक्षण प्रतिबन्ध-सन्धि
* अहिंसा और विज्ञान का मिलन

१ | अहिंसा और विज्ञान

•

अहिंसा का दर्शन मानवीय जीवन के आन्तरिक स्तर को समुन्नता बनाता है, तो भौतिक विज्ञान मानवीय जीवन के बाह्य-स्तर को। अहिंसा-आध्यात्मिक भावना के रग से रजित है, तो भौतिक विज्ञान भौतिकवाद के रग से अनुरजित। विज्ञान ने भौतिक सुख-सुविधाओ का बहुत अधिक विकास किया है, नये नये आविष्कार करके मानव के रहन-सहन के स्तर को ऊपर उठाया और युद्ध आदि की सहारक शक्ति का भी पर्याप्त विकास किया है। पर प्रश्न है कि इससे मानव की आत्मा को कुछ शाँति मिली या नही? यह एक ज्वलन्त प्रश्न है, जो मानव को गहराई से चिन्तन करने के लिए बाध्य कर रहा है। आज विज्ञान के कारण मनुष्य का मस्तिष्क तो अत्यधिक विकसित हो चुका है, किन्तु उसका दिल दिनानुदिन छोटा होता जा रहा है। और ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक मनुष्य के दिल और दिमाग का सतुलन नही होगा, दोनो सम-स्थिति पर नही होगे, तब तक विज्ञान द्वारा महान् अनर्थ होते रहेगे। एक पजाबी शायर का तराना बोल रहा है—

> फरीदा तेरी दाढ़ी पे, उत्ते आगया नूर।
> अग्गू नेडा रह गया पच्छू रह गया दूर॥

फरीदा की दाढी की तरह आज मनुष्य के जीवन पर विज्ञान का नूर वढ गया है। इसलिए वह भौतिक प्रगति मे तो निरन्तर आगे से आगे वढता जा रहा है और ऐसा अनुभव होता है कि मानो मनुष्य ने भौतिक प्रगति का अन्तिम सिरा प्राप्त कर लिया हो, परन्तु आध्यात्मिक विकास का किनारा अभी वहुत दूर, सुदूर है

आज विज्ञान ने भौतिक-शक्ति पर विजय पाने मे कोई कमी नही रखी है, किन्तु आध्यात्मिक शक्ति के विकास मे वह सैकडो मील पीछे रह गया है। मानव ने विज्ञान के द्वारा प्रकृति को अपना अनुचर बना लिया है, पर आध्यात्मिक शक्ति की प्रतीक अहिंसा को वह काफी पीछे छोड चुका है। यही कारण है कि आज अहिंसा के अभाव मे एकाकी भौतिकशक्ति विश्व विनाश के लिए अभिशाप बन रही है। अणुअस्त्रो और प्रक्षेप्यास्त्रो द्वारा मानव भौतिकशक्ति पर महत्वपूर्ण विजय प्राप्त होने का गर्व कर रहा है, लेकिन उसकी वास्तविक विजय, जो आत्मा पर होनी चाहिए थी, वह उलटे पैरो लौट रही है।

आज विश्व के सामने अनेको समस्याएँ मुँह बाए खडी हैं। एक ओर विश्वशान्ति की समस्या है, तो दूसरी ओर अणु-अस्त्रो के निर्माण की प्रतिस्पर्धा, जिसने विश्व के चोटी के नेताओ को विकल बना रखा है। कोई भी राष्ट्र निर्भय प्रतीत नही होता। आणविक युद्धो की विभीषिका से सारा विश्व अशात व क्षुब्ध है। युद्ध की प्रलयकर आँधी की आशका से उनके प्रियप्राण काँप-काँप रहे है। इसी सवेदना मे वैज्ञानिक-मूर्धन्य प्रो० आइस्टाइन की अन्तिम आह से मानव समाज के लिए कितने सुन्दर उद्‌गार प्रस्फुटित हुए थे—"हम मानव होने के नाते अपने मानव बन्धुओ से अनुरोध करते हैं, कि आप अपनी मानवता को याद रखे और शेष सब कुछ भूल जाएँ। यदि आपने ऐसा किया तो आपके समक्ष स्वर्ग का अभिनव द्वार खुल जाएगा। यदि आप ऐसा नही कर सके, तो ससार की सार्वभौम मृत्यु का खतरा आपके सामने होगा।" विज्ञान का परिणाम मानव-समाज ने जितना अभीष्ट व कल्याण कर समझा था, उतना वह नही निकला। किसी ने कहा है—

> मानव ने पाई देश, काल पर जय निश्चय।
> मानव के पास नही, मानव का आज हृदय।
> है श्लाघ्य मनुज का भौतिक सञ्चय का प्रयास।
> मानवी भावना का पर कहाँ उसमे विकास?

सचमुच विज्ञान के द्वारा मानव का यान्त्रिक विकास बहुत हुआ, किंतु हार्दिक विकास नही। उसमे क्रिया है, पर चेतना नही। चारो

ओर अव्यवस्था, विशृङ्खलता, उच्छृङ्खलता और लोलुपता फैल रही है। विज्ञान के द्वारा व्यक्ति ज्यो-ज्यो भौगोलिक दूरी को नापता गया है, त्यो त्यो उसकी अपनी दुनियाँ छोटी होती गई है। वह विश्व-भर मे फैल कर भी विश्वात्मा नही बन सका। अपितु अपने ही क्षुद्र स्वार्थ के कठघरे मे बन्द होता जा रहा है। आज मानव के कान विज्ञान की सहायता से इतने लम्बे होगए है कि हजारो मील दूर की बात सुन लेते है, उसकी जबान इतनी लम्बी हो गई है कि हजारो मील दूर तक बेतार के तार, रेडियो, टेलीफोन या टेलिविजन द्वारा अपनी आवाज को पहुचा देता है। उसका मस्तिष्क इतना विराट् बन गया है कि मशीनो की सहायता से हजारो पोथे अपने दिमाग मे भर सकता है। हिसाब व गणित का कार्य कम्प्यूटर मशीनो द्वारा बहुत शीघ्र कर सकता है। उसके पैर इतने लम्बे हो गये हैं कि अब वह विज्ञान के सहारे चन्द्र व मगल-लोक तक की यात्रा करने और पाताल लोक तक को छान डालने के अभियान कर रहा है। देश और काल पर इतनी विजय पाने पर भी उसका हृदय अत्यधिक सकीर्ण तथा स्वार्थपरायण बनता जा रहा है। यह विज्ञान का सबसे बडा अभिशाप है। मानव वैज्ञानिक उपलब्धियो पर गर्व करता हुआ उनका उपयोग मानव सहार के लिए करता जा रहा है। इस दृष्टि से विज्ञान को मानव के लिए अभिशाप कहा जा सकता है। विमानो ने, पानी के जहाजो ने, बिजली के विभिन्न उपकरणो ने, जब मनुष्य के विकाश की ओर कदम बढ़ाया तो वह उसका समूल नाश करने के लिए समुद्यत हो गया। बमवर्षक विमानो ने योरोप, जापान, कोरिया आदि मे लाखो निरपराध मनुष्यो को अकाल मृत्यु की गोद मे सुला दिया। नागासाकी और हीरोशिमा उस भयानक मृत्यु ताण्डव की मुँह बोलती कहानी है।

इसके अतिरिक्त उसने मानव-सहारक मशीनगनो, विषैली गैसो, विस्फोटक द्रव्यो, बमो और अन्तर्द्वीपीय निक्षेप्यास्त्रो तक को मानव के हाथ मे देकर उसकी आसुरीशक्ति को खुली छूट देदी है, इसका परिणाम कितना भयकर होगा, यह अनुमान लगाना भी आज कठिन है। गत दो महायुद्धो मे वैज्ञानिक साधनो द्वारा जो धन और जन की महान् बर्बादी हुई है, उसमे विज्ञान का ही तो हाथ था ? यह जो कुछ भी अभूत पूर्व सहार हुआ है, जान माल की तबाही

हुई है, उसके लिए वास्तव मे उत्तरदायी कौन है ? विज्ञान ही। अणुबम, उद्जन बम एव निक्षप्यास्त्रो ने तो अब मानव की सुरक्षात्मक स्थिति को अत्यधिक गभीर बना दिया है। स्वार्थान्ध राष्ट्रो ने विज्ञान के सहारे मनुष्य जीवन से खिलवाड करना शुरू कर दिया है। मानव जाति आज विनाश के कगार पर खडी है। कौन जाने भविष्य मे ये आणविक अस्त्र क्या रूप दिखायेगे ?

एक विक्टोरियन कवि का विचार यथार्थ ही है कि विज्ञान से ज्ञान की वृद्धि तो होती है, किन्तु भावुक स्फूर्ति नष्ट हो जाती है।" वास्तव मे इस वैज्ञानिक युग मे भावनाओ का कोई मूल्याकन ही नही होता। विज्ञान की सहायता से मानव ज्ञान के विराट् कोष को तो प्राप्त कर सकता है, किन्तु उसने यह नही जाना-सीखा कि इसका सदुपयोग कैसे किया जाय ? विज्ञान के कारण बौद्धिक-दृष्टि से मानव भले ही उन्नत बन गया हो, पर नैतिक दृष्टि से अभी वह बहुत कुछ निम्नस्तर पर खडा है। विज्ञान द्वारा मानव प्राकृतिक शक्तियो पर विजय प्राप्त कर सका है, किन्तु आत्मिक शक्तियो पर विजय नही पा सका। यह सबसे बडी दुर्बलता है मानव की और यह एक चुनौती है आज के भौतिक विज्ञान को।

यह ठीक है कि विज्ञान ने अनेक चमत्कारी कार्य कर दिखाये है, उसकी कुछ उपलब्धिया बहुत महत्वपूर्ण है। किन्तु विज्ञान की शक्तियो का आज अणु अस्त्रो के निर्माण मे जो योगदान है, वह निर्माता के अहकार और गौरव की तृप्ति भले ही कर दे, किन्तु विश्व-मानव के लिए वह अन्तत महान सताप और विनाश का ही निमित्त बन रहा है। इन दुष्परिणामो की कल्पना मे आधुनिक विज्ञान के पिता प्रो० आइनस्टाइन की आत्मा सदा सतप्त रही है।

बताया जाता है कि जब अमेरिका के तात्कालिक प्रेजिडेंट रुजवेल्ट को आणविक बम बनाने की सिफारिश करने के लिए पत्र लिखा गया था, उस पर आईस्टाइन ने भी अपने हस्ताक्षर किए थे। परन्तु जब उन बमो की विनाश लीला उनके सन्मुख आई, तब उनकी आत्मा तडफ उठी और मृत्यु के पूर्व आईस्टाइन ने उन हस्ताक्षरो को अपने जीवन की "सबसे बडी भूल" कहा। वस्तुत अणुयुग की अणुशक्ति ने मानव को एक भयकर स्थिति मे डाल दिया है।

रेडियो-सक्रियता तथा उसके प्रभाव

•

आज आणविक अस्त्रजनित-विकीर्ण रेडियो-सक्रिय धूल से विश्व का वातावरण अत्यधिक दूषित बनता जा रहा है। रेडियो-सक्रियता का एक चित्र देखिए।

"प्रत्येक अणु मे एक छोटा-सा (न्यूक्लियस) न्यष्टि होता है। इसके चारो ओर 'एलेक्ट्रॉन'-कुण्य-भाजातु होते हैं। हाइड्रोजन सबसे हलका अणु होता है। इस अणु मे एक ही एलेक्ट्रॉन होता है। अणु जितना ही भारी होता है, उसमे उतने ही अधिक एलेक्ट्रान होते हैं। रेडियो-सक्रियता इन्ही अणुओ के भीतर के न्यूक्लियस टूटने की बजह से प्रारम्भ होती है।"

दूसरी ध्यान देने की बात यह है कि अणुबमो मे ही विस्फोटक शक्ति होती है। यही कारण है कि हाइड्रोजन बमो के भीतर विस्फोट के लिए एक छोटा-सा अणुबम रखा होता है। इस विस्फोट के तत्काल पश्चात् ही किरण-सक्रियता प्रारम्भ हो जाती है।

इन विस्फोटो से उत्पन्न किरण-सक्रियता बडी ही खतरनाक है, क्योकि इस किरण-सक्रिय धूल की जिन्दगी बडी लम्बी है। दूसरी ओर हर जीवित पदार्थ मे कार्बन की मात्रा अधिक होती है, जिससे किरण-सक्रिय धूल बडी आसानी से प्रवेश कर अपना प्रभाव प्रारम्भ कर देती है, विशेषकर इन पारमाणविक विस्फोटो के बाद जो कार्बन १४ नामक पदार्थ उत्पन्न होता है, वह तो और भी आसानी से जीवित पदार्थो मे प्रविष्ट हो जाता है। वैज्ञानिको के अनुसार हर एक मेगाटन वाले पारमाणविक शस्त्र से २० पौण्ड कार्बन १४ की उपलब्धि होती है। सन् १९६१ तक के विस्फोटो से उत्पन्न कार्बन १४ का हिसाब जोडकर ही महान् वैज्ञानिक लाइनस पालिग ने अन्दाजा लगाया था कि भविष्य मे ४००,००० विकलाग या मृत बच्चो का जन्म होगा। कार्बन १४ के अतिरिक्त स्ट्राटियम ६०, आयोडिन १३१, और कैसियम १३७ जैसे रासायनिक पदार्थ भी वातावरण मे फैलते है। इनसे तरह-तरह की बीमारियां पैदा होती

है। —जैसे कैन्सर, लूकेमियाँ, रक्त की कमी और पेचिश आदि।"[1]

उपरोक्त बतलाई गई रेडियो-सक्रिय धूल वास्तव मे विश्व के लिए महान् घातक है। इसका प्रभाव—जल, मिट्टी, हवा, वनस्पति, ऋतु, समुद्र आदि सभी पर गिरता ही है, किन्तु साथ ही मानव की शारीरिक प्रक्रिया पर भी गिरता है। मानवीय शरीर मे कुछ ऐसे तन्तु हैं, जिनका होना आवश्यक ही नही, वरन् अनिवार्य भी है। वे तन्तु जीवन की सही गति-विधि को सभाले होते है। उनमे समय-समय पर परिवर्तन होता ही रहता है, किन्तु रेडियो-सक्रिय धूल का प्रभाव जरा शरीर पर गिरता है तो, उन तन्तुओ का निर्माण कार्य एक प्रकार से बन्द-सा हो जाता है। फिर तो जीवनयात्रा भी अधिक समय तक चल नही पाती।

रेडियो-सक्रिय धूल का प्रभाव मानव की प्रजनन-शक्ति पर भी गहरा पडता है। इससे मानव की भावी पीढी का भविष्य अन्धकार-मय है। काश, इतना सब कुछ होने पर भी बडे-बडे राष्ट्रो का ध्यान इस सभाव्य क्षति की तरफ नही जा रहा है, उल्टे दिनानुदिन नवीनतम परीक्षणो की घुडदौड मे आगे से आगे दौडे जा रहे है। "यह सच है कि रेडियोधर्मिता का प्रमाण अधिक बढ जाए, तो सारी मानव जाति को खतरा है, और इसी कारण विस्फोटो के विरुद्ध विश्व मे प्रबल जनमत जाग्रत हो रहा है। अमेरिका की कमेटी फॉरनॉनवाइलेण्टऐक्शन तथा इगलैण्ड की कमेटी ऑफ हड्रेड—जिसके कर्णधार लार्ड रसेल हैं—इन दो सस्थाओ ने तथा वाररेजिस्टर्स इण्टरनेशनल ने अणु-विस्फोटो का बहुत विरोध किया और कर रहे हैं। शान्ति-कूच तथा अणु-विस्फोट से प्रभावित व वर्जित क्षेत्रो मे नौकाओ द्वारा वालण्टियरो को भेजकर विरोध करने और विस्फोटो के विरुद्ध जनमत जाग्रत करने मे इन सस्थाओ ने प्रशसनीय प्रयास किये है। भारत मे गाधीपीसफाउण्डेशन द्वारा आयोजित एन्टीन्यूक्लियर आर्म्स कन्वेन्शन इसी दिशा मे एक कदम है। अगर रूस, अमेरिका व फ्रान्स विस्फोटो की पारस्परिक होड मे पीछे हटने को तैयार न हुए, तो कुछ समय मे ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है, जब मनुष्य जाति के लिए रेडियो धर्मिता के

---

१. **पारमाणविक विभीषिका, मे उद्धृत।** —विक्रमादित्यसिंह

परिणाम खतरनाक सिद्ध हो जाएँगे। उस परिस्थिति मे न तो रूस या अमेरिका उसके दुष्परिणामो से बच सकेगे और न अन्य देशो की प्रजा। यह बात नही कि इस वस्तुस्थिति से अणु-वैज्ञानिक या शासक-वर्ग परिचित नही है। वे इन खतरो से भली-भांति परिचित है। पर उन्हे विश्वास है कि उस स्थिति तक पहुचने मे अभी बहुत समय लग सकता है। तब तक विस्फोटो का कार्य-क्रम जारी रखकर उसकी शक्ति के विषय मे अधिकतम जानकारी क्यो न प्राप्त करली जाए।"[२]

अभिप्राय यह है कि आज जिस तेजी से बडे-बडे राष्ट्रो मे परमाणु अस्त्रो की होड लग रही है, यदि इस पर नियत्रण नही किया गया, और यो के यो ही वे जारी रहे तो वास्तविक युद्ध से होने वाला विश्व-विनाश का खतरा भले ही प्रत्यक्षीभूत न भी हो, किन्तु प्रतिस्पर्धा के इन परीक्षणो के मन्थन से निकलने वाली रेडियो-सक्रिय धूल के कालकूट से मानव जाति के महानाश की सम्भावना तो है ही।

विज्ञान की सहचरी : अहिंसा

विनाश के कगार पर खडी मानवता को बचाना एक बडी समस्या है। इसके लिए हमे एक ऐसी नियन्त्रित शक्ति की खोज करनी है जिसके द्वारा मानवता का बचाव किया जा सके। इसके लिए अनन्त ज्ञान-शक्ति सपन्न महापुरुषो ने एक दिशा सुझाई है और वह है अध्यात्म की दिशा, जिसके सहारे राम, बुद्ध, महावीर तथा ईसा जैसे प्रबुद्ध आत्माओ ने विश्व पर विजय प्राप्त की थी। वे जीवन की आखिरी घडियो तक विश्व को अहिंसा, दया, प्रेम, क्षमा आदि का सन्देश देते रहे है। आज उन्ही सन्देशो को उनके अनुयायियो को पुन जीवन मे जागृत करने की आवश्यकता है, तथा विश्व के लिए एक शान्ति का अजस्र-स्रोत खोज निकालना है।

वर्तमान मे मानव को जितनी भौतिक ताकते व शक्तिया उपलब्ध हुई है, उनसे कई गुनी अध्यात्मशक्ति की आवश्यकता है। इसके अभाव मे निरी भौतिक शक्ति जीवन नाशक ही सिद्ध होगी।

—दिलीप

२. अणुयुग और हम, पृ० २१।

हवाई जहाज के अन्दर दो यत्र होते हैं । एक यत्र हवाई जहाज की रफ्तार को घटाता-बढाता है और दूसरा यत्र दिशा का बोधक होता है । जिससे चालक हवाई जहाज की गति-विधि को ठीक से सभाले रहता है । इसी प्रकार विश्व मे दो शक्ति रूप यत्र अविराम गति से काम कर रहे है । एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिकयत्र विविध सुख-सुविधा व कार्यों की रफ्तार बढाता है, और उसके वेग को कम ज्यादा करता है, तो अध्यात्मयत्र दिशा-दर्शन देता है, हानि-लाभ का परिज्ञान करवाता है और मजिले-मक्सूद तक पहुँचाने का प्रयास करता है । इसी अध्यात्मशक्ति (अहिंसा) के द्वारा हम विश्व-विनाशक-तत्व के निर्माताओ का मन-मस्तिक बदल सकते है और उनके प्रयासो की अनुपयुक्तता को समझा सकते हैं । इस सम्बन्ध मे एक बार विनोबाजी ने अपने सामयिक-प्रवचन मे कहा था—

"विज्ञान अहिंसा की शक्ति है । अहिंसा को हक है कि शक्ति का उपयोग करे, चाहे आज वह दूसरो के पास क्यो न पडी हो । अहिंसा के साथ यदि विज्ञान की शक्ति जुड जाएगी तो दुनिया मे स्वर्ग लाने की जो बात ईसामसीह ने कही है, उस स्वर्ग को हम साकार कर सकते हैं । अगर वह शक्ति विरोधियो के हाथ मे रही तो, भले ही उसका वही जन्म हुआ हो, वह कुल दुनिया को खत्म कर देगी ।"

आज अणु-अस्त्रो की सहारकशक्ति का प्रतीकार तभी किया जा सकेगा जब विज्ञान को अहिंसा के साथ सलग्न कर दिया जाए । वरना विज्ञान ने आज इतनी प्रबल शक्ति का सचय कर लिया है कि वह अन्तर्द्वीपीय क्षेप्यास्त्र से एक स्थान पर बैठे रहकर दुनिया के किसी भी भाग को एक बटन दबाकर खत्म कर सकता है । मेगाटन बम से कई गुना अधिक भयकर बम तैयार हो चुके हैं । उनके सन्मुख हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये बम तो नगण्य हैं ।

डूम्सडे मशीन तो विश्व मे कयामत की रात ही बुलाने की समता रखती है ।

यदि आज के युग मे मानवजाति के वास्तविक त्राण-बीज ढूढे जाएँ तो वह अहिंसा मे ही उपलब्ध हो सकते है ।

साराश यह है कि विज्ञान जहाँ नवीनतम आविष्कारो के द्वारा प्रकृति के रहस्यो का समुद्घाटन करता है, तथा आणविक शक्ति के

परीक्षणो से अपना अनुभव बढाता है, वहाँ अहिंसा उनके द्वारा होने वाले विनाशो को रोकने का सुप्रयास करती है। अत उक्त दृष्टि से अहिंसा को विज्ञान की सहचरी बनाया जाए। विज्ञान की शक्ति को अहिंसा के निर्देश पर ही प्रयोग किया जाए। विज्ञान और अहिंसा का साहचर्य ही मनुष्यजाति के त्राण का एक मात्र मार्ग है।[3]

---

३. विशेष विवेचन के लिए देखें, लेखक की "आधुनिक-विज्ञान और अहिंसा"।

२ | विज्ञान और उसके कार्य

•

दिन और रात की तरह विज्ञान के दो पक्ष हैं—एक कृष्ण पक्ष, दूसरा शुक्ल पक्ष। कृष्ण पक्ष—विध्वस का प्रतीक है और शुक्ल पक्ष—सृजन का। सृजन-पक्ष मे विज्ञान ने सपूर्ण विश्व को बदल दिया है। विज्ञान ने जनसमाज के लिए भोगोपभोग की वस्तुओ का निर्माण किया, जीवन के स्तर को ऊपर उठाया, सभ्यता और सस्कृति मे परिवर्तन किया। इतना ही नही, विज्ञान द्वारा आज मानव समुद्र के वक्षस्थल पर मछलियो की भाति विचरण कर रहा है। आकाश मे पक्षियो की तरह अबाध गति से उडानें भर रहा है, और भूतो की तरह पृथ्वी पर सरपट चाल से चल रहा है। रेडियो, टेलीफोन, टेलीविजन, मोटरकार, रेल, हवाई जहाज आदि विज्ञान की मौलिक देन है।

विध्वसपक्ष मे युद्ध के लिए विज्ञान ने बन्दूक से लेकर अणु और उद्जन बम तक साधन प्रदान किये है।

आज प्रत्येक देश की सभ्यता के समस्त उपकरण विज्ञान की छाया मे पनप रहे है। आज प्रत्येक राष्ट्र के बीच निकटता स्थापित करने का सम्पूर्ण श्रेय विज्ञान को है। द्रुतगामी साधनो ने विभिन्न देशो मे सामीप्य स्थापित कर यह सिद्ध कर दिया है कि कोई भी राष्ट्र या उसका प्रमुख व्यक्ति शक्ति-सम्पन्न क्यो न हो, पर वह दूसरो की उपेक्षा करके अपना राष्ट्रीयकार्य सम्पन्न नही कर सकता। इसी का वह उज्ज्वल निष्कर्ष है कि प्रत्येक क्षेत्र मे दिनानुदिन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित होते जा रहे हैं। इस प्रकार विज्ञान के सर्वांगीण व सर्वदेशीय विकास ने मनुष्य के श्रम की बचत और समय की उपयोगिता बढाई है, यह विज्ञान का प्रथम शुक्लपक्ष

हुआ। इस शुक्लपक्ष की चकाचौध मे विज्ञान के द्वितीय कृष्ण पक्ष को भुलाया नही जा सकता।

आणविक-शक्ति विज्ञान की अभूतपूर्व देन है, इसमे कोई शक नही। किन्तु जब इसका उपयोग महाविनाश के लिए होता है, तो दिल दहल उठता है। अणुबम व उद्जन बम की महाविनाशकारी लीला मानव के समक्ष आने पर भी वैज्ञानिको व राजनेताओ की दृष्टि मे बहुत कम परिवर्तन देखा गया है। आज उद्जन बम से भी अधिक शक्तिशाली नाईट्रोजन बम के निर्माण मे वैज्ञानिको के उर्वर मस्तिष्क लगे हुए है।

प्राचीनकाल की तरह आज तोप, तलवार, बन्दूक आदि से लडने की आवश्यकता नही, और न एक-एक व्यक्ति पर भिन्न-भिन्न रूप से प्रहार करने की ही आवश्यकता है। विज्ञान ने लाखो मनुष्यो को एक साथ खत्म करने की शक्ति सपादित कर ली है। वैज्ञानिको के अभिमत से प्रथम विश्वयुद्ध मे एक सैनिक को खत्म करने के लिए औसतन बन्दूक की दस हजार गोलियाँ या तोप के दस गोले छोडने पडते थे। परन्तु आज तो विश्व के बडे से बडे नगर या ग्राम को कुछ ही क्षणो मे भूमिसात् किया जा सकता है, और सिर्फ एक ही बम से। हिरोशिमा और नागासाकी को विध्वस करने वाले अणुबमो से भी सहस्रगुण अधिक शक्ति- सम्पन्न बम तथा दूरमारक राकेट अस्त्र तैयार हो चुके है। इतने पर भी वैज्ञानिक सतुष्ट प्रतीत नही होते। वे इस समय भी विश्व मे एक भयंकर प्रलयरूप 'कोबाल्ट' बम तैयार करने की चिन्ता मे है। जिसके सम्बन्ध मे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह आणविक तथा उद्जन बमो से भी कही ज्यादा भयकर व खतरनाक सिद्ध होगा।

अभी इन्ही दिनो मे पश्चिमी इण्डियाना की एक पहाडी पर एक विशाल कारखाने मे अमेरिका ससार का सबसे भयानक सहारक अस्त्र तैयार कर रहा है। यह अस्त्र एक स्नायु-गैस है। जिसमे न कोई गन्ध है और न कोई स्वाद और वह एक प्रकार से दिखलाई भी नही पड़ता। लेकिन उस की एक बून्द भी सास के द्वारा चमडी के भीतर चली जाए तो चार मिनट मे मनुष्य के लिए काल बन सकती

है। बतलाया जाता है कि कारखाने मे यह गैस राकेटो, जमीन पर बिछाई जाने वाली सुरगो और तोप के गोलो मे भरी जारही है। आज मानव के पास इतनी शक्ति एकत्रित हो गई है कि वह कुछ बूँदो से शत्रु-शक्ति को स्वाहा कर सकता है।

'बर्नाल' ब्रिटेन का एक वैज्ञानिक है, उसका कहना है कि युद्ध मे काम आने वाले एक राकेट पर आज जितना खर्च होता है, उतने खर्च से ५०० परिवारो के लिए ऐसे सुन्दर घर बनाये जा सकते हैं, जिनमे वे सब तरह की सुख-सुविधाओ के साथ आराम से रह सकते हैं। और, अणुअस्त्रो वाले देशो मे से हर एक देश ने ऐसे तो न जाने कितने राकेटो के अम्बार खडे कर रखे है। उनके फौजी गोदामो मे उन अस्त्रो के लिए अब जगह नही बची है।

पारस्परिक शत्रुता और अविश्वास की दीवारो के अन्दर बन्द करके रखी गयी इस शक्ति को नहरो के जरिये प्यासे खेतो की ओर बहाया जा सके, तो एक-दो पीढी के अन्दर ही मनुष्य पृथ्वी पर स्वर्ग खडा कर सकता है? लेकिन आज की महानशक्तियाँ तो किसी दूसरे ही फेर मे पडी हैं और देश की रक्षा के नाम पर उसके सर्व-नाश की ही योजनाएँ बनाती जा रही हैं।[४]

इस प्रकार अणुशक्ति ने विश्व के सामने विशाल पैमाने पर विकास क्षेत्र खोल दिये है। पर इतना मै अवश्य कहूँगा कि इनके द्वारा होने वाले हानि और लाभ का उत्तरदायित्व आणविक शक्ति के निर्माता मूर्धन्य वैज्ञानिको पर ही रहेगा।

४. हमारे युग का भस्मासुर अणुबम। —सुभद्रा गाँधी

३ | आणविक-शक्ति का उपयोग

•

"जब कभी विज्ञान किसी नई चीज का आविष्कार करता है, असुर उस पर झपट पडते है, जब कि बेचारे देव इस चर्चा मे फँसे रहते हैं कि उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग क्या हो।"

—एलन वेलन्टाइन

विज्ञान का उपयोग मानव की सद् असद् बुद्धि पर निर्भर है। यदि एक व्यक्ति अपने और ससार के जीवन को शान्तिमय देखना चाहता है, तो वह उस का उपयोग उच्चादर्शों मे, सेवा या जनता जनार्दन के हित-कार्यों मे करेगा। यदि मानव स्वार्थाभिभूत होकर अपनी ही सुखैषणा के लिए विध्वसात्मक-प्रवृत्तियो मे, जनसहार के कामो मे उसका उपयोग करेगा, तो विश्व मे अशान्ति की भयकर आग फैल जाएगी, और एकदिन उस आग की लपटे नागिन की तरह लप-लपाती उसके द्वार तक भी आ पहुचेगी। ऐसी स्थिति मे मानव को अपनी विवेक-ज्ञानमयी बुद्धि से काम लेना होगा।

उदाहरणार्थ रेडियम ससार की सबसे मूल्यवान् धातु है। वर्तमान मे रेडियम की किरणो द्वारा कई असाध्य रोग, और गभीर घाव ठीक किये जाते हैं। कहते हैं इसमे बहुत गर्मी होती है। यदि इसका दुरुपयोग किया जाता तो आज विश्व तबाह भी हो सकता था, पर वैज्ञानिको ने इसकी शोध करके इसका सदुपयोग करना सीख लिया यह कितना सद्भाग्य है मानव जाति का। वैज्ञानिको का अभिमत है—एक परमाणु का विस्फोट किया जाए तो उससे इतनी अधिक तापीय-शक्ति का सृजन होता है जिसे हम बडे से बडे रचनात्मक या विध्वसात्मक कामो मे लगा सकते है। वाष्प या बिजली की शक्ति

की भाँति अणुशक्ति स्वत हानिकारक नही होती। मनुष्य चाहे इसे रचनात्मक कार्य मे लगाए, चाहे विध्वसात्मक कार्य मे। रचनात्मक कार्यों मे इससे अद्भुत कार्य-परिणाम निकाले जा चुके हैं। वैज्ञानिको का कथन है कि आत्यन्तिक साधारण परमाणुशक्ति से हम बडे-बडे नगरो के बिजली घर महीनो तक चला सकते हैं। आणविक-शक्ति की सहायता से गाडिया तथा विमान अकथनीय तीव्र गति से चल सकेगे। आज भी ससार अत्यन्त निकट आ चुका है और आणविक शक्ति के इन उपयोगो से तो और भी निकट आ जाएगा। वैज्ञानिक कहते है कि आणविक युग मे कुछ ही घटो मे ससार के चारो ओर घूमा जा सकेगा। निकट भविष्य मे अणुशक्ति चालित विमानो से चन्द्र-लोक की यात्रा भी बहुत आसानी से की जा सकेगी। स्पुतनिक इसके साक्षी है। स्वल्प आणविकशक्ति से भी बडे-बड़े कल-कारखानो को चलाया जा सकेगा, जिन्हे आजकल चलाने मे पर्याप्त बिजली व्यय होती है। वैज्ञानिक तो यहा तक स्वप्न देख रहे है कि एक दिन वह भी आएगा, जब परमाणु शक्ति द्वारा रोग, बुढापा और मृत्यु पर भी विजय प्राप्त की जा सकेगी। अणु मे इतनी शक्ति है कि एक पौंड़ यूरेनियम का ईधन १५०० टन कोयलो के बराबर शक्ति रखता है। अणु मे इतनी शक्ति है कि अगर इसका सद्भावना से ठीक रूप मे प्रयोग किया जाय तो धरती स्वर्ग बन सकती है। वैज्ञानिक-प्रगति से मानव को यह तो पता लग चुका है कि अणु मे रचनात्मक शक्ति भी विद्यमान है और उसका सर्वजनोपकारी कार्यों मे प्रयोग किया जा सकता है।

विज्ञान की अन्य श्रेष्ठतम देनो का चित्रण 'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' नामक लेखक की पुस्तक मे सविस्तार किया जा चुका है। यहा तो सिर्फ यही देखना है कि विज्ञान की भिन्न-भिन्न देनो का स्वार्थ-जन्य, लोभ-जन्य, अथवा मानव सहार के रूप मे प्रयोग न हो, मानव-हित और स्वहित सोचकर मानव कल्याण और स्वकल्याण का सामञ्जस्य करते हुए विज्ञान का प्रयोग हो तो अहिंसा की शक्ति निखर सकती है। अहिंसा विज्ञान के साथ ओत-प्रोत होकर मानव-जीवन को चमका सकती है।

आज के युग मे विज्ञान को जो देश सृजनात्मक कार्यों मे लगायेगा, उसके साथ अहिंसा और मानवता का गठबन्धन करके चलेगा, वही

देश उन्नत और और सभ्य कहलायेगा। भारत सदा से ही अहिंसा का हामी रहा है और इसके सामने भी अणुशक्ति का शान्तिपूर्ण कार्य मे प्रयोग करने की समस्या थी। पर भारत ने गत दशक मे अणु-विज्ञान के क्षेत्र मे ठोस अनुसधान कार्य किया है, सावधानी से, किन्तु द्रुत गति से। भारत सरकार ने यहा के वैज्ञानिको को प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया है, ताकि वे भी शीघ्रातिशीघ्र इसे अहिंसक बुद्धि से रचनात्मक कार्यों मे प्रयुक्त कर सके। अगर वैज्ञानिको का वर्तमान ध्वसोन्मुखी दृष्टि-कोण बदल जाए तो शीघ्र ही समस्त राष्ट्रो मे शान्ति की सुरसरी प्रवाहित हो सकती है।

४ | युद्ध और अहिंसा

●

यह तो सुविदित है कि ससार दो विश्वयुद्धो की विभीषिका तो अपनी आखो से देख चुका है। अब तीसरे विश्वयुद्ध के नगाड़े बजने प्रारम्भ हो रहे है। जनता युद्ध से भयाक्रान्त है। आज राष्ट्रो का सामान्य तनाव भी विश्वयुद्ध की आशका को जन्म देने वाला है। न जाने मानव का बौद्धिक सन्तुलन कब गडवडा जाए और कब ससार प्रलय के मुख मे चला जाए ? विगत दो महायुद्धो का परिणाम हमारे सामने है। यदि तृतीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया तो, इससे सम्पूर्ण विश्व प्रभावित हुए बिना नही रहेगा। इसलिए ससार के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिको ने मिलकर विश्व को साफ शब्दो मे चेतावनी दी है—"या तो मानवजाति को मिटाना पड़ेगा या युद्धो को तिलाञ्जलि देनी होगी।" सचमुच आणविकशक्ति व अणु-आयुधो से सुसज्जित राष्ट्रो के लिए यह एक चुनौती है। आज उन्हे गहराई से इस पर मनन करना है। यदि मानव जाति को बनाये रखना है, तो युद्धो से उपरत होना ही पड़ेगा। अन्यथा युद्ध का जो भयकर परिणाम है वह उनके सामने है ही।

प्रो० आईनस्टाइन से किसी ने पूछा था कि—आपके विचार से तृतीय विश्वयुद्ध कौन से शस्त्रो से लडा जाएगा ?' तब उन्होने उत्तर देते हुए कहा—"मै तृतीय विश्वयुद्ध के सम्बन्ध मे कुछ नही कह सकता, हा इतना अवश्य कहूँगा कि उसके बाद भी कोई युद्ध हुआ तो वह अवश्य ही लाठियो से लडा जाएगा।" उक्त कथन से यही प्रतिभासित होता है कि यदि तृतीय विश्व युद्ध हुआ तो वर्तमान सभ्यता और अब तक की हुई प्रगति का विनाश अवश्यभावी है।

आज के वैज्ञानिको के उर्वर-मस्तिष्क अधिक से अधिक विनाशक तत्वो के निर्माण मे सलग्न है। मार्शल जुकोब तथा ख्रुश्चेव ने तो यहाँ तक घोषणा कर दी थी कि "अब हवाई जहाज व जेट विमान केवल अजायबघर की सामग्री रह गई है। आनेवाली पीढियाँ अजायबघर मे जाकर कौतूहल वश देखेगी कि किसी जमाने मे हवाई जहाजो से लड़ाई होती थी।" तात्पर्य यही है कि राकेट जैसे विनाशक तत्वो से आज विश्व को बचाना एक समस्या बन गई है। यदि विश्व को निर्भय बनाना है तो वह अणुबम व राकेट से नही, किन्तु अहिंसा के द्वारा ही बनाया जा सकता है।

वर्तमान मे भारत और पाकिस्तान का तनाव भी विश्व के लिए खतरे से खाली नही है। इससे दोनो विकासोन्मुख देशो को क्षति की सम्भावना है। विगत युद्ध के परिणामो से दोनो को सावधान होना है और सोचना है। यदि इस तनाव को समाप्त करने मे अहिंसाशक्ति का यथोचित्त उपयोग किया गया तो दोनो राष्ट्र भयकर सभाव्य क्षति से बच सकते है। यह सुविदित है कि युद्ध से अब तक किसी को शान्ति नही मिली। जिसने बडे शौर्य के साथ लडाईयाँ लडी, कीट-पतगो की भाँति जन-सहार किया, अन्त मे उनका हिंसा-पीडित हृदय यही कहता रहा—"युद्ध बहुत बुरा है—तन, धन और जन आदि सभी दृष्टियो से युद्ध बुरा है।" प्रियदर्शी अशोक ने कलिग की लडाई लडी। उसमे लाखो व्यक्ति मारे गये। सहस्रो माताओ की गोद सूनी होगई। सहस्रो रमणियो का सुहाग लुट गया। किन्तु क्या अशोक की आत्मा को वास्तविक शान्ति प्राप्त हुई? नही! कलिग-विजय के बावजूद भी अशोक की आत्मा मे एक तडफ थी, एक टीस थी। वह टीस और तडफ अशोक को उद्वेलित बना रही थी। हतप्रभ-सा होकर अशोक चिन्तन के अनन्त सागर मे डुबकियाँ लगाता हुआ सोचता रहा—युद्ध लडकर मैने क्या पाया है? इस विजय की उपलब्धि क्या है? जो व्यक्ति युद्ध मे मारे गये उनके भी कई प्रिय जन-स्वजन होगे? उन पर क्या बीती होगी? उनकी वियोगाग्नि मे वे सब किस प्रकार तडफ रहे होगे? उनके हृदय से मेरे प्रति कितने अभिशाप के शोले उठते होगे? इन्ही विचार-तरगों से तरगित बने अशोक का हृदय भर गया, और हृदय की वह अनन्त वेदना चक्षुओ की खिडकी से अश्रु बनकर बाहर निकल पडी।

अन्ततोगत्वा अशोक युद्ध से सदा के लिए विरत हो गया और अहिंसा भगवती की प्रशात गोद की शरण ग्रहण कर ली। अशोक का युद्ध-जनित अन्तर परिताप आखिर अहिंसा की शीतल छाया मे आने से ही शान्त हुआ।

समस्या का समाधान

●

बहुत से व्यक्तियो का यह दृष्टिकोण है कि राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय समस्या पर हिंसा के द्वारा ही काबू पाया जा सकता है। किन्तु वस्तु-स्थिति इससे सर्वथा विपरीत है। हिंसा से समस्या सुलझती नही, बल्कि अधिक उलझती है। राख के नीचे दबी हुई आग किसी भी समय प्रकट हो सकती है, और जान माल की तबाही का कारण बन सकती है। वैसे हिंसा से एक बार समस्या सुलझी-सी प्रतीत होती है, किन्तु वास्तव मे वह पुन दुगुने वेग से उभर कर सामने आती है, जो अत्यन्त भयकर साबित होती है। हिंसात्मक युद्ध से किसी प्रबल-शक्ति को एकबार परास्त किया जा सकता है, पर दूसरे ही क्षण परास्त हृदय मे खून की पिपासा जागृत हो उठती है। और वह तीव्र वेग के साथ अपने शत्रु को पराजित करने के लिए मचल पड़ती है। 'इस प्रकार हिंसा-प्रतिहिंसा की एक लम्बी शृँखला-सी चल पडती है। वस्तुत हिंसा-प्रतिहिंसा की शृँखला ही शस्त्रो के विकास का इतिहास है। पत्थर से गदा, गदा से तीर, और तीर से आग्नेय-अस्त्रो की उत्पत्ति हुई। समय आने पर इन्हीने और भयकर रूप मे तोप और मशीनगन को जन्म दिया, और उनका प्रतीकार हुआ अणुबम से। प्रतिक्रिया यही न रुकी, एक पग आगे बढकर हाइड्रोजन का आविष्कार भी सामने आगया। यद्यपि मानव-वश के विनाश के लिए तो जो कुछ मौजूद है, वही काफी है, किन्तु कौन कह सकता है कि यह हिंसात्मक प्रतिक्रिया यही समाप्त हो जायेगी ? जब एक ड्राम 'बोटूलीनस' जहर की एक शुद्ध मात्रा दो करोड आदमियो को एक साथ नष्ट कर सकती है, जैसा कि सन् १९४७ मे जनरल एसेम्बली के सामने पेश किये गये मेमोरेण्डम मे कहा गया है, तो अब मानव-वंश के सुरक्षित भविष्य की

आशा करना भी व्यर्थ है। जब तक कि युगधारा नही बदलती...।"[५] नये से नये और तीव्र से तीव्रतर शस्त्रो का आविष्कार होने पर भी मानव के समक्ष युद्ध की समस्या ज्यो की त्यो खडी है। यह समस्या यदि कभी सुलझेगी तो अहिंसात्मक शक्ति से ही सुलझ सकेगी। अतएव अब अहिंसा की दिशा मे कदम बढाने होगे। भले ही प्रारम्भ मे उसमे विजय-चिन्ह परिलक्षित न हो, पर अन्त मे अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। बशर्ते कि दृढ आत्म-विश्वास व धैर्य के साथ आगे बढ़ा जाए।

एकबार गाँधी जी से किसी ने कहा—"हिटलर दया नही जानता। आपकी आध्यात्मिक-पद्धति उसके सामने कामयाब नही होगी।" इस पर गाँधी जी ने अत्यन्त गभीरता से उत्तर देते हुए कहा—"आप सही हो सकते है, आज तक के इतिहास मे कोई ऐसा प्रमाण नही जब कि किसी देश ने अहिंसात्मक प्रतीकार किया हो। यदि हिटलर पर मेरे कष्ट सहन करने का कोई प्रभाव नही पड़ता तो कोई बात नही। इसके लिए मुझे कोई मूल्यवान चीज नही खोनी पड़ेगी, क्योकि आत्म-सम्मान ही सबसे अधिक रक्षणीय वस्तु है, और वह हिटलर की दया के अधीन नही। लेकिन अहिंसा पर विश्वास करने वाला होने के नाते मैं इसकी शक्तियो को सीमित नहीं मानता। आज तक हिटलर और उसके समान अन्य विजेताओ का अनुभव इसी पर आधृत है कि लोग शक्ति के सामने झुक जाते हैं। शस्त्रहीन स्त्री, पुरुष और बच्चो के द्वारा किया गया द्वेष रहित अहिंसात्मक-प्रतिरोध उन के लिए एक नया अनुभव होगा। कौन कह सकता है कि उनका स्वभाव उच्च एव मानवीय शक्तियो से परिचित नही, या उनका उन पर कोई असर नही पड़ सकता? उनमे भी तो वही आत्मा है जो मुझ मे है।"[६]

साहसी व आत्म-निष्ठ व्यक्ति के लिए कोई भी कार्य दुर्लभ नही है। अहिंसा विश्व शान्ति का अमोघ अस्त्र है। यदि शाति की पुकार करने वाले राष्ट्र वास्तविक शाति चाहते हैं और युद्धो से उपरत होना

---

५ गांधी और विश्वशान्ति, पृ० १५। —देवीदत्त शर्मा

६. देवीदत्त शर्मा द्वारा गांधी और विश्व शान्ति, में उद्धृत, पृ० ४०

चाहते है तो उन्हे अहिंसा को अपनाना ही होगा। एक विचारक के शब्दो मे—"यदि मनुष्य जीवन चाहता है, मृत्यु नही, वह विकास चाहता है, अवरोध नही, वह सगठन चाहता है, विघटन नही, तो अहिंसा आवश्यक ही नही अनिवार्य भी है।" समस्त राष्ट्रो की आधारशिला अहिंसा है। इसी के आधार पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विकास एव उत्कर्ष सभव है।

५

हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ और भारत सरकार

•

भारत कितना महान् देश है ! ह्यू-एन-साग, फाहियान, मेगस्थनीज आदि विदेशी विद्वानो ने अत्यन्त गौरव के साथ इसका गुणगान किया है। इस धरती पर बडे-बडे तीर्थंकर, सत और पैगम्बर हुए हैं, जिन्होने अहिंसा और अनेकान्त जैसे महान् सिद्धान्त प्रदान किये, पर खेद है कि आज इस देश मे भी अहिंसा की छीछालेदर हो रही है। देश के बडे बडे राष्ट्र नेताओ व अधिकारी पुरुषो के लेखो और भाषणो मे अहिंसा है, पर जीवन का मन्दिर उससे सूना-सूना है। अहिंसा के नाम पर हिंसा का नग्न-ताण्डव हो रहा है। एक ओर भारत जहाँ भाखरा नागल प्रोजेक्ट, दामोदर घाटी बान्ध, हीरा कुण्ड आदि बाध बाध कर तथा विविध कल कारखाने खोलकर विकास की ओर अग्रसर हो रहा, वहाँ दूसरी ओर विशाल वध शालाएँ, (कट्टीखाने) मुर्गी-उद्योग, मत्स्य-उद्योग आदि हिसात्मक प्रवृत्तिया बढाकर अपनी पावन आर्यसस्कृति का नाश भी कर रहा है। इसमे सन्देह नही, महात्मा गाधी की अहिंसा नीति मे पनपने वाला भारत पूर्वापेक्षा आज अधिक मासाहार की ओर झुका जा रहा है। अहिंसा आर्यसस्कृति का प्राण है। इस विषय पर लच्छेदार भाषण देने वाले भी मासाहार की उत्तेजक प्रवृत्तियो मे सहयोगी बन रहे हैं। अतीत के पृष्ठो से ज्ञात होता है कि विदेशी यात्रियो ने भारत की यात्रा करने के पश्चात् जो अपने मौलिक सस्मरण व अनुभव लिखे है, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सुप्रसिद्ध विद्वान फाहियान जिसने

स० ३६६ से ४१४ तक भारत की डायरी मे लिखता है—"चाण्डालो के सिवाय कोई भी व्यक्ति किसी भी जीव का वध नही करता है। न कोई मद्यपान ही करता है और न कोई जीवित पशुओ का व्यापार ही करता है।"[7] इसी प्रकार सुप्रसिद्ध घुमक्कड रोम निवासी मार्को पोलो ने भारत वर्ष की यात्रा की थी। वह अपनी डायरी मे अपने यात्रा-सस्मरण इस प्रकार उट्टकित करता है—"चाण्डालो के सिवाय कोई भी व्यक्ति मास आदि नही खाता है। कोई भी व्यक्ति जीवो की हत्या नही करता। यदि किसी को पशुमास की जरूरत हो, तो उसे दूसरे देशो से विदेशियो को बुलवाकर पशुवध के लिए नौकर रखना पडता है।" यह है हमारी आर्य-सस्कृति की उच्चता? आज कहा है यह उच्चता और पवित्रता? वह तो बेचारी नर-पिशाचो की डाढ के नीचे आकर पिस गई है। आज उसका अवशेष भी दिखलाई नही पडता है।

वैज्ञानिक यंत्रों का प्रयोग

●

भारतीय चिन्तन का मूलभूत तथ्य यह रहा है कि जन-जीवन मे अहिंसा अधिक से अधिक बढती रहे पनपती रहे। किन्तु खेद है कि आज के मानव ने अहिंसा के उच्चादर्श को भुला दिया है। अपनी स्वार्थ-लिप्सा के झुरमुट मे पडकर वह दानवीय-लीला का खुला प्रदर्शन कर रहा है। आश्चर्य तो इस बात का है कि आज भारत सरकार स्वय मासाहार पर बल देकर हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ बढा रही है। पशुओ को कत्ल करने के लिए वैज्ञानिक यत्रो का प्रयोग करने का सोचा जा रहा है, देवनार का कत्लखाना प्रभृति जिसके ज्वलन्त उदाहरण है। इसके लिए भारतीय जनता का प्रबल विरोधात्मक स्वर उठ रहा है, किंतु सरकार को उसकी कोई परवाह नही है। एक दिन वह था जब भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध तथा प्रेम के पुजारी ईसा के धर्म सन्देशो का समस्त एशिया मे प्रचार किया जाता था, किन्तु आज भारतीय लोग बन्दरो, कुत्तो और चूहो को मारने मे वीरता दिखा रहे है। हजारो लाखो बन्दर प्रतिवर्ष

---

७ भारत वर्ष का इतिहास —जी० टी० ह्वीलर

विदेशो मे निर्यात किये जाते है। बतलाया जाता है कि इन बन्दरो का रक्त मशीनो द्वारा खीच लिया जाता है। कई व्यक्तियो ने इनकी इस निर्मम हत्या को अपने नेत्रो से देखा है। फिर भी निर्यात करने वाले मानवो का राक्षसी हृदय परिवर्तित नही हुआ। हमारे परिताप की सीमा नही रहती जब हम देखते हैं कि भारत सरकार गाय जैसे उपयोगी पशु के वध को भी विदेशी मुद्रा उपार्जित करने के प्रलोभन मे फँस कर प्रोत्साहन दे रही है। प्राचीन काल से ही भारत वर्ष मे गाय का विशेष महत्त्व रहा है। कृषि-प्रधान इस देश के जन जीवन का यह गाय मुख्य आधार रही है। देश की अधिकाश जनता गौ को माता तथा देवता मानकर उसकी पूजा करती है। उसके प्रति एक विशेष आदर भावना रखती है। इसका वास्तविक कारण उसकी अत्यधिक उपयोगिता ही है। वह दूध, दही, घृत जैसे जीवन के लिये अनिवार्य पदार्थों की देने वाली है। कृषि की रीढ है। श्री कृष्ण ने गौओ को चराकर 'गोपाल' पद प्राप्त किया। जैन शास्त्रोमे उल्लेख है कि भगवान् महावीर के श्रावको के गोकुल मे हजारो गाये पाली थी। इस प्रकार भारतीय सस्कृति मे गौ का विशिष्ट स्थान निर्विवाद है और वर्तमान काल मे भी उसकी उपयोगिता से कोई इन्कार नही कर सकता।

एक समय इस देश मे दूध दही की नदियाँ बहती थी, गोधन-विनाश के कारण आज यह अमृत दुर्लभ हो गया है। मध्यम श्रेणी के गृहस्थ अपने बाल बच्चो को भी पर्याप्त दूध-घी नही दे पाते। गौ को माता मानकर पूजने वाले देश मे आज बच्चे दूध के लिए तरसते है, मक्खन के तो दर्शन ही कहाँ ? जहाँ गौ-मासभक्षी कहे जाने वाले देशो मे दूध की नदियाँ बह रही है। क्या यह भारत के निवासियो के लिए शर्म की बात नही है ? पिछले दिनो मे जो ससार के बाजारो के भाव प्रकाशित हुए उसमे बताया गया है कि देहली की अपेक्षा लन्दन मे दूध और मक्खन अधिक शुद्ध और अधिक सस्ता मिलता है। भला जिस देश मे प्रतिदिन तीस हजार गायो के गले पर छुरी चलाई जाती हो, वहाँ इस प्रकार की दीन-दशा पैदा न होगी ? आश्चर्य तो यह है कि भारत की प्रजातांत्रिक सरकार इस जघन्यतम व्यवसाय को बढावा देने की योजना मे सलग्न है। पिछले कुछ समय से भारतीय सन्त-महात्माओ का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। उन्होने गौ-वध निरोध के लिये प्रवल आन्दोलन

आरम्भ किया है। पुरी के जगद्गुरु शकराचार्य ने सतत्तर दिन तक तथा अन्य सन्तो ने भी लम्बे-लम्बे अनशन किये है। किन्तु अब तक सरकार सही विचार पर कहाँ आई है। विश्वास है कि यह आन्दोलन गोवध पर पूर्ण प्रतिवन्ध लगवाने मे अन्तत सफल होगा और भारत के भाल से यह कलक का टीका मिटकर ही रहेगा।

इस सम्बन्ध मे भारतीय सरकार को दीर्घ-दृष्टि से काम लेना चाहिए। क्योकि सरकार को यदि सचमुच लोकतन्त्र को जीवित रखना है, देश की गति-विधि को ठीक तरह से सचालित किए रखना है तो जनता के समवेत स्वर की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित करना ही होगा।

आज हिंसात्मक प्रवृत्तियो की रोक-थाम के लिए उसे अहिंसा का अभियान अधिक से अधिक तेज करने की आवश्यकता है। यदि अहिंसा की उपेक्षा कर दी और हिंसा का प्रवाह प्रवाहित होता चला गया तो निश्चय ही यह स्वर्गीय भूमि नरकागार के रूप मे परिणत हो जाएगी। इस दिशा मे डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के विचार दर्शनीय है—"जब मानव जाति हिंसा की चरम सीमा पर पहुँच चुकी है, तब ऐसे समय मे अहिंसा ही एक मात्र अवलम्बन है। यदि मानव को महाविनाश मे विलीन नही हो जाना है तो अहिंसा की चिरन्तन वाणी का उसे पुन आविष्कार करना होगा। जिस बुद्धि ने अणुकी सूक्ष्म शक्ति का विघटन किया है, वही बुद्धि अहिंसा की जीवनी-शक्ति का मार्ग समझने की शक्ति रखती है।"

यहाँ डा० अग्रवाल के कथन मे हम इतना और जोड देना चाहते है कि जिस देश को सहस्राब्दियो से अहिंसा की विरासत मिली, वह देश भारत अब अहिंसा की जीवनीशक्ति विश्व को समझाए, वह समय आ गया है। किन्तु यह होगा तभी जब भारतीय नेता, जो राजनीति और शासन मे भारत का प्रतिनिधित्व करते है, स्वय अहिंसा के भारतीय दृष्टिकोण को हृदयगम करे और अहिंसा को ही आदर्श-मान कर उसके पथ का अनुसरण करे। यह ठीक है कि आज बौद्धिक-जगत मे अहिंसा मान्य हुई है, पर दुर्भाग्य से जीवन के क्षेत्र मे वह प्रवेश नही कर पाई है। आज अहिंसा को जीवन मे अधिक से अधिक स्थान देकर हिंसात्मक प्रवृत्तियो का दमन किया जाए तभी वह लाभप्रद हो सकती है।

९

विज्ञान पर अहिंसा की स्वर्णिम विजय

●

विज्ञान का जिस ढङ्ग से विकास हुआ और हो रहा है उसे देखते हुए वह मानव को तात्कालिक भौतिक लाभ पहुँचा सकता है, पर, उसमे विध्वस की सभावनाएँ ही अधिक है। आज पश्चिमी ससार भौतिक समृद्धि के शिखर पर पहुच चुका है, पर उससे उसे क्या मिला ? विध्वस व अस्त्र ! हाईड्रोजन बम ! अणु बम और दूरमारक राकेट !! जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व आतकित है। यह सत्य-तथ्य है कि आणविक-युद्धो से विश्व को कभी शान्ति नही मिल सकती। अणु-अस्त्रों के प्रयोगो के समय आईंस्टाइन ने उचित ही कहा था—"अब हमारे सामने दो ही विकल्प है, या तो हम एक साथ जीएगे या एक साथ मरेगे।" वस्तुत आधुनिक युग मे विज्ञान-मस्तिष्क ने जो भयङ्कर हिंसा के साधन प्रस्तुत किये हैं, उन सबका प्रतीकार अहिंसा द्वारा ही किया जा सकता है। यदि कोई यह सोचे कि हिंसा के द्वारा हिंसा का उन्मूलन कर अहिंसा की प्रतिष्ठा की जाए तो यह उसकी अज्ञता ही है। क्योकि शस्त्रो से शस्त्र कभी काटे नही जा सकते। तलवार से तलवार नही जीती जा सकती। भगवान् महावीर ने सुस्पष्ट शब्दो मे कहा है—ससार मे एक से बढकर दूसरा शस्त्र है, किन्तु अश स्त्र अर्थात् अहिंसा से बढकर और कुछ नही है। जगत् का अन्त भले ही हो जाए, पर शस्त्रो की प्रतिस्पर्द्धा का अन्त शस्त्रो से नही हो सकता। भयानक से भयानक शस्त्रो को शस्त्रो से नही, अशस्त्र मे अर्थात् अहिंसा से ही जीता जा सकता है।[८]

---

८ अत्थि सत्थ परेण पर, नत्थि असत्थ परेण पर। —आचाराग ३।३-४।

इसी प्रकार युद्ध के द्वारा युद्ध भी बन्द नही किये जा सकते। अतीत का इतिहास हमारी आँखो के सामने है। हिंसा से कभी किसी ने विजय प्राप्त नही की और यदि प्राप्त की भी तो उसमे स्थायित्व नही रहा। अहिंसा द्वारा सम्पादित विजय स्थायी एव शाश्वत होती है। इसी शाश्वत—सत्य को दिनकर जी ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

ऐसी शान्ति राज करती है, तन पर नहीं, हृदय पर।
नर के ऊँचे विश्वासों पर, श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर॥

चण्डकौशिक की हिंसा पर महावीर की अहिंसा ने, अर्जुनमाली की हिंसा पर सुदर्शन की अहिसा ने, सम्राट् प्रदेशी की हिंसा पर श्रमण केशी की अहिंसा ने[९], दुष्यन्त की हिंसा पर आश्रम के सात्विक ऋषियो की अहिंसा ने[१०] विजय प्राप्त की। वस्तुत वही इनकी विजय चिर-स्थायी एव सच्ची विजय थी। उक्त घटनाएँ हिंसा पर अहिंसा की विजय का चिरन्तन सत्य स्पष्ट कर रही है।

भारतीय सस्कृति के तत्वचिन्तक मनीषियो ने विश्वशान्ति का वास्तविक आधार अहिंसा को ही माना है। अहिंसा ने विश्व के रगमच पर वे अद्भुत कार्य करके दिखाये है, कि जिनकी कल्पना मानवमस्तिष्क मे नहीं थी। भारत की स्वतन्त्रता, कोरिया का गृह-युद्ध, कागो और मिश्र के उदाहरण इतने ताजे है कि शान्ति-स्थापना के कार्यों मे इस पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नही।

भारत की अहिंसात्मक नीति

●

भारत सदा से शान्तिप्रिय देश रहा है। इस भूमि पर राम, कृष्ण, बुद्ध व तीर्थंकर महावीर आदि महापुरुष हिंसा व युद्ध से

---

९ राजप्रश्नीय सूत्र।

१० न खलु न खलु बाण सन्निपात्योऽयमस्मिन्।
मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्नि॥
—भारतीय सस्कृति, साने गुरु जी मे उद्धृत

पीडित-विश्व को समय-समय पर शान्ति का सन्देश देते रहे है। उसी का यह सुफल है कि भारत का विश्वशान्ति के क्षेत्र मे सुदीर्घ-काल से बहुत बडा योग रहा है। भारतीय जनता का यह सुदृढ विश्वास है कि राष्ट्रो की सीमाएँ युद्ध के द्वारा परिवर्तित नही की जा सकती, और न द्वेष-घृणा के द्वारा ही किसी का प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। भारत का चिंतन तो सदा यह रहा है कि न तो किसी पर आक्रमण करना और न किसी का प्रदेश ही हथियाना। वह सभी देशो के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध सस्थापित करना चाहता है। वह अपनी सुरक्षा की गारण्टी अणुआयुधो से नही, किन्तु पारस्परिक मैत्री से प्राप्त करना चाहता है। वह विश्व के प्रति सदा यही मगल कामना करता रहा है—"सब सुखी हो, सब नीरोग हो, सब एक दूसरे का भला देखे, और कोई दु खी न हो।" यह पावन भावाभिव्यञ्जना विश्व के सभी राष्ट्रो एव मानव मात्र के लिए अपेक्षणीय है।

युद्ध एक समस्या है। आज का ससार युद्ध की विभीषिका को विशेष सत्रस्त दृष्टि से देख रहा है। अत यदि किसी भी राष्ट्र ने हिंसात्मक निरोध के सम्बन्ध को लेकर अहिंसा की दिशा मे अपने सक्रिय चरण बढाए तो निश्चय ही अहिंसा के इतिहास मे वह एक नूतन अध्याय जोडने वाला सिद्ध होगा।

इस विषय मे विश्व को अन्य राष्ट्रो की अपेक्षा भारतवर्ष से अधिक आशा है, यह कोई न कोई शान्ति का मार्ग ढूँढ निकालेगा। क्योकि भारत ही एक ऐसा देश है, जो वस्तुत अहिंसात्मक नीति से युद्ध की समस्या को हल करना चाहता है। किसी न किसी वार्तालाप से ही सुलह हो जाए यही उसका अन्तर्भाव है।

यद्यपि युद्ध भारत की मूल प्रेरणा नही है, तथापि कुछ समय पूर्व चीन ने सीमा विवाद के नाम पर सहसा छल युक्त हिंसात्मक आक्रमण किया, और जिसके लिए शान्तिप्रेमी भारत को आत्म-रक्षण के लिए प्रतीकार करना पडा। पर इसमे उसे कतई प्रसन्नता न थी। भारत ने इसे एक प्रकार से आपद्धर्म माना है।

अभी-अभी गत वर्ष ही पाक, हिन्दुस्थान को अपनी युद्ध-लिप्सु वृत्ति का पूर्ण परिचय दे चुका है, और उसे ईट का उत्तर पत्थर मे मिल जाने के बावजूद भी वह अपनी इस दुष्टवृत्ति को कम नही कर पा रहा है। पुन युद्ध के मोर्चे पर आने के लिए वन्दर की तरह

उछल-कूद मचा रहा है। पर यह निश्चित है कि भारत अब किसी भी दृष्टि से न पीछे है और न पीछे ही रहेगा। भारत इसके लिए अत्यन्त सचेष्ट है कि जहां तक अहिंसात्मक नीति से समझौता हो जाए, अति श्रेयस्कर है, भारत की इस पवित्र नीति का सर्वत्र प्रभाव है। अणुअस्त्रो से सुसज्जित धनी राष्ट्र अमेरिका, रूस व ब्रिटेन आदि ने भारत की इस रीति-नीति की मुक्त-कण्ठ से सराहना की है और इसे समन्वयवादी राष्ट्र कहा है। इतना ही नही, अमेरिका व रूस ने तो अहिंसा की दिशा मे अपने चरण कुछ बढाने प्रारम्भ भी कर दिये हैं।

७ | अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध-सन्धि

आधुनिक विज्ञान की बदोलत किस प्रकार के भीषणतम संहारक अस्त्र-शस्त्रो का निर्माण हो चुका है, यह हम देख चुके है। पर, यह तो निर्विवाद है कि यदि इन अस्त्रो के द्वारा युद्ध लडा गया तो न युद्ध करने वाले ही बच सकेगे और न ही वे जिन पर अस्त्रो का प्रयोग किया जाएगा। अत आज विश्व के मूर्धन्य राष्ट्रो को इस समय इस बात पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना है कि नि शस्त्रीकरण व अणुपरीक्षण पर प्रतिबन्ध लगाकर विश्व को धन-जन की महान हानि से बचाया जाए। यदि शस्त्रीकरण तथा अणु-परीक्षणो की बढती हुई प्रतिस्पर्धा की परिसमाप्ति नही हुई तो एक दिन अखिल मानवता के नाश होने की सम्भावना है। आज विश्व के बडे राष्ट्र रूस, अमेरिका तथा ब्रिटेन आदि शस्त्रीकरण और अणु-परीक्षण की घृणास्पद प्रतिस्पर्धा का परित्याग कर शातिपूर्ण सहयोग के पथ पर अग्रसर हो जाएँ तो निश्चय ही ससार सुख की ओर बढ सकता है। यद्यपि इसके किए कुछ शान्तिप्रिय राष्ट्रो ने पहल की है, और वे कृतसकल्प भी हुए हैं। यूरोप जैसे कुछ देशो मे अणु-परीक्षणो के विरोध मे आन्दोलन, सगठन तथा सत्याग्रह आदि किये जाने लगे है। तथा फौज का विघटन करके हथियारो को समुद्र मे फेंक देने के विचार आज के बडे-बड़े राजनीतिज्ञो के मस्तिष्क मे लहराने लग गये है। पर, यह स्मरण रहे कि हमे इतने पर से ही सतोष की सास नही लेना है। इसके लिए आवश्यक तो यह है कि सभी बडे राष्ट्रो के प्रधान मिलकर एक स्थान पर बैठे और पुन इस प्रश्न पर ठण्डे मस्तिष्क से विचार करे। तथा पारस्परिक सहयोग का स्वर्णिम सूत्र तैयार करके विश्व को निर्भय बनाएँ।

सन् १६६१ के लगभग बेलग्रेड मे तटस्थ राष्ट्रो का एक सम्मेलन हुआ था जिसमे नि शस्त्रीकरण व पारमाणविक विभीषिका पर विचार किया गया। उसमे श्री लका की प्रधानमत्रिणी श्रीमती भण्डार नायके अपने हृदय के उद्गार अभिव्यक्त करती हुई बोली –

"मै इस सम्मेलन मे भाग लेने के लिए सिर्फ अपने राष्ट्र की प्रधानमत्रिणी की हैसियत से ही नही आयी हू, बल्कि एक स्त्री और मा की हैसियत से भी' ।

"''' मै एक क्षण के लिए भी ऐसा विश्वास नही कर सकती कि दुनिया मे कोई ऐसी भी माँ है, जो अपने बच्चो के पारमाणविक सक्रिय धूल से शिकार होने और घुल-घुलकर मरने की सम्भावना पर विचार कर सके।"

"महान शक्तियो के नेतागण, जिनके हाथो मे युद्ध न चाहने वाली लाखो जनता ने सत्ता सौंप दी है, उन्हे कभी-भी यह अधिकार नही है कि वे किसी भी विशेष सिद्धान्त या आदर्श के लिए भयानक विध्वसक-शक्ति वाले पारमाणविक युद्ध छेड़े।"

× × ×

भारत के प्रधानमत्री स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—

—"मानवता खतरे मे है। हमे इसी पहलू से सोचना है, यानी जो ज़रूरी सवाल है उस पर हम पहले सोचे और यह जरूरी सवाल है युद्ध और शान्तिका। जब विश्व विनाश की ओर बढ रहा है, तो दूसरे सवाल गौण हैं ।

- " मुझे बडा ही ताज्जुब होता है कि महान् शक्तियाँ इसे इज्जत का प्रश्न बनाकर अपनी-अपनी बात पर दृढ हैं और यह इतनी महान् और शक्तिशाली है कि शान्तिवार्ता के लिए तैयार नही। मेरा विश्वास है कि यह एक गलत रुख है। इसमे उनकी इज्जत का ही प्रश्न नही, बल्कि मानवजाति के भविष्य का भी प्रश्न है।"

× × ×

यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो कहते है—

"बेलग्रेड-सम्मेलन का उद्देश्य महान्शक्तियो को यह बतला

देना है कि विश्व का भाग्य सिर्फ उन्ही के हाथो मे नही रह सकता।"[११]

प्रस्तुत सम्मेलन मे नि शस्त्रीकरण व अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध के सम्बन्ध को लेकर पारस्परिक गम्भीर विचार-विमर्श हुआ। यह सम्मेलन कितने अश मे कामयाब हुआ यह बतलाना तो इस समय शक्य नही है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसके पश्चात् भी शान्तिप्रिय राष्ट्र इस सम्बन्ध मे सतत प्रयत्नशील रहे है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ५ अगस्त १९६३ को मास्को मे होने वाला सम्मेलन है। मास्को मे कई राष्ट्रो ने मिलकर अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध-सन्धि पर शान्ति और मैत्री की कामना करते हुए अपने हस्ताक्षर किये है।

प्रस्तुत सन्धि पर फ्रास आदि कुछ राष्ट्रो ने हस्ताक्षर नही किये। इसका प्रधान कारण यह है कि रूस और अमेरिका अपने अणु-हथियारो के भण्डार को नष्ट करने के लिए तैयार नही हैं। इस प्रश्न का उचित समाधान हो गया तो वे भी प्रस्तुत सन्धि पर हस्ताक्षर करने को प्रस्तुत हो जाएँगे, ऐसी आशा की जाती है।

भारत के प्रधानमत्री स्व० नेहरू ने अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध-सन्धि पर हस्ताक्षर को शीतयुद्ध की बर्फ पर पहली चोट बताते हुए विश्व के लिए प्रसन्नता अभिव्यक्त की। श्री नेहरू ने कहा—"मास्को मे आज (५ अगस्त को) इस सन्धि पर हस्ताक्षर हो रहे है और प्रत्येक शान्तिप्रेमी को इसका स्वागत करना चाहिए। यद्यपि परीक्षणो पर यह आशिक प्रतिबन्ध सन्धि ही है, और नि शस्त्रीकरण की दिशा मे बहुत बडी प्रगति नही है, फिर भी यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। क्योकि यह उस मजिल की ओर ले जाने वाला प्रथम सोपान है।" उन्होने कहा—"भारत ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर करना स्वीकार कर लिया है। हम यह मानते हैं कि युद्ध वर्जन-सन्धि जहाँ भी हो, उसका स्वागत किया जाएगा क्योकि उससे युद्ध का खतरा कम होता है।"

क्रेमिलिन मे रूस की तरफ से आयोजित भव्य स्वागत समारोह मे भाषण करते हुए तत्कालीन प्रधानमत्री ख्रुश्चेव ने कहा—

---

११ पारमाणविक विभीषिका —विक्रमादित्यसिंह की पुस्तक मे उद्धृत।

"आंशिक अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध-सन्धि अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का आलेख है। मगर इस सन्धि से अणुयुद्ध का खतरा खत्म नही हुआ है, जब तक हथियारो के लिए दौड जारी रहेगी तब तक यह खतरा वना रहेगा।" अमेरीकी विदेशमत्री श्री डीन रस्क ने अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि पर कहा—"यह एक अच्छा पहला कदम है, और यदि इसके अनुगमन मे और कदम बढे तो मानव का शान्ति के लिए स्वप्न यथार्थ रूप पा सकेगा।" ब्रिटेन के विदेशी मत्री ह्यूम ने प्रस्तुत सन्धि के सम्बन्ध मे बतलाया—"आज के सुअवसर पर हम सवको जो आशावाद दिखाई दे रहा है, वह इस बात का प्रतिफल है कि रूस और पश्चिम के नेता इस परिणाम पर पहुँच गए है कि आणविक युद्ध को कल्पना नही की जा सकती। प्रत्येक मानव परिवार अब इस भय से मुक्त हो सकता है कि उसकी भावी सन्तान हवा मे मानव निर्मित कारागार से मुक्त रहेगी।"[१२]

उपर्युक्त राष्ट्रीयनेताओ के हृदय की यह भावाभिव्यञ्जना विश्वशाति की एक सुनहरी किरण है, जो हिंसा से अहिंसा की ओर एव विध्वस मे सृजन की ओर बढने के लिए प्रबल प्रेरणा दे रही है। इसमे तनिक मात्र भी शका को अवकाश नही कि यह प्रेम-स्नेह की पताका है, जो विश्व के प्रागण मे लहराती रहेगी युग युग तक.।

१२ दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली ७ अगस्त १९६३ ई०।

८ | अहिंसा और विज्ञान का मिलन

●

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य शाश्वत सुख-शान्ति प्राप्त करना है। सूक्ष्म-दृष्टि से चिन्तन-मनन करने पर यह ज्ञात होगा कि मनुष्य मात्र की ही नही, पशुओ और पक्षियो तक की प्रत्येक प्रवृत्ति मे सुख-शान्ति का ही ध्येय निहित है। ज्ञान-विज्ञान का लाभ यद्यपि महत्वपूर्ण है, तथापि वह भी साध्य नही, साधन ही है और उसका साध्य सुख प्राप्ति ही है। अतएव यह स्पष्ट है कि जो ज्ञान-विज्ञान जीवन मे सुख-शान्ति की सृष्टि कर सकता है, वही हमारे लिए उपादेय और श्रेयस्कर हो सकता है।

पिछले पृष्ठो मे विज्ञान के सम्बन्ध मे जो आलोचनात्मक दृष्टि प्रस्तुत की गई है, उससे स्पष्ट तथा विदित होगा कि आधुनिक विज्ञान जहा हमारे लिए कुछ सुख-सुविधाएँ प्रस्तुत करता है, वहाँ बहुत-से दु ख एव दुविधाएँ भी उत्पन्न कर रहा है। परिताप की बात तो यह है कि विज्ञान ने सुख की अपेक्षा दु ख एव विनाश की ही अधिक सृष्टि की है। विज्ञान के प्रभाव से आज हमारा जीवन अतिशय अशात, असन्तुष्ट, व्याकुल और विनाशोन्मुख बन गया है।

यद्यपि विज्ञान इस युग का कोई अभूतपूर्व आविष्कार नही है, वह सनातन है। किन्तु प्राचीनकाल के वैज्ञानिको की जीवन नीति एव दृष्टि भिन्न प्रकार की थी। उस समय विज्ञान और राजनीति का क्षेत्र भिन्न भिन्न था। विज्ञान राजनीति के प्रभाव से सर्वथा मुक्त था। विज्ञानवेत्ता राजनीति को प्रभावित कर सकते थे, मगर राजनीति विज्ञानवेत्ताओ को प्रभावित नही कर सकती थी। इसी कारण तत्कालीन विज्ञान मे अध्यात्मोन्मुखता थी, कोरी भौतिकता अर्थात्

सहारकता नही थी। मगर आज वह बात नही है। आज का वैज्ञानिक राजनीतिज्ञो के हाथ का खिलौना है। राजनीतिज्ञो के सकेत पर ही आज वैज्ञानिको के प्रयास चल रहे है।

कितने दु ख का विषय है कि सृष्टि का सर्वाधिक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक-वर्ग चादी-सोने के टुकडो के बदले अपने मस्तिष्क और कर्तृत्व को वेच डालता है! वह राजनीतिज्ञो की उच्छृखल महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति का औजार मात्र बना हुआ है।

जिस दिन ससार के वैज्ञानिको की आत्मा जागृत होगी और वे राजनीतिज्ञो की गुलामी करने से इन्कार कर देगे, उसी दिन से विज्ञान विनाश के बदले विकास का सर्जक बन जाएगा। अमगल से मगल की ओर चल पडेगा। उसकी दिशा बदल जाएगी। वह मानवजाति की सुख-शान्ति के लिए प्रयत्नशील होगा। उन्ही घड़ियो मे अहिंसा के साथ विज्ञान का मगलमय समन्वय हो सकेगा और जब विज्ञान का अहिंसा के साथ समन्वय होगा तभी वह विश्व के लिए वरदान बन सकेगा, तभी मानव जाति दिव्यत्व की ओर बढ सकेगी। यह एक शुभ लक्षण है कि आज राजनीतिज्ञ, राष्ट्रनेता, समाजनेता और वैज्ञानिक भी अहिंसा के साथ विज्ञान के समन्वय की आवश्यकता स्वीकार करने लगे है। ससार के विराट्शक्तिशाली राष्ट्र इस दिशा मे सोचने लगे है। अमरीका और रूस के नेताओ की सद्भावना यात्राएँ अगर कूटनीतिक यात्रा न हो, तो इस तथ्य की पुष्टि करती है। यदि विचारो की इस दिशा मे प्रगति होती रही तो उस दिन की सभावना की जा सकती है, जब सारा ससार सुख की नीद सो सकेगा, किसी को किसी से भय न होगा, अविश्वास और आशका न होगी। कोई किसी के अधिकार का अपहरण नही करेगा। युद्ध, कलह या सघर्ष के लिए कोई कारण पैदा नही होगे। सोने-से दिन और चादी-सी राते कटेगी। मगर इस परिस्थिति के लिए अनिवार्य शर्त है—अहिंसा के अचल मे विज्ञान शिशु का पोषण हो। विज्ञान को अहिंसा के हाथो मे सोप दिया जाए, और अहिंसा माता विज्ञान को विश्वमगल के लिए प्रस्तुत करती रहे।

****

सात : अहिंसा बनाम विश्वशान्ति

१ | प्रगति के पंख

मानव विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। इस शस्य-श्यामला धरती पर अनादिकाल से उसका अस्तित्व है, और तभी से उसके सन्मुख विविध समस्याएँ उपस्थित होती रही हैं। पर समस्याओ से वह कभी निराश नही हुआ। अपने अदम्य उत्साह, शौर्य और बुद्धि-बल के साथ उनका प्रतीकार करता रहा, तथा प्रगति की दिशा मे अपने मुस्तैद कदम बढाता रहा है। बौद्धिक बल के सहारे उसने अपने भविष्य का निर्माण किया। सीमा और मर्यादाओ की रेखा खीच कर जीवन को सुसस्कारित बनाया। सामाजिक, व्यावहारिक नियम-उपनियम के स्तभ स्थिर किये। जीवन की अनेक विकट समस्याओ के सही समाधान ढूँढ निकाले। इतना ही नही, किन्तु प्रगतिशील मानव ने प्रकृति के गूढरहस्यो का भी पता लगाया, और एक दिन प्रकृति की उन अनन्त शक्तियो का वह शास्ता बन बैठा। उन्नीसवी शताब्दी के समाप्त होते-होते मानव द्वारा आविष्कृत विज्ञान एव यत्रो की सहायता से सृष्टि के सौन्दर्य मे आमूलचूल परिवर्तन होने लगा। जीवन का मूल्याकन भी नये मानदण्डो से किया जाने लगा। सामाजिक एव आर्थिक-स्वतत्रता की भावना जागृत होने लगी। अन्धविश्वास और प्राचीन रूढियो की लोह-शृँखलाएँ खन-खन करती हुई टूटने लगी। सामन्तशाही के रगीन हवाई महल ढहने लगे और लोकतन्त्र की भावना अन्तर मे अँगडाई लेने लगी। जागरण की शहनाई बज उठी। मानव नया बल नया सम्वल, नई स्फूर्ति, और नई चेतना लेकर आगे बढा। शोषण, दलन व स्वार्थ के क्षुद्र आवर्त से निकलकर विश्वबन्धुत्व, शान्ति तथा सतोष के खुले प्रागण मे जीवन का वास्तविक मूल्याकन करने

लगा। वैज्ञानिक यन्त्रो की सहायता से पिछडे हुए देश उन्नत होने लगे प्रगति के पथ पर बढने लगे। नये-नये ग्रामो व नगरो की नये ढंग से रचना होने लगी। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याएँ एक-एक करके सुलझने-सी लगी और ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि इस धरती पर से सभी बुराइया व दुर्बलताएँ समाप्त-प्राय. हो जाएगी। अब मानवता उछल कूद के साथ सचरण-विचरण करती रहेगी। इस प्रकार मानव प्रगति के पख लगाकर आनन्द के उस अनन्त गगन मे उडाने भरने के लिए समुद्यत हो गया।

पर, उसे क्या पता था कि बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ होते ही वैज्ञानिकयन्त्र, जिन पर भविष्य के सुनहरे स्वप्न-महल खडे किये गये थे, मानव के लिए दारुण शोषण और उत्पीडन के कारण भूत बन जायेंगे। लोभ की प्रबल भावना के आँधी तूफान से उद्योगपतियो व पूँजीपतियो के मस्तिष्क विकृत होने लगे। अमीरी और गरीबी के बीच की दरार चौडी होने लगी। देश की सम्पत्ति कुछ विशिष्ट व्यक्तियो के हाथो मे एकत्रित होने लगी। आर्थिक विषमता और वर्गभेद का दायरा विस्तृत होने लगा। औद्योगिक वस्तु के उत्पादन के तीव्र अनुपात ने प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न कर दी। एक दूसरे के स्वार्थ टकराने लगे। छीना-झपटी होने लगी। एक दूसरो के अधिकार व सत्ता हथियाने का विचार जन्म लेने लगे। बस इसी विषम वाद के गह्वर से महायुद्ध की ज्वालाए फट पडी।

२ | आज का विश्व

•

आज विश्व का प्रत्येक राष्ट्र भयभीत है, आतकित है। वह न अपनी आन्तरिक स्थितियो से सतुष्ट है, और न अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण से ही। सभी एक दूसरे मे सशकित है। तनाव की खाई गहरी बनती जा रही है। मानवसमाज आपाद मस्तक काप-काप रहा है। जितनी विकट-सकट की स्थितियाँ वर्तमान मे उपस्थित है, उतनी अतीत मे जन समाज को सभवत देखने को भी न मिली होगी।

आज प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येकवर्ग और प्रत्येक राष्ट्र अपनी-अपनी प्रवृत्ति मे सलग्न है, और वह यही सोच रहा है कि हम जो कुछ कर रहे है, वह सब मानवजाति के उत्कर्ष के लिए ही कर रहे है। किन्तु उसकी इन प्रवृत्तियो पर किसको सतोष होगा? न जाने कब किसकी मानसिक ज्वाला भडक उठे और कब मानव समाज उसमे पतगे की तरह भस्म हो जाएगा। विश्व को एकबार नही, किन्तु दो-दो बार महायुद्ध के ऐसे भयकर आघात लगे है जिनसे वह कराह उठा। अब तक भी वह पूर्णतया सभल नही सका है और तीसरे महायुद्ध की सहारक चर्चाएँ चल रही है। यदि तीसरा युद्ध प्रारम्भ हो गया तो मानव समाज का अस्तित्व अक्षुण्ण रहेगा या नही, यह आशका प्रत्येक व्यक्ति के दिल व दिमाग को अशांत व उद्‌विग्न बनाये हुए है। इसी आशका से पीडित होकर विश्वव्यापी शान्ति की पुकार चारो ओर से सुनाई पडने लगी है। कोई भी राष्ट्र ऐसा न होगा जो शान्ति न चाहता हो। शान्ति मानव के मन की उत्कट अभिलाषा है और वह प्रत्येक युग की एक विशिष्ट

कामना रही है, तथा उसके लिए कुछ न कुछ प्रयत्न भी जारी रहे है। किन्तु मानव को इस प्रयत्न मे कितनी सफलता प्राप्त हुई यह तो इतिहास के पृष्ठो से ही जाना जा सकता है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् विश्व शान्ति की स्थापना के लिए लम्बे-चौडे आयोजन किए गए, पर उसका परिणाम द्वितीय महायुद्ध के रूप मे सामने आया, जो पूर्व की अपेक्षा अधिक ही भयकर था। अत आज शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न करने से पहले इस बात का अनुसधान अपेक्षित है कि किन कारणो से अशान्ति का प्रादुर्भाव होता है? उसके मूल मे कौन-से ऐसे विषैले तत्वो की प्रधानता है, जिससे बार-बार मानवसमाज को ये दुर्दिन देखने पडते है? जब तक अशान्ति के बीजो का अन्वेषण और मूलोच्छेदन नही किया जाएगा तब तक शान्ति के लिए किए जाने वाले तमाम बाह्य प्रयत्न निष्फल होगे।

एक युग था, जब मानवभौतिक शक्तियो से इतना अधिक परिचित न था और आवश्यक वस्तु के अभाव मे इधर-उधर भटकता था। एक दूसरे पर आक्रमण करता और आवश्यक अन्न-धन के परिपूर्त्यर्थ सघर्ष करता था। किन्तु इस विज्ञान के युग मे सघर्ष का उक्त कारण मानव समाज के लिए लागू नही होता। क्योकि विज्ञान ने प्राकृतिक शक्तियो के असीम भण्डार खोल दिए है। आज मानव इतनी साधन-सामग्रियो का उत्पादन कर सकता है, कि वह अपनी पूर्ति के अतिरिक्त अन्य कइयो की आवश्यकताएँ पूर्ण कर सकता है। उसे भेडिये की तरह दूसरे पर गुर्राने की आवश्यकता नही, और न किसी का खून बहाने की ही आवश्यकता है।

किन्तु यह एक दु ख का विषय है कि मानव प्राकृतिक-शक्तियो का, जो जीवन मे सहायक है, उपयोग समाज निर्माण मे नही, किंतु विनाश मे कर रहा है। जो पारमाणविक-शक्ति धरती को स्वर्ग बनाने का वरदान लेकर समुपस्थित हुई, आज उसका उपयोग जन सहार मे करके उसे अभिशाप के रूप मे परिवर्तित किया जा रहा है। आज अधिकाश शक्तियो का उपयोग मानव-कल्याण के स्थान पर मानव-विनाश के लिए हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को अधिकाधिक निर्मल एव मैत्रीपूर्ण बनाने के लिए जो सूचना प्रसारण के वैज्ञानिक साधन हैं—यन्त्र है, उनका उपयोग द्वेप, घृणा अवि-

श्वास एव अनैतिकता के प्रचार-प्रसार मे अधिकाधिक किया जा रहा है। यह मानव-मस्तिष्क की दुर्वलता व भटकन नही है तो क्या है! आज विज्ञान ने अपने अभूतपूर्व आविष्कारो द्वारा विश्व को वहुत छोटा वना दिया है। कोई भी क्रिया-प्रतिक्रिया किसी भी भौगोलिक सीमा मे क्यो न हो, वह क्षणभर मे विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लेगी, क्योकि सारा विश्व ही एकमेक वन चुका है। यदि दो छोटे राष्ट्र परस्पर युद्ध करते है, तो उसका प्रभाव उन्ही तक सीमित नही रहता। वडे-बडे शक्तिशाली व छोटे राष्ट्र भी उससे प्रभावित हो जाते हैं और जव ये राष्ट्र उसमे भाग लेने के लिए मैदान मे कूद पडते है तो सपूर्ण मानवजाति को युद्धाग्नि मे झुलसना पडता है।

ॐ

३ | विश्वशान्ति का सुनहरा स्वप्न

आज विश्वशान्ति के सुनहरे स्वप्न को साकार करने के लिए प्रत्येक विचारशील मनुष्य उत्सुक है। किन्तु भौतिकविज्ञान की अपरिमित शक्तियो का दुरुपयोग होते देखकर क्या यह आशा बँधती है कि मानव समाज का यह सुनहरा स्वप्न कभी पूर्ण होगा ? एक दिन विश्व के वरिष्ठ राजनीतिज्ञो व नेताओ ने बडे गौरव के साथ कहा था कि – "प्रथम महायुद्ध इसलिए लडा गया कि उसके द्वारा विश्व मे लोकतन्त्रात्मक पद्धति सुरक्षित हो सके, और विश्वव्यापी स्थायी शान्ति स्थापित हो सके। इसी लक्ष्यबिन्दु को लेकर प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अमेरिका के प्रधान डा० बुडरो विल्सन के सकेत पर 'लीग आफ नेशन्स' की स्थापना की गई। ससार की विभिन्न जातियो मे शान्ति स्थापित करना, युद्ध को रोकना और मानवजाति के कल्याण के लिए सत्प्रयत्न करना उसका उद्देश्य था। किन्तु ससार के भाग्य की यह विचित्र विडम्बना ही थी कि 'लीग ऑफ नेशन्स' अपने क्षेत्र मे अधिक सफलता सम्पादन न कर सकी। उसे द्वितीय महायुद्ध अपनी आँखो से निहारना पडा। इस द्वितीय महायुद्ध के करुणाजनक जनसहार ने एक बार पुन विश्व के राजनयिको व शान्तिप्रेमियो का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित किया। युद्ध द्वारा विश्वशान्ति सम्भव नही, अत युद्धो की सदा के लिए परिसमाप्ति होजाए, इसके लिए विश्व के बडे-बडे राष्ट्रो को एक राष्ट्रसघ के सगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई। परिणामत २४ अक्टूबर १९४५ को इसकी नीव डाली गई। सयुक्त राष्ट्रसघ का मूल उद्देश्य विश्वशान्ति और विश्वसुरक्षा है। उसके समस्त

प्रयत्न इसी की पूर्ति के लिए है। सघ चाहता है कि समस्त राष्ट्रो मे मैत्री रहे और कोई भी राष्ट्र अपने बल का दुरुपयोग कर निर्बल राष्ट्रो की स्वाधीनता मे बाधक न बने। परिस्थितिवश यदि मतभेद भी पैदा हो जाए तो उसे युद्ध द्वारा न निपटाकर आपसी वार्तालाप या पचायती समाधान द्वारा उसका हल किया जाए। इसका दूसरा उद्देश्य यह भी है कि विभिन्न राष्ट्रो की आर्थिक सामाजिक या सास्कृतिक समस्याएँ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा हल हो। उन राष्ट्रो मे सुखशान्ति स्थापित करने के लिए वहा की सामाजिक एव आर्थिकप्रगति मे योग देना, पिछडे हुए देशो को विश्वबैंक द्वारा ऋण देना व कल्याणकारी योजनाओ की पूर्ति मे सहयोग करना भी सघ ने अपने कर्त्तव्यो मे सम्मिलित किया है। एशिया के नवोदित राष्ट्रो को इस सस्था से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। यूनिकेफ सैन्टर खोले गये है, जहाँ चिकित्सा के अतिरिक्त, औषधि, साबुन और दूध वितरण किया जाता है। नवीन औद्योगिक एव व्यावहारिक विकास के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था है। शैक्षणिक व सास्कृतिक उत्थान विषयक कार्यो मे भी इसका योग रहा है। इसका एक उद्देश्य यह भी है कि जाति, धर्म, भाषा एव लिंग के आधार पर किसी भी जाति के प्रति भेद-भाव न रखा जाए। विश्व के समस्त मनुष्य मानव के मूलभूत अधिकारो का उपभोग करे। विचार-स्वातन्त्र्य, वाणी-स्वातन्त्र्य यथेच्छ धर्म परिपालन एव लेखन, स्वातन्त्र्य पर सबका समान अधिकार हो।

इसमे कोई शक नही 'लीग ऑफ नेशन्स' की अपेक्षा 'सयुक्त राष्ट्र सघ' अधिक तत्परता व सफलता के साथ कार्य कर रहा है। किन्तु जिस प्रधान सदुद्देश्य को लेकर इसकी स्थापना की गई थी, उसकी पूर्ति यह सघ अब तक नही कर सका है। यह ठीक है कि सयुक्तराष्ट्रसघ ने कोरिया, इण्डोनेशिया, इण्डोचीन, काश्मीर, स्वेजसमस्या और कागो आदि की समस्याओ को सुलझाने मे पर्याप्त प्रयत्न किया है और उसमे थोडी-बहुत सफलता भी सम्पादित हुई, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को मिटाने मे यह सफल न हो सका। इस दृष्टि से विश्व को अब तक निराशा ही पल्ले पडी है। सयुक्तराष्ट्रसघ की असफलता का मूल कारण ढूँढा जाए तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि स्वय सयुक्तराष्ट्रसघ के सघटन मे भी तनाव की

स्थिति चल रही है, और जब तक इसका यह तनाव दूर नही होगा तब तक वह राष्ट्रो का पारस्परिक तनाव दूर करने मे पूर्ण समर्थ नही हो सकेगा।

'सयुक्त राष्ट्र सघ' की स्थापना को लगभग इक्कीस वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है। फिर भी ससार की स्थिति मे कोई विशेष परिवर्तन परिलक्षित नही हो रहा है। बल्कि यो कहना चाहिए कि पूर्व की अपेक्षा विश्व की स्थिति अधिक विषम बनी है और बनती ही जा रही है। विश्व के रङ्गमञ्च पर रङ्गभेद, शोषण, उत्पीडन-का कुचक्र अब भी चल रहा है। सर्वत्र अशान्ति की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो रही है। उसमे सामान्य राष्ट्रो से लेकर बडे-बडे राष्ट्र तक धाय-धाय करके जल रहे है। शान्ति की कोई भी दिशा नही सूझ रही है।

आज विश्व मे एक ओर शान्ति के लिए नये-नये सगठन बनाये जा रहे है, तो दूसरी ओर अनेक व्यक्ति व राष्ट्र शोषणनीति को सुदृढ बनाने के उपायो की अन्वेषणा भी किए जा रहे है। आखिर यह स्थिति कब तक बनी रहेगी ? ये परस्पर दो विरोधी प्रयास कब तक चालू रहेगे ? क्या इस सभावना को नजर से ओझल किया जा सकता है कि किसी दिन किसी बडे राष्ट्र का उन्माद बे-काबू होकर सयुक्त राष्ट्रसघ को एक ही प्रहार मे धराशायी नही कर देगा ? अत विश्व को विनाश के गर्भ मे विलोन होने से बचाना है और विश्वशान्ति के स्वप्न को साकार करना है तो शान्ति सगठन अथवा शान्ति सम्मेलनो के आयोजन मात्र से काम नही चलेगा, बल्कि सयुक्तराष्ट्रसघ को सर्वोपरि सत्तासम्पन्न सगठन बनाना होगा। आज उस पर कतिपय बडे राष्ट्रो का जो आधिपत्य है, उसे दूर करना होगा—उनके 'वीटो' के अधिकार को सीमित करना होगा और ससार के समस्त राष्ट्रो को उसकी छत्रछाया मे आने को बाधित करना होगा। आज स्थिति यह है कि उक्त सघ बडे राष्ट्रो के हाथो का खिलौनामात्र है। सघ के निर्णय को वे प्रभावित करते है। जब तक जिसने चाहा उसका सदस्य रहा और जब प्रतीत हुआ कि सघ हमारी मनमानी करने मे बाधक बन रहा है तो उससे पृथक् होगया। दक्षिण अफ्रीका ने सयुक्तराष्ट्रसघ की अवहेलना की। सघ उसका क्या बिगाड सका ? सुकर्ण की अध्यक्षता मे चीन से प्रभावित

होकर इण्डोनेशिया ने सयुक्तराष्ट्रसघ की सदस्यता त्याग दी। चीन उसका सदस्य ही नही है। यह सब सघ की निर्बलता का ही द्योतक है। इस परिस्थिति को दूर कर सघ को अखिल विश्व का सशक्त सगठन बनाने का प्रयत्न करना होगा। साथ ही मानवता के मूल सिद्धान्तो को जीवन मे व्यावहारिक रूप देना होगा और शान्ति के राज पथ पर विघ्न की चट्टाने बनकर खडे रहनेवाले विरोधी तत्त्वो को पृथक् करना होगा।

४ | नैतिकता का सूर्योदय

नैतिकता मानवीय जीवन का शृगार है। शान्ति के सुराज मे विहरण करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र को अनैतिकता के गह्वर से ऊपर उठकर नैतिकता का दिव्यप्रकाश प्राप्त करना होगा। इसके अभाव मे कोई भी आदर्श पनप नही सकता। यदि नैतिकता के बिना किसी आदर्श की परिस्थापना कर दी गई तो वह एक दिन उसी प्रकार धराशायी हो जाएगा जैसे बारिस मे बालू की दीवार। वह अधिक समय तक स्थिर नही रह सकेगा। नैतिकता के स्तभ पर मानवीयजीवन के उच्चादर्शों की छत टिकी हुई है, अत नैतिकता के उत्कर्ष मे ही विश्वशान्ति या विश्व कल्याण सभवित है। आज नैतिकता का कोष खाली होता जारहा है। उसे समृद्ध बनाना है। प्रो० तची ने एक बार कहा था—"आज का सकट वास्तव मे नैतिक-सकट है। लोग कहते कुछ है और करते कुछ। यह व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो प्रकार के जीवन मे समान रूप से सत्य है। व्यक्तिगत एव सामाजिक नैतिकता मे भेद करने की प्रवृत्ति ही इस बात का प्रमाण है कि जरूर हमारी नैतिकता मे कोई न कोई दोष है। सही माने मे वात यह है कि नैतिकता एक ही हो, वह चाहे व्यक्तिगत क्षेत्र मे हो, या सामाजिक क्षेत्र मे। उसका रूप दोनो जगह समान ही होना चाहिये।" प्रो० तची का कथन वास्तविकता से परे नही है। आज अनैतिकता का बाजार काफी गरम है। सामान्य जनसमाज के जीवन मे तो इसका अखण्ड राज्य है ही, किन्तु राजनैतिक क्षेत्र मे भी इसके चरण अगद के चरणो की तरह जम चुके है। इसी अनैतिकता के फलस्वरूप

दिनानुदिन अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण विषाक्त बनता जा रहा है। आज एक ओर सयुक्तराष्ट्रसघ और सुरक्षा परिपदो की सदस्यता स्वीकार की जाती है, दूसरी तरफ उनकी धारा के खिलाफ षड्यन्त्र रचे जाते है। एक ओर शान्ति-सम्मेलनो की धूम मचाई जाती है, दूसरी तरफ अणु-आयुधो के अम्बार खडे कर छिपे-छिपे युद्ध की तैयारियां की जाती है। एक ओर अणुपरीक्षणो की सन्धि पर हस्ताक्षर किये जाते है, दूसरी तरफ अभ्यास के बहाने अणुपरीक्षण की घुडदौड चालू है। यह सब क्या नाटक है? यदि गभीरता से चिन्तन करेगे तो यह अनैतिकता का ही पाप है। देश, समाज व राष्ट्र को डुबाने का एक तरीका है। इस द्विविध प्रवृत्ति के कारण ही आज मानव समाज के प्राण प्रतिपल युद्ध की आशका से काप रहे है।

आज नैतिकता के अभाव से ही अहिसा को व्यावहारिक रूप देने मे मानव सफल नही हो पारहा है। उसमे साहस नही होता। वह इस आशका से आशकित रहता है कि न जाने अहिसा के प्रयोग से हम कामयाव हो सकेगे या नही? यदि नैतिकता का सम्बल उसके पास पर्याप्त परिमाण मे विद्यमान है तो उसे कही भी, किसी भी स्थिति मे परास्त होने की आवश्यकता नही। कुछ विचारको का ऐसा भी मन्तव्य है कि "अहिसा से सब कुछ हो सकता है, पर अहिसा का ऐसा विकास मानव समाज मे हो सके तब न?" इस के उत्तर मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि आज हिसा के विकास के लिए सभी देश जितना श्रम, धन व्यय और दोड धूप कर रहे है, उसका एक तिहाई भाग भी यदि अहिसा के विकास लिए किया जाए तो अवश्य ही अहिसा इच्छित वरदान प्रदान कर सकती है। पर इसके लिए भी नैतिकवल अपेक्षित होगा।

नैतिकता के अभाव मे मानव पशु की भाति आचरण कर रहा है। आज हमारे देश मे अनैतिकता का साम्राज्य है, स्वतत्र भारत मे भौतिक दृष्टि से चाहे कितनी उन्नति ही हो रही हो, नित्य नवीन कारखानो, उद्योगो, वाँधो का निर्माण हो रहा हो, पर नैतिकता के विना ये सारी प्रगतियां एक प्रकार-सी व्यर्थ सिद्ध होने जा रही है। जीवन मे नैतिकता का भी कोई मूल्य है, जब तक इसे नही परखेंगे, और उसे नही अपनाएँगे—तब तक ये बाहर की टीमटाम जीवन के

विकास का बदले ह्रास करने वाली ही सिद्ध होगी। अत आवश्यकता है जीवन मे नैतिकबल का विकास करने की।

गाँधी जी नैतिकता को बहुत बडी शक्ति मानते थे। तभी तो उन्होने हिंसा रूप अनैतिकता का परित्याग कर अहिंसा रूप नैतिकता का प्रश्रय ग्रहण किया था और उसी के जरिये सत्ता-परिवर्तन जैसे असभव प्रतीत होने वाले कार्य को भी सभव कर दिखाया था। यदि आज विश्व को स्थायी शाति प्रदान करनी है तो सर्वप्रथम विश्व की जनता मे नैतिक भावना जाग्रत करनी होगी और प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन मे एकरूपता लानी होगी। सामाजिक और वैयक्तिकजीवन के जो अलग अलग मुखोटे हैं, उन्हे उतार फेकना होगा। कथनी और करणी मे मेल करना होगा। आज हम ससार मे विभिन्न प्रकार की विषम समस्याएँ देख रहे है। वे सब अनैतिकता की ही लाडली पुत्रियाँ है। ये तभी दूर हो सकेगी जब हम अनैतिकतारूप जननी को सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र से दूर भगा देगे। अगर ये अपना पैर पसारा करके जमी रही तो एकदिन एक साथ कई राष्ट्र तबाह हो जायेगे। इसी नैतिकता पर बल देते हुए श्री किशोरलाल मशरूवाला ने, जो गाधीवाद के प्रौढ विचारक थे कहा—'आर्थिक और राजनीतिक ध्येय की तरह ही नैतिकध्येय भी बहुत बडा महत्व रखता है। इसके विपरीत यदि दोनो मे से किसी एक को ही पसन्द करना हो, तो नैतिकध्येय को विशेष महत्त्व का मानना चाहिए। यदि इसकी अवगणना करने का जरा भी प्रयत्न किया गया तो उससे भौतिक ध्येय भी सिद्ध न हो सकेगा और यदि हुआ मालूम भी पडेगा, तो जिन लोगो के लिए वह प्रयत्न किया गया है, उन्हे वह शान्ति और समृद्धि नही दे सकेगा। हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि गाधी जी नीति का आग्रह रखते थे, लेकिन हमने उस आग्रह की अवगणना की, इसलिए स्वतत्रता मिल जाने पर भी उससे जो शान्ति और समृद्धि मिलनी चाहिए थी वह नही मिल पायी। साम्यवाद की स्थापना हो जाने के बाद भी यही स्थिति होगी।[1]"

---

१. गाधी और विश्व शान्ति, पृ० २८ में उद्धृत।

तात्पर्य यह है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को शुद्ध बनाने के लिए अनैतिकता का निराकरण आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। क्योकि इसके द्वारा विश्व मे भय, अधिकार-लिप्सा स्वार्थ, घृणा, तनाव आदि अनेक बुराइयो का जो प्रसार हो रहा है, वह नैतिकता के द्वारा ही बन्द किया जा सकता है। अत विश्व-कल्याण के लिए यह अपेक्षित है कि जन-जन के अन्तर्मानस मे नैतिकता का नव-सूर्योदय हो।

५ | दृष्टि का मोड़

●

किसी नीतिकार की यह उक्ति यथार्थ है—"यादृशीदृष्टिस्तादृशी सृष्टि :" अर्थात् व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है वैसी ही सारी सृष्टि उसे नजर आती है। जब तक दृष्टि नही बदलती तब तक उसकी सृष्टि नही बदल सकती। अत आवश्यकता है दृष्टि बदलने की। आज विज्ञान ने ससार को विराट् शक्तिया प्रदान की है, जिन से महाविनाशकारी अस्त्र-शस्त्रो का निर्माण हो रहा है। अणु और उद्जनबम जैसे प्रलयकारी अस्त्रो का निर्माण हो चुका है। और कुछ बडे शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र अत्यन्त तीव्रगति से अपने शस्त्रास्त्रो मे वृद्धि कर रहे है। अमेरिका और रूस ने तो अपने यहाँ अस्त्रो के अम्बार ही लगा रखे है, क्योकि दोनो के पास पर्याप्त साधन है और दोनो मे स्पर्धा चल रही है कि कौन अपने देशवासियो को अधिकतम सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करा सकता है, कौन उन्हे समृद्ध बना सकता है। इतना ही नही, आर्थिक व औद्योगिक दृष्टि से अन्य देशो को कौन अधिक सहायता-सहयोग देकर उन्हे अपने पक्ष मे मिला सकता है? इस दिशा मे इनका चिन्तन अविरल गति से चल रहा है कि हम विज्ञान मे नित-नवीन खोज करे और उस विज्ञान से अपने शत्रु राष्ट्रो को विशेष भयभीत बनाए रखे। परिणामत आज विविध दिशाओ मे, प्रयोगो तथा अन्वेषणाओ की घोर प्रतिस्पर्धा चल रही है। इन राष्ट्रो के पास आज इतनी शक्ति सग्रह हो चुकी है कि ये एक ही दिन मे विश्व का नक्शा बदल सकते है।

किन्तु अब हमे इसके विपरीत सोचना है। इसकी विपरीतता मे ही विश्व का उज्ज्वल भविष्य निहित है। जिन महान् शक्तियो का प्रयोग जन-सहारक युद्धादि मे किया जाता है, उनका उपयोग जन

कल्याण के कार्यो मे किया जाए तो निश्चय ही कुछ वर्षो मे पृथ्वी के सभी मानवो को असन, वसन व भवन आदि प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हो सकते है और एक दिन यह धरती स्वर्गीय सुखो से तुलना करने लग जाएगी। परन्तु मैं समझता हू, यह तब तक सभव नही है, जब तक कि शक्तिशाली राष्ट्र तथा व्यक्ति अपनी दृष्टि को न बदल डाले। यदि आज शक्ति के उन निर्माता वैज्ञानिको के मस्तिष्क मे नैतिकता की जागृति हो जाए और वे ईमानदारी व सचाई से वर्तने लग जाएँ तो अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण मे जो तनाव की स्थिति चल रही है उसमे बहुत शीघ्र ही परिवर्तन आ सकता है।

६ | आन्तरिक तनाव और युद्ध

आज के युग की जटिलतम समस्या यह है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा, अपने हित, अपनी सस्कृति आदि के सरक्षण के लिए अत्यन्त चिन्तित है। और इसके लिए हर राष्ट्र तीव्रगति से युद्ध की तैयारी कर रहा है। न जाने किस समय आत्मरक्षा के लिए शत्रु से लडना पड़े? किन्तु विश्व को यह तो विदित हो ही चुका है कि युद्ध अथवा हिंसा के रास्ते से कभी शान्ति प्राप्त नही की जा सकती। विगत दो महायुद्धो के नजारे मानव देख ही चुका है। यद्यपि इसमे मानव की यह कल्पना थी कि युद्धविराम के पश्चात् विश्व मे शीघ्र ही शान्ति का साम्राज्य कायम हो जाएगा, किन्तु उस की यह चिरन्तन कल्पना, कल्पना बन कर ही रह गई। युद्ध के बाद भी मानव चारो तरफ अशान्ति, असतोष, निराशा, कुण्ठा और अभावो का जहर लिए भटकता रहा। गाधी जी एक स्थान पर लिखते है—"गत तीस वर्षों के मेरे जीवन का अनुभव मुझे यह महती आशा प्रदान करता है कि न केवल भारत, किन्तु सारे जगत् का कल्याण और भविष्य अहिंसा के अवलम्बन मे ही सुरक्षित है। अहिंसात्मक पद्धति जिस प्रकार निर्दोप है, उसी प्रकार ससार के शोषित और दलित समाज की समस्त राजनीतिक और आर्थिक समस्याओ को हल करने के लिए अति प्रभावकारी अमोघास्त्र है। मैने अपने जीवन के अति प्रारम्भिक काल से ही यह समझ लिया है कि अहिंसा केवल सत का ही गुण नही है, जिसका अभ्यास करके व्यक्ति गत आध्यात्मिक शान्ति तथा मोक्ष का सम्पादन व्यक्ति विशेप कर सकता है। मैने तो यह समझा है कि अहिंसा व्यापक जनसमाज के जीवन-यापन के

लिए निश्चित विधान है। यदि मानवसमाज मानवता के गौरव के अनुकूल जिन्दगी बसर करना चाहता है और यदि वह उस शान्ति का इच्छुक है, जिसकी ओर मनुष्य युग-युग से दौड रहा है, तो उसे जीवन मे अहिंसा को ग्रहण करना ही पडेगा।"[२]

साराश यह है कि हिंसा व युद्ध से शान्ति कभी सभव नही। हमारे यहाँ शान्ति जब भी आई तो वह हिंसा के द्वारा नही, अहिंसा के द्वारा ही आई है। आज भी हिंसा और युद्धो का अन्त हो सकता है और स्थायी शान्ति का निर्माण हो सकता है, किन्तु इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय तनाव आदि बाधक तत्त्वो को समाप्त करने की आवश्यकता है। जब तक इनका अन्त नही होगा तब तक शान्ति सम्भव नही लगती। अत प्रत्येक शान्तिप्रिय राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि वह आन्तरिक तनाव के कारणो की अन्वेषणा करे और उसे मिटाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे।

आज विश्व-रगमच पर राजनीतिक तनाव इतना गहरा हो गया है कि जिसके कारण विश्वशान्ति खतरे मे पड गई है। इस तनाव का मुख्य कारण है—पूँजीवादी और साम्यवादी खेमो का पारस्परिक मनमुटाव, आशका एव प्रतिस्पर्धा। पूँजीवाद तथा साम्यवाद दोनो अपने अपने स्थानो पर सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक ढांचे के अनुसार विभिन्न तौर-तरीको से अपना विकास करने मे सलग्न है। यहाँ तक तो बात ठीक ही है, इससे कोई भी विचारशील व्यक्ति असहमत नही हो सकता। किन्तु जब व्यक्ति मे अहकार की भावना विशेष रूप से जाग्रत हो जाती है, अपनी सुखैषणा व स्वार्थवृत्ति से आविर्भूत विचार दूसरे व्यक्ति के मानस मे ठूँसने का आग्रह किया जाता है, अथवा जब कोई अपनी व्यवस्था एव अपनी कार्यपद्धति को ही श्रेष्ठ मानता है और दूसरो की पद्धति को गलत, अवैज्ञानिक समझने लगता है, तब दूसरे के विचारो मे एक भयकर प्रतिक्रिया होती है और वह प्रतिक्रिया ही आन्तरिक तनाव का मूल कारण है। भविष्य मे जाकर इसी प्रतिक्रिया से अतर्राष्ट्रीय तनावो का उद्भव होता है।

---

[२] गांधी और विश्व शान्ति, पृ० ६० मे उद्धृत।

—देवीदत्त शर्मा

आज रूस तथा अमेरिका के बीच शस्त्रीकरण व अणुपरीक्षणो के सम्बन्ध मे जो प्रतिस्पर्धा चल रही है, वह इसी बात का प्रतीक है। दोनो गुट गहरे अविश्वास एव भयकर प्रतिस्पर्धा से प्रताडित है। दोनो की विचारधारा व नीतियो मे भी पूर्ण विरोध है। दोनो अपनी अपनी विचारधारा को एक दूसरे पर लादना चाहते हैं। इसी प्रकार लोकतन्त्रात्मक देश भी अपना अस्तित्त्व अक्षुण्ण रखने के लिए सजग प्रहरी की तरह तने हुए है। जब तक यह विचार-भेद की स्थिति चलती रहेगी, तब तक युद्ध की सम्भावनाएँ कम होने वाली नही है।

एक दिन अमेरिका की प्रजातन्त्रीय और रूस की समाजवादी पद्धतियो के विषय मे यह अनुमान था कि वे अपनी पद्धतियो द्वारा विश्व मे सुख-शान्ति के साम्राज्य की स्थापना कर सकेगे। किन्तु आज हम देखते है कि इन्ही दोनो गुटो मे सबसे अधिक युद्ध की तैयारी चल रही है। एक तरफ जहाँ ये उत्तरोत्तर युद्ध के तीव्र शक्तिशाली आयुधो का निर्माण कर रहे है, वहाँ दूसरी तरफ वे राष्ट्रसघ, सयुक्तराष्ट्र सघ तथा शान्तिपरिषदो से भाग लेकर शान्ति-सह-अस्तित्त्व एव मैत्रीभाव की चर्चाएँ करते हुए भी दृष्टिगोचर होते है। इनकी इस दोहरी नीति का पता नही लगता। इसी दोहरी नीति के कारण निष्पक्ष और शान्ति के इच्छुक राष्ट्र आतकित है। जब तक इनका आपसी समझौता और भाईचारे का नाता विश्वरगमच पर वास्तविक रूप मे उभर कर नही आयेगा। तब तक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही आ सकता।

आज ससार को अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की स्थिति को दूर करने के उपायो पर गहराई से विचार करने के बावजूद भी निराशा ही प्रतीत हो रही है। किन्तु श्रमण भगवान् महावीर ने विश्वहित के लिए जो तीन महान् सिद्धान्त अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्तवाद के रूप मे दिये हैं, यदि इनका सभी राष्ट्र अपने जीवन मे प्रामाणिकता के साथ प्रयोग करें तो नि सकोच कहा जा सकता है कि ये तनाव प्रबल वेगवती वायु के सन्मुख बादलो की तरह तितर-बितर हो जायेगे।

अहिंसा—सहयोग-सहअस्तित्त्व की भावना तथा सब को समान रूप मे जीने का अधिकार प्रदान करेगी।

अपरिग्रह—आवश्यकता से अधिक सग्रह न करने तथा अधूरे सुख-सुविधा प्राप्त व्यक्तियो एव राष्ट्रो की सहायता और उन्नति के लिए प्रवहमान स्रोत बनेगा ।

अनेकान्त—समन्वय की दृष्टि के साथ एक दूसरे के विचार दर्शन को जाचने-परखने का अवकाश देगा । इससे विभिन्न शासनपद्धतियो के कारण होने वाला मघर्ष दूर होगा ।

उक्त तीन सिद्धान्त एक ऐसी पावन त्रिवेणी है जिसमे अवगाहन करने से युग युगातर से अतर मे उठने वाले आक्षेप, स्पर्धा, ईर्ष्या द्वेष के शोले बुझ जायेंगे और सभी राष्ट्र परस्पर भ्रातृभाव का अनुभव करते हुए सुखद जीवन यापन करने लगेंगे । राष्ट्र पिता गाधी जी ने भी विश्व के तनाव को दूर करने के लिए कुछ प्रयोग बताए हैं, जो मानवता के सिद्धान्त पर आवृत हैं । वे ये है[3]—

*उत्पादन का विकेन्द्रीकरण और क्षेत्रीय आत्म-निर्भरता ।

*मम्पत्ति और निर्धनता की पराकोटियो का निराकरण ।

*मर्वधर्मो के प्रति समान आदर भाव ।

*समाज मे ऊँच और नीच के भेद का अन्त ।

*मानवता की भलाई के लिए मम्पत्ति का मरक्षत्व ।

*जीवन के नैतिक-स्तर का विकाम ।

*भौतिक-जीवन की विलामिता के स्तर को गिराना ।

*शान्ति और मुरक्षा के लिए कम मे कम पशुबल का प्रयोग ।

*प्रतीकार और आक्रमण की भावना का मर्वथा अन्त ।

उक्त सूत्र अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने मे पूर्ण कामयाब हो सकते है । कोई भी ममाज या देश बिना कठिनाई का अनुभव किये ही इनका पालन कर मकता है । मेरे विचार मे भारत को ही इम विषय मे अगवानी करनी होगी । उसके पश्चात् उनके मित्र राष्ट्र रूस आदि को ।

यह तो प्रसन्नता की बात है कि हाल ही मे भारत तथा अन्य राष्ट्रो के शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की वार्ता के मत्प्रयत्न मे

---

३ गांधी और विश्वशांति, पृ० ५६

रूस तथा अमेरिका की कठोर नीति मे कुछ नरमी आई है। शीत-युद्ध में भी कमी हुई है और अब यह आशा व्यक्त की जाती है कि दोनो राष्ट्र निकट भविष्य मे एक दूसरे के बहुत समीप आजायेंगे। यदि प्रत्येक राष्ट्र के नेतागण कुछ वर्षों तक अपना सत्प्रयत्न इसी प्रकार जारी रखेंगे तो निश्चय ही अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं सुलझ जाएंगी। युद्ध के गडगड़ाते बादल छिन्न-भिन्न होकर बिखर जायेंगे और मानव पूर्ण शान्ति की सांस ले सकेंगे।

७ | अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता

•

आज अन्तर्राष्ट्रीय भावना को विकसित करने के लिए किसी एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था-पद्धति को कायम करना अनिवार्य है, जिसमे राष्ट्रो का पारस्परिक सम्बन्ध सद्भाव एव मैत्री मे सयोजित बना रह सके। इसके लिए बहुत से चिन्तको का यह चिन्तन चल रहा है कि विचारो के आदान-प्रदान के लिए यदि किसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का निर्माण हो जाए तो अत्युत्तम होगा। इससे विचारो के आदान-प्रदान मे सुविधा तो होगी ही, साथ ही विश्व मे मैत्री-भाव और शान्ति की प्रतिष्ठा भी हो सकेगी। एक बार गालसवर्दी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बहुत सुन्दर बात कही थी कि — "राष्ट्रो मे परस्पर विचार-विनिमयार्थ सभी देशो के शिक्षित लोगो के लिए एक सामान्य भाषा की आवश्यकता है, इसीसे ही विश्व-शान्ति की स्थापना होगी और सच्ची सभ्यता का आविर्भाव होगा। आज के युग मे, जबकि कोई भी वक्ता विश्वशान्ति का उल्लेख किये बिना अपना स्थान नही बना सकता, मै इसी प्रतीक्षा मे हू कि यह विश्व-शान्ति सस्थापको की भावना के अनुकूल हो और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का निर्माण हो। जब सभी देशो के शिक्षित लोग सामान्य भाषा द्वारा परस्पर विचार-विनिमय कर सकेगे तभी शान्तिदेवी विश्व के रगमच पर पदार्पण करेगी।" उक्त विचार के प्रकाश मे चिन्तन करते है तो सबसे पहले हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि हम किस भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बना सकते है, और कौन-सी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने की योग्यता रखती है? आज अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता सभी महसूस करते

हैं। किन्तु उसके निर्माण के लिए कितनो के कदम आगे बढ सकेंगे, यह चिन्तनीय है। इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ विद्वानो ने कुछ स्वतन्त्र भाषाओ का निर्माण भी किया है, साथ ही उसका प्रचार-प्रसार भी। किन्तु वे भाषाएँ किसी सीमा विशेष मे ही आकर अवरुद्ध हो गई, आगे न बढ सकी। फिर भी उनके सतप्रयत्न इस क्षेत्र मे जारी है। आशा है वे भविष्य मे सफल हो सकेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने का गौरव वही भाषा प्राप्त कर सकती है जो अधिक से अधिक समृद्ध, विकसित और मानवीय विचारो को प्रकट करने मे समर्थ हो। जो भाषा देश या प्रान्त के घेरे मे आबद्ध है, वह अधिक समय तक जीवित भी नही रह सकती, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने की तो बात ही दूर। अन्तर्राष्टीय भाषा वही हो सकती है, जिसे अधिक से अधिक राष्ट्रो के निवासी जानते और बोल सकते हो, और जिसके माध्यम से सरलता से विचारो का आदान-प्रदान किया जा सके। विज्ञान, कला, व्यापार आदि के क्षेत्र मे भी जिसका पूर्ण उपयोग हो सके।

दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि सभी देशो के मान्य विद्वान एक स्थान पर एकत्रित हो और विविध भाषाओ से तत्व निकाल कर एक मिलीजुली विशिष्ट भाषा का निर्माण करे। उसका व्याकरण सरल एव सुबोध हो। सभी जन सरलता से उसका अध्ययन कर सकें। ऐसी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप मे सर्वानुमति से निर्धारित किया जाए। इससे विश्व की समस्या के समाधान मे पर्याप्त योग मिलेगा, और शान्ति का प्रचार-प्रसार भी होगा।

८ । युद्ध और अहिंसक का कर्त्तव्य

•

कुछ समय पूर्व एकबार मार्शलटीटो ने कहा था—"आखिर आज के जमाने मे राष्ट्र युद्ध मे क्यो उतरेंगे ? किन प्रश्नो को लेकर ? किस हेतु को लेकर लोगो का संहार हो ? हिटलर को तो अपने जमाने मे सारे विश्व पर विजय प्राप्त करने का भूत सवार था। पर आज तो कोई समझदार आदमी ऐसी कल्पना भी नही कर सकता। वह जमाना गया, जब आर्थिक हेतु को लेकर लडाईयाँ लडी जाती थी। अब तो उपनिवेशवाद के दिन भी लद गये। बस, क्या रह गया ? समाज व्यवस्था मे भेद ? पर क्या लडकर, जबर्दस्ती मे हम किसी को अपनी पसन्दगी की समाजव्यवस्था लाने से रोक सकते है ? इसके लिए लडाई लडना बहुत मँहगा पड जाएगा।" उक्त कथन उन राष्ट्रो के लिए एक महान् सन्देश है जो आणविक अस्त्रो के अम्बार लगाकर युद्ध के मैदान मे कूदना चाहते हैं।

वस्तुत युद्ध मानव की जघन्यतमवृत्ति का एक रूप है। इस पैशाचिक-लीला मे अब तक किसी को भी शान्ति नसीब न हो सकी। हिरोशिमा और नागासाकी के वीभत्स व दर्दनाक विनाश की कहानियाँ किसने नही सुनी, और सुनकर किसका दिल नही पसीजा ? हाईड्रोजनबम के विष मे प्रभावित तेईस मछुओ के घट-घटकर प्राण देने की दर्दनाक कहानी मे किस मानव का अन्तस्तल नही डोल उठा ? पर यह सब कुछ होने और देखने के बावजूद शक्ति-लोलुप राष्ट्रो की आखे नही खुली और अब भी उनकी आस्था हिंसा और युद्ध पर ही केन्द्रित है। यदि समय रहते युद्ध की वृत्ति पर कडा नियत्रण न किया गया तथा उसमे दीर्घ-दृष्टि का उपयोग

न किया गया तो, "जिस बीसवी शताब्दी ने भौतिकविज्ञान की चमत्कारी शक्तियो को देखा, वही मानवता की चिता धधकती देखेगी और इस पृथ्वी को अपने सामने महाश्मशान के रूप में परिणत होती देखेगी।" यह उन लोगो के अन्तर हृदय का स्वर है, जिन्होने युद्ध की कटुता प्रत्यक्ष अपनी आखो से निहार ली है। आज भी हम हिरोशिमा और नागासाकी के ध्वस का स्मरण करते है तो हृदय मे कँपकँपी पैदा हो जाती है। सन् १६४५ मे ६ अगस्त के दिन जापान के प्रसिद्ध नगर हिरोशिमा पर अणुबम गिराया गया। उस समय नगर और वहाँ की जनता की क्या दशा हुई? उस नगर मे घायल, पर मौत के मुख से बचे हुए एक डाक्टर का आखो देखा वर्णन पढिए—

"... . बम गिरने के बाद हमारे दु खो की कथा पूछिये ही नही। जिन्हे मौत चाट गई वे सब तो भाग्यशाली सिद्ध हुए, किन्तु जो बच गये उनकी दशा बहुत ही बुरी थी ।

अस्पताल के सामने घायलो, जले हुओ, अधमरो और मरे हुओ की कतारे लगी थी। अपने सगे-सम्बन्धियो को खोजने निकले लोग इन कतारो को टटोलते, इधर से उधर ठोकरे खाते, पागलो की-सी हालत मे घूम रहे थे और कुछ ऐसे थे कि जिनके दिमाग ठिकाने ही नही रहे थे ।

दिल दहलाने वाले और छाती फाडडालने वाले हा-हाकार से हिरोशिमा का आकाश भर गया था।"

× × ×

"उस दिन जो बच्चे घर से पाठशाला जाने निकले थे, वे रास्ते मे ही खतम हो गये! पाठशाला का आँगन घायलो और मृत बालको से इस कदर छाया पडा था, मानो मसलकर फेंके हुए फूलो की पँखडियाँ हो।"

"कुछ तुरन्त मर गये, कुछ भुनकर और बेहोश होकर पडे रह गए। कुछ, जिनका सारा शरीर झुलस चुका था, होश मे थे, पर मौत ने उन्हे अपङ्ग बना दिया था। ये सब वही ढेर होकर पडे रहे। जाते कहाँ? दो दिन बाद जब मौत आकर उन्हे ले गई, तभी वे छूटे। मा-बाप जिन्दा होते, तभी न वे उनकी खोज करते?"

× × ×

"जिनके हाथ-पैर दुरुस्त थे, वे एक-दूसरे की मदद करने मे लगे थे। लेकिन मदद करें किस तरह ? दवा-दारू और मरहम-पट्टी करने वाले डाक्टर और नर्स थे ही कहाँ ? दवाइया कहाँ से लाए ? दवाखाने और उनका सारा साज-सामान तो बीमारो के साथ ही धू-धू करके जल रहा था। घर-द्वार, हाट-बाजार सभी साफ हो चुके थे। नगर श्मशान बन गया था। खाने-पीने की चीजो और बरतन-भाँडो को जुटाने का सवाल मामूली नही था।"

"कुछ-कुछ निशानो के सहारे लोगो ने अपने-अपने घरो का, जगहो का पता लगाया और राख के ढेर मे से जिनकी हड्डिया मिली, उन्हे इकट्ठा करके और उन्ही को अपना सगा-सम्बन्धी मानकर उनका अन्तिम सस्कार किया।"

"आप उनसे निशानी चाहते, तो वे कहते—"उसके हाथ मे अगूठी थी। देखिए, यह रही पीली धातु की डली।" कौन मेरा, कौन तेरा ? किसने किसको अपना मानकर उसका अन्तिम सस्कार किया ? यमराज ने मेरे-तेरे के सारे भेद भुला देने के लिए ही मानो यह ताण्डव रचा हो, इस प्रकार सब एकाकार हो चुका था।"[४]

द्वितीय युद्ध से व्यथित व्यक्तियो के दिलो मे उठते हुए दुखो के शोले अभी बुझने भी नही पाए कि—अमेरिका, रूस तथा ब्रिटेन जैसे महाशक्तिशाली राष्ट्र तीसरी लडाई के लिए समुद्यत हो उठे है। उन्होने लडाई मे प्रयुक्त होने वाले बमो का निर्माण कार्य भी बडी तेजी से प्रारम्भ कर दिया है। विशेषज्ञो का अनुमान है कि द्वितीय लडाई के दिनो मे दोनो पक्षो ने मिलकर जो शक्ति लगाई और उसमे जो जान-माल की बर्बादी हुई उसमे कुल पचास लाख टन गोला-बारूद खर्च हुआ, किन्तु इस समय जो अमेरिका व रूस ने बम बनाने शुरू किए है वे तो ऐसी पैशाचिक शक्ति है कि—पचास लाख टन गोला बारूद तो केवल एक-दो बमो मे ही भरा जा सकता है। इस प्रकार की भयङ्कर शक्ति का अपार सचय उक्त राष्ट्रो ने कर रखा है। आज वे अपने मन मे भले ही इतराते हो और यह अनुभव करते हो कि—विश्व शान्ति का वरदान हमारे हाथ मे है। किन्तु युद्ध के अन्तराल मे एक ऐसी विभीषिका पनप रही है—

---

४ हमारे युग का भस्मासुर . अणुबम।

न किया गया तो, "जिस बीसवी शताब्दी ने भौतिकविज्ञान की चमत्कारी शक्तियो को देखा, वही मानवता की चिता धधकती देखेगी और इस पृथ्वी को अपने सामने महाश्मशान के रूप में परिणत होती देखेगी।" यह उन लोगो के अन्तर हृदय का स्वर है, जिन्होने युद्ध की कटुता प्रत्यक्ष अपनी आखो से निहार ली है। आज भी हम हिरोशिमा और नागासाकी के ध्वस का स्मरण करते है तो हृदय मे कँपकँपी पैदा हो जाती है। सन् १६४५ मे ६ अगस्त के दिन जापान के प्रसिद्ध नगर हिरोशिमा पर अणुबम गिराया गया। उस समय नगर और वहाँ की जनता की क्या दशा हुई? उस नगर मे घायल, पर मौत के मुख से बचे हुए एक डाक्टर का आखो देखा वर्णन पढिए—

"... बम गिरने के बाद हमारे दु खो की कथा पूछिये ही नही। जिन्हे मौत चाट गई वे सब तो भाग्यशाली सिद्ध हुए, किन्तु जो बच गये उनकी दशा बहुत ही बुरी थी. ।

अस्पताल के सामने घायलो, जले हुओ, अधमरो और मरे हुओ की कतारे लगी थी। अपने सगे-सम्बन्धियो को खोजने निकले लोग इन कतारो को टटोलते, इधर से उधर ठोकरे खाते, पागलो की-सी हालत मे घूम रहे थे और कुछ ऐसे थे कि जिनके दिमाग ठिकाने ही नही रहे थे ।

दिल दहलाने वाले और छाती फाडडालने वाले हा-हाकार से हिरोशिमा का आकाश भर गया था।"

× × ×

"उस दिन जो बच्चे घर से पाठशाला जाने निकले थे, वे रास्ते मे ही खतम हो गये! पाठशाला का आँगन घायलो और मृत बालको से इस कदर छाया पडा था, मानो मसलकर फेके हुए फूलो की पँखडियाँ हो।"

"कुछ तुरन्त मर गये, कुछ भुनकर और वेहोश होकर पडे रह गए। कुछ, जिनका सारा शरीर झुलस चुका था, होश मे थे, पर मौत ने उन्हे अपङ्ग वना दिया था। ये सव वही ढेर होकर पडे रहे। जाते कहाँ? दो दिन वाद जव मौत आकर उन्हे ले गई, तभी वे छूटे। मा-वाप जिन्दा होते, तभी न वे उनकी खोज करते?"

× × ×

"जिनके हाथ-पैर दुरुस्त थे, वे एक-दूसरे की मदद करने मे लगे थे। लेकिन मदद करे किस तरह ? दवा-दारू और मरहम-पट्टी करने वाले डाक्टर और नर्स थे ही कहाँ ? दवाइया कहाँ से लाएँ ? दवाखाने और उनका सारा साज-सामान तो बीमारो के साथ ही धू-धू करके जल रहा था। घर-द्वार, हाट-बाजार सभी साफ हो चुके थे। नगर श्मशान बन गया था। खाने-पीने की चीजो और बरतन-भाँडो को जुटाने का सवाल मामूली नही था।"

"कुछ-कुछ निशानो के सहारे लोगो ने अपने-अपने घरो का, जगहो का पता लगाया और राख के ढेर मे से जिनकी हड्डिया मिली, उन्हे इकट्ठा करके और उन्ही को अपना सगा-सम्बन्धी मानकर उनका अन्तिम सस्कार किया।"

"आप उनसे निशानी चाहते, तो वे कहते—"उसके हाथ मे अँगूठी थी। देखिए, यह रही पीली धातु की डली।" कौन मेरा, कौन तेरा ? किसने किसको अपना मानकर उसका अन्तिम सस्कार किया ? यमराज ने मेरे-तेरे के सारे भेद भुला देने के लिए ही मानो यह ताण्डव रचा हो, इस प्रकार सब एकाकार हो चुका था।"[४]

द्वितीय युद्ध से व्यथित व्यक्तियो के दिलो मे उठते हुए दु खो के शोले अभी बुझने भी नही पाए कि—अमेरिका, रूस तथा ब्रिटेन जैसे महाशक्तिशाली राष्ट्र तीसरी लडाई के लिए समुद्यत हो उठे हैं। उन्होने लडाई मे प्रयुक्त होने वाले बमो का निर्माण कार्य भी बडी तेजी से प्रारम्भ कर दिया है। विशेषज्ञो का अनुमान है कि द्वितीय लडाई के दिनो मे दोनो पक्षो ने मिलकर जो शक्ति लगाई और उससे जो जान-माल की बर्बादी हुई उसमे कुल पचास लाख टन गोला-बारूद खर्च हुआ, किन्तु इस समय जो अमेरिका व रूस ने बम बनाने शुरू किए है वे तो ऐसी पैशाचिक शक्ति है कि—पचास लाख टन गोला बारूद तो केवल एक-दो बमो मे ही भरी जा सकती है। इस प्रकार की भयङ्कर शक्ति का अपार सचय उक्त राष्ट्रो ने कर रखा है। आज वे अपने मन मे भले ही इतराते हो और यह अनुभव करते हो कि—विश्व शान्ति का वरदान हमारे हाथ मे है। किन्तु युद्ध के अन्तराल मे एक ऐसी विभीषिका पनप रही है जो

---

४ हमारे युग का भस्मासुर . अणुबम। —सुभद्रा गांधी

रात-दिन उन्हे बेचैन कर रही है। इन राकेटो और बमो के रचे गये पहाडो पर चिन्तन करने से मानवता सिहर उठती है। न जाने कब, किस व्यक्ति या यन्त्र की भूल से, असावधानी से ज्वाला फूट पड़े और भयानक नर-सहार का बीभत्स दृश्य देखना पडे।

विगत प्रथम महायुद्ध के हानि-लाभ के आँकड़े हमारे सामने हैं। "दोनो पक्षो ने मिलकर ८८ लाख ६७ हजार ५ सौ ७३ लोगो को मौत के घाट उतारा था। २ करोड ६ लाख २८ हजार ४५ लोग घायल हुए और अपङ्ग बने थे।" व्यय का अनुमान भी देखिए—"कहा जाता है कि पहली लडाई मे मनुष्य ने ३५ अरब ४४ करोड ४८ लाख पौण्ड यानी करीब ४६ अरब रुपया फूँक दिया।" और लडाई का यह पागलपन भी कैसा अजीब है? दसियो सालो की मेहनत से मनुष्य ने अलकापुरी जैसे नगर खडे किए थे। इन नगरो मे बडे-बडे महल थे, घर, कारखाने, दवाखाने, विद्यालय, महाविद्यालय, गोदाम अलग-अलग विभागो के लिए बडे-बड़े दफ्तर आदि बनाए गए थे। मनुष्य ने यह मानकर कि ये सब 'दुश्मन' के है, उन्हे चकनाचूर कर डाला। समुद्र की छाती पर तैरनेवाले आलीशान जहाजो का 'तैरता हुआ नगर' 'जलपरी' कहकर मनुष्य जिनपर अभिमान करता था, 'दुश्मन' का बताकर उनमे अपने हाथो सुरग लगाने और उस वैभव को जल-समाधि दिलाने वाले भी मनुष्य ही थे। जिन जहाजो को डुबाया गया, उनमे घायल, बीमार और अपङ्ग सैनिक भी थे और बिना माँ-बाप के अनाथ बालक तथा घर-बार खोकर दर-दर के भिखारी बने निराधार परिवार भी थे। कैसी यह भयङ्कर बर्बादी! और मनुष्य का यह कैसा पागलपन!"

लडाई खतम हुई, दोनो पक्षो ने हार-जीत का लेखा-जोखा लगाना शुरू किया। महाभारत के विषाद-योग की तरह दुःख, शोक और आँसुओ का घटाटोप विजयी और पराजितो को समान रूप से प्रभावित किए हुए था। विजय का वरण किए हुए लोगो के लिए भी विजय को पहचानना कठिन हो गया था! सबकी आखो मे आँसू और दिलो मे खून से रिसने वाले गहरे घाव थे। ससार का साधारण आदमी पुकार उठा, 'नही, अब नही! आगे कभी लडाई का नाम नही लूँगा।'"[५]

---

५. हमारे युग का भस्मासुर अणुबम। —सुभद्रा गाधी

आज के युद्धप्रिय कुटिल राजनीतिज्ञो को जरा गहराई से विचार-मन्थन करना होगा। वरना विश्व विनाश के अभिशाप से बच नही सकेगा। एक अमेरिकी पत्र ने तो यहाँ तक भविष्यवाणी की है कि "यदि पारमाणविक युद्ध प्रारभ हुआ, तो ४ से ५ करोड तक अमेरिकन घायल होगे, ८० अमेरिकी नगर ध्वस्त होगे और क्षेप्यास्त्र-अड्डे, मुख्य हवाईअड्डे और सैनिक महत्त्व के स्थलो का ६० प्रतिशत भाग बर्बाद हो जाएगा और ४० प्रतिशत अमेरिकी उद्योग मटियामेट हो जाएगा।"

दूसरी ओर रूस मे—८ से १० करोड रूसी लोग मारे जायेगे, ३ करोड लोग घायल होगे। १३० नगर ध्वस्त होगे और ७० प्रतिशत उद्योग मटियामेट हो जाएगा।"

आगे इस पत्र ने यह भी उल्लेख किया है कि इस बर्बादी के बाद अमेरिका १० वर्षो मे और रूस २५ वर्षो मे पुन आज की स्थिति मे बडी कठिनाई से पहुच सकेगा।"[६]

उक्त रोमाचक चित्रण से किसके हृदय मे विषाद की रेखा न खिच जाएगी ? युद्ध की विभीषिका सर्वत्र फैल चुकी है। ऐसी स्थिति मे प्रत्येकराष्ट्र के सभ्य नागरिको का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे पारमाणविक अस्त्रो की भयकरता का परिज्ञान करके सामान्य जनता को भी उससे परिचित करे। पर, इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि उससे जनता मे अधिक भय और उद्विग्नता की स्थिति पैदा न हो। अन्यथा जनता अपनी मन स्थिति का सतुलन नही रख सकेगी और वर्तमान की शान्ति को भी खो बैठेगी। अत विश्व नागरिक की हैसियत मे जनता को पारमाणविक विभीषिका मे बिल्कुल अनभिज्ञ न रख कर सामान्य तौर मे परिचय कराया जाए और अपने अधिकार-प्रयोग के कर्तव्य भी समझाये जाएँ। साथ ही युद्ध के विरुद्ध वातावरण पैदा करना चाहिये। जब जनता युद्ध के खिलाफ बगावत करेगी तो वहा के शासन-सूत्रधारो को भी जनता का ध्यान रहेगा और वे यह अनुभव करने लगेगे कि अब तक हमने जनता को 'शान्ति खतरे मे' कह कर मिथ्या भुलावे मे डाल रखा था, आज उसका पर्दाफाश हो चुका है।"

—विक्रमादित्य सिह

६ पारमाणविक विभीषिका, पृ० २९-३०

रात-दिन उन्हे बेचैन कर रही है। इन राकेटो और बमो के रचे गये पहाडो पर चिन्तन करने से मानवता सिहर उठती है। न जाने कब, किस व्यक्ति या यन्त्र की भूल से, असावधानी से ज्वाला फूट पड़े और भयानक नर-संहार का बीभत्स दृश्य देखना पड़े।

विगत प्रथम महायुद्ध के हानि-लाभ के आँकड़े हमारे सामने है। "दोनो पक्षो ने मिलकर ८८ लाख ६७ हजार ५ सौ ७३ लोगो को मौत के घाट उतारा था। २ करोड ६ लाख २८ हजार ४५ लोग घायल हुए और अपङ्ग बने थे।" व्यय का अनुमान भी देखिए—"कहा जाता है कि पहली लडाई मे मनुष्य ने ३५ अरब ४४ करोड ४८ लाख पौण्ड यानी करीब ४६ अरब रुपया फूँक दिया।" और लडाई का यह पागलपन भी कैसा अजीब है? दसियो सालो की मेहनत से मनुष्य ने अलकापुरी जैसे नगर खडे किए थे। इन नगरो मे बडे-बडे महल थे, घर, कारखाने, दवाखाने, विद्यालय, महाविद्यालय, गोदाम अलग-अलग विभागो के लिए बडे-बड़े दफ्तर आदि बनाए गए थे। मनुष्य ने यह मानकर कि ये सब 'दुश्मन' के है, उन्हे चकनाचूर कर डाला। समुद्र की छाती पर तैरनेवाले आलीशान जहाजो का 'तैरता हुआ नगर' 'जलपरी' कहकर मनुष्य जिनपर अभिमान करता था, 'दुश्मन' का बताकर उनमे अपने हाथो सुरग लगाने और उस वैभव को जल-समाधि दिलाने वाले भी मनुष्य ही थे। जिन जहाजो को डुबाया गया, उनमे घायल, बीमार और अपङ्ग सैनिक भी थे और बिना माँ-बाप के अनाथ बालक तथा घर-बार खोकर दर-दर के भिखारी बने निराधार परिवार भी थे। कैसी यह भयङ्कर बर्बादी! और मनुष्य का यह कैसा पागलपन!"

लडाई खतम हुई, दोनो पक्षो ने हार-जीत का लेखा-जोखा लगाना शुरू किया। महाभारत के विषाद-योग की तरह दुःख, शोक और आँसुओ का घटाटोप विजयी और पराजितो को समान रूप से प्रभावित किए हुए था। विजय का वरण किए हुए लोगो के लिए भी विजय को पहचानना कठिन हो गया था! सबकी आखो मे आँसू और दिलो मे खून से रिसने वाले गहरे घाव थे। ससार का साधारण आदमी पुकार उठा, 'नही, अब नही! आगे कभी लडाई का नाम नही लूँगा।'"[५]

---

५ हमारे युग का भस्मासुर अणुबम। —सुभद्रा गाधी

आज के युद्धप्रिय कुटिल राजनीतिज्ञो को जरा गहराई से विचार-मन्थन करना होगा। वरना विश्व विनाश के अभिशाप से बच नही सकेगा। एक अमेरिकी पत्र ने तो यहाँ तक भविष्यवाणी की है कि "यदि पारमाणविक युद्ध प्रारभ हुआ, तो ४ से ५ करोड़ तक अमेरिकन घायल होगे, ८० अमेरिकी नगर ध्वस्त होगे और क्षेप्यास्त्र-अड्डे, मुख्य हवाईअड्डे और सैनिक महत्त्व के स्थलो का ६० प्रतिशत भाग बर्बाद हो जाएगा और ४० प्रतिशत अमेरिकी उद्योग मटियामेट हो जाएगा।"

दूसरी ओर रूस मे—८ से १० करोड रूसी लोग मारे जायेगे, ३ करोड़ लोग घायल होगे। १३० नगर ध्वस्त होगे और ७० प्रतिशत उद्योग मटियामेट हो जाएगा।"

आगे इस पत्र ने यह भी उल्लेख किया है कि इस बर्बादी के बाद अमेरिका १० वर्षो मे और रूस २५ वर्षो मे पुन आज की स्थिति मे बडी कठिनाई से पहुच सकेगा।"[६]

उक्त रोमाचक चित्रण से किसके हृदय मे विषाद की रेखा न खिच जाएगी ? युद्ध की विभीषिका सर्वत्र फैल चुकी है। ऐसी स्थिति मे प्रत्येकराष्ट्र के सभ्य नागरिको का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे पारमाणविक अस्त्रो की भयकरता का परिज्ञान करके सामान्य जनता को भी उससे परिचित करें। पर, इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि उससे जनता मे अधिक भय और उद्विग्नता की स्थिति पैदा न हो। अन्यथा जनता अपनी मन स्थिति का सतुलन नही रख सकेगी और वर्तमान की शान्ति को भी खो बैठेगी। अत विश्व नागरिक की हैसियत से जनता को पारमाणविक विभीषिका मे बिल्कुल अनभिज्ञ न रख कर सामान्य तौर से परिचय कराया जाए और अपने अधिकार-प्रयोग के कर्तव्य भी समझाये जाएँ। साथ ही युद्ध के विरुद्ध वातावरण पैदा करना चाहिये। जब जनता युद्ध के खिलाफ बगावत करेगी तो वहा के शासन-सूत्रधारो को भी जनता का ध्यान रहेगा और वे यह अनुभव करने लगेगे कि अब तक हमने जनता को 'शान्ति खतरे मे' कह कर मिथ्या भुलावे मे डाल रखा था, आज उसका पर्दाफाश हो चुका है।"

---

६ पारमाणविक विभीषिका, पृ० २६-३० —विक्रमादित्य सिंह

इससे उन्हे अधिक शस्त्रास्त्र के निर्माण में बल नही मिलेगा ।

इसके लिए यह आवश्यक है कि देश के प्रत्येक स्त्री और पुरुष युद्ध व युद्ध की तैयारी को घृणा की दृष्टि से देखे और सुसगठित होकर युद्ध को निर्मूल बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। जैसा कि विश्वशान्ति सेना के एशियाक्षेत्र के मत्री श्री सिद्धराज ढड्ढा ने कहा है—"सभावित सर्वनाश से अगर दुनिया को बचाना हो तो सिवा इसके कोई चारा नही कि हर देश मे जगह जगह जन-साधारण मानवजाति के प्रति इस घोर अपराध के खिलाफ बगावत करने के लिए उठ खडे हो।" युद्ध के विरुद्ध वातावरण तैयार करने लिए हमारे यहाँ 'शान्तिआन्दोलनो' के जैसी एक सक्रिय सस्था हो, जो अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का ज्ञान स्वयं प्राप्त करे, और जनता को भी समय समय पर उसकी यथोचित जानकारी देती रहे, जिस से जनता सतर्क बनी रहे ।

उक्त सस्था दूसरा कार्य यह करे कि जिन देशो के बीच आये दिन जो गलत फहमिया फैलती है या फैलायी जाने का उपक्रम किया जाता है और जिनसे भविष्य मे बहुत हानि की सम्भावना रहती है, उन्हे निर्मूल करें ।

तीसरी बात—विश्व के प्रायः सभी देशो मे आजकल जो शिक्षा का पाठयक्रम प्रचलित है, वह अधिकतर भौतिकवाद पर ही आधा-रित है, आध्यात्मिक तथा नैतिकमूल्यो पर बहुत कम। ऐसी स्थिति मे विद्यार्थियो के मानस मे भौतिकलिप्सा का उद्भव होना स्वभाविक है, और वह भौतिकलिप्सा ही उन्हे बरबस युद्ध जैसे अनैतिक कार्यों की तरफ खीचती है। अत जीवन मे नैतिक मूल्यो के प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए विद्याकेन्द्रो मे आध्यात्मिक एव नैतिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए ।

भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य विनोबा की भाषा मे—"हम अणुअस्त्रो की सहारक शक्ति का मुकाबला तभी कर सकते है, जब अध्यात्म और विज्ञान को एक साथ जोड दिया जाए। जैसा कि आज यह सिद्ध हो चुका है कि गरीबी और अज्ञान को विज्ञान और तकनीकी ज्ञानो से दूर कर सकते हैं, वैसे ही विश्व के सहार का डर आध्यात्म की राह पर चल कर मिटा सकते है ।"

●

९ | अध्यात्मवाद का निर्झर

०

विश्वशान्ति की स्थापना मे अध्यात्मवाद अपना एक विशिष्ट एव सक्रिय-योग प्रदान कर सकता है। किन्तु आज के इस रगीले भौतिकवादी युग के मानव ने अध्यात्मवाद की सर्वथा उपेक्षा कर रखी है। वह त्याग से भोग की तरफ, अहिंसा से हिंसा की तरफ, अपरिग्रह से परिग्रह की तरफ खिचता जा रहा है। विज्ञान की प्रचुर चमत्कार पूर्ण कृतियो से पूर्ण रूप से आकृष्ट है। परिणाम स्वरूप आज भारतीय दर्शन के उस आध्यात्मिक जागरण के ऊर्ज्जस्वल पथ को उसने विस्मृत कर दिया है।

एक युग था जब भारत का चिन्तन अध्यात्मवाद से अनुप्राणित था, और उसके प्रकाश मे आत्मदर्शन की मीमासा होती थी। **'जे एग जाणइ से सव्व जाणइ'** अर्थात् एक आत्मा को जानने वाला सबको जान लेता है, भगवान महावीर के इस चिरन्तन अध्यात्मवाद के चिन्तन से भारतीय दर्शन का समस्त चिन्तन परिस्पन्दित हो रहा था।

वर्तमान मे हमे यत्र-तत्र अध्यात्मवाद के जो अमृत-कण देखने को मिल रहे हैं, वे सब भगवान महावीर तथागतबुद्ध आदि की विशिष्ट साधना-आराधना का सुफल है। क्योकि हमारे यहा अध्यात्मवादी चिन्तक समय-समय पर प्राय युगानुसारिणी भाषा मे अपने करुणारस स्नात अन्त करण से स्फुरित नूतन चिन्तन का उपहार प्रस्तुत करते रहे हैं, और जन-मानस की आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति करते रहे हैं।

अध्यात्मवाद जीवन को सही दिशा-दर्शन देता है। इतना ही नही, जड क्या है? चेतन क्या है? बन्धन क्या है? मुक्ति क्या

है ? तथा इनका पारस्परिक क्या सम्बन्ध है ? आदि आदि का भी परिज्ञान कर पाता है। अध्यात्मवाद का सम्बन्ध आत्मा से है वह विभिन्न रूप, रग, लिंग आदि के भौतिक परिवेशो मे छिपे चैतन्य का शुद्ध दर्शन कराता है, और उसमे आत्म-तुल्य अनुभूति जगाता है। वस्तुत आत्मा के निज गुण, निज धर्म, का दर्शन ही अध्यात्मवाद है । जीवन की पवित्रता, जीवन की सरलता ही अध्यात्मवाद की मूल चेतना है, प्राणभूत तत्व है। दूसरी भाषा मे आत्मस्वभाव मे रमण की जो दशा है, चैतन्य दर्शन की जो भावना है, वही आध्यात्मिकता है।

इस अध्यात्मवाद से व्यक्ति विशेष ही नही, देश, समाज राष्ट्र तथा समूची मानवजाति अपना विकास कर सकती है, क्योकि व्यक्तियो का समूह ही समाज है। अत अपने सरक्षण, सवर्द्धन व सुखो की पराकोटि तक पहुँचने के लिए अध्यात्मवाद की नितान्त अपेक्षा है।

आज का नव मानस, जो भौतिकवाद मे विशेष अस्थावान् है, वह सोचता है कि "आज का युग विज्ञान का युग है। इस वैज्ञानिक युग मे जहाँ नानाविध प्रयोगो, अन्वेषणो और आविष्कारो द्वारा भौतिक सुख समृद्धि का विकास हो रहा है, वहाँ अध्यात्मवाद जैसी शुष्क व त्यागप्रधान प्रवृत्ति कैसे विकास पा सकती है ? किस प्रकार मानवीय भावनाओ के साथ अपना मेल-मिलाप बिठा सकती है ? और आज के युग मे उसकी आवश्यकता भी तो क्या है ? यह तो केवल ऋषि-महात्मा लोगो की सुखात्मक कल्पना मात्र है ?"

किन्तु हमे यह विस्मृत नही कर देना है कि आज जिस द्रुतगति से विज्ञान फरिश्ते की भाति पख लगाकर विश्व-गगन मे उडाने भर रहा है, यदि वह गलत दिशा की तरफ चला गया तो विश्व की क्या दशा होगी ? अत विज्ञान के साथ दिशादर्शकयत्र रूप-अध्यात्मवाद को सतत साथ रखना ही होगा। आचार्य विनोवाभावे के शब्दो मे—"रफ्तार की यह शक्ति जितने जोर से बढेगी, उतना ही जोरदार दिशा दिखाने वाला यत्र होना चाहिए, वह उतना ही सक्षम होना चाहिए। बैलगाडी धीरे-धीरे जायेगी, लेकिन मोटर को, २०० मील प्रतिघटा रफ्तार की मोटर को, फौरन मोडने के लिए यंत्र नही रहेगा तो मोटर टकरायेगी और चकनाचूर हो

जाएगी। रेल का इ जन तेजी से दौड रहा है, उसे रोकना है, मोडना है, वहा यत्र नही होगा, तो इ जन गिर जाएगा। वेग-शक्ति जितनी जोरदार उतनी ही जोरदार दिशा-दर्शक शक्ति होनी चाहिए। जितना जोरदार साइन्स होगा, उतना ही जोरदार ग्राध्यात्मिक विचार होना चाहिए। अध्यात्म दिशा दिखायेगा, साइन्स रफ्तार बढाएगा, वेग बढाएगा।"

"अब दिन-ब-दिन साइन्स बढता ही रहेगा। विज्ञानशक्ति इस जमाने मे उत्तरोत्तर बढ रही है। जहाँ तक मै समभता हू, साइन्स ने इन १२ सालो मे इतनी प्रगति की है कि पहले के १२०० सालो मे नही की। जहाँ साइन्स इतना जोरदार बढा है, वहाँ दिशा दिखाने वाले यन्त्र की अत्यन्त आवश्यकता है। अध्यात्म की आवश्यकता जितनी आज है, उतनी पहले कभी नही थी।"[७]

अध्यात्मवाद आज के युग का वास्तविक द्रष्टा है। शान्ति का सर्जक है, और है क्रान्ति का जनक। यह उन ऋषियो की जीवन साधना का अर्क है, मधु है, नवनीत है, जिन्होने अपने जीवन को सयम के कटकाकीर्ण पथ मे तप-ध्यान व निदिध्यासन की कठोर साधना मे गाला था, उसका परिमार्जन किया था। उसे सजाया-सजोया था व अपने जीवन की वास्तविक मजिल प्राप्त की थी। आज इस अध्यात्मवाद को जीवन की धरती पर उतारना है। देश-देश के और राष्ट्र-राष्ट्र के प्राङ्गण मे इसे अभिगुञ्जित करना है। तथा आनेवाले भावी कष्टो के झझावातो से विश्व को बचाना है।

अध्यात्मवाद से सम्पूर्ण विश्व लाभान्वित हो सकता है। तभी तो आज हम प्रत्यक्ष देख रहे है कि विश्व की निगाह शान्ति की टोह मे भारत की ओर विशेष रूप से लगी हुई है। राम, कृष्ण, बुद्ध तथा महावीर के प्रेम-भरे सन्देशो मे न जाने क्या जादू भरा हुआ है, जिन्हे पाने के लिए पश्चिमी देश बडे उत्सुक नजर आते हैं। आज जिस प्रकार विज्ञान (साइन्स) से प्रभावित होकर भारतीय पश्चिम को साश्चर्य दृष्टि से अवलोकन करते है, वैसे ही पश्चिम अध्यात्मवादी भारत को शान्ति का अमिट-स्रोत समझकर उसकी ओर लालायित है।

---

७. प्रेरणा-प्रवाह, पृ० २६।

अध्यात्मवाद भारत की बहुत बडी विरासत है। आज विश्व के रगमच पर राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक जो मसले दिखलाई पड रहे है, और ससार को परेशान कर रहे है, यदि इसका कोई हल निकल सकता है तो वह एकमात्र अध्यात्मवाद ही है। इसके द्वारा ही राजनीतिज्ञो के मस्तिष्क बदल सकते है और विश्व मे सुख-शान्ति का सचार हो सकता है, बशर्ते कि वे अध्यात्मवाद की ओर झुके। सच तो यह है कि आज विश्व को अध्यात्मवाद की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि शान्ति के प्रसार मे राष्ट्रो के पारस्परिक सौहार्दपूर्ण मैत्रीमय सम्बन्ध की। पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि—अध्यात्मवाद के इस निर्झर मे अवगाहन करने से विश्व को शान्ति मिलेगी और अवश्य मिलेगी।

१० | विश्वशान्ति में भारत का योगदान

•

आज स्वतत्र भारत के समक्ष विविध समस्याए उलझी पडी है। उन्हे सुलझाने के लिए अनेको प्रयत्न किये गये और किये जा रहे हैं। किन्तु आज भारत के भाग्य की यह विचित्र विडम्बना ही है जो अब तक उसे जिस रूप मे सफलता प्राप्त होनी चाहिये थी, नही हो सकी। सच तो यह है कि भारत को स्वतत्रता की प्राप्ति हो जाने के बाद भी उसे स्वतत्रता के आनद की अनुभूति नही हुई। उसके समक्ष एक-पर-एक नयी-नयी समस्याएँ आती रही और वह अपना विशिष्ट रूप धारण करती गई। भारतीय सरकार स्वय इस बात का अनुभव करती है, जानती है, और उन्हे सुलझाने का अथक प्रयत्न भी करती है। किन्तु अबतक सतोषजनक-स्थिति दृष्टिगत नही होरही है। कतिपय समस्याएँ तो ऐसी है जो आये दिन परेशान किया ही करती हैं। गोआ, पुर्तगाल की समस्या, दक्षिणी अफ्रीका मे भारतीयो के साथ अभद्र व्यवहार तथा वर्ग-भेद नीति की समस्या, श्रीलंका मे प्रवासी भारतीयो की समस्या तथा काश्मीर की समस्या, चीन और भारत का सीमाविवाद, पाक और भारत का कटुतापूर्ण सम्बन्ध! कुछ ऐसे मसले भी हैं जो अन्तर्राष्ट्रीयता की कडियो से बँधे है, व कुछ मसले राष्ट्रो के पारस्परिक सम्बन्धो पर टिके हैं। उक्त समस्याए देश को निरन्तर परेशान कर रही हैं। सयुक्तराष्ट्रसघ भी अभी तक इसका कोई व्यवहार्य हल नही निकाल सका, आशा है भविष्य मे कोई मार्ग निकल आएगा।

भारत की अपनी आन्तरिक समस्याएँ तो अनेको हैं, आर्थिक भी, सामाजिक भी। पिछडापन, गरीबी, निरक्षरता, खाद्याभाव, भाषा-विवाद और प्रान्तीय झगडे आदि कई समस्याएँ हैं जिनको हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

जो हो, पर भारत ने इन विगत कुछ वर्षो मे औद्योगिक क्षेत्र मे पर्याप्त विकास किया है। अब भारत को हर समय विदेशो पर निर्भर रहने की विशेष आवश्यकता नही है। आज भारत मे बहुत से कल-कारखाने खुल गये है जिन मे कच्चा-पक्का सभी प्रकार का माल निर्मित होता है। मोटर और विमान आदि के पुर्जे यही बनने लग गये है। जेट विमान जैसे लडाकू यान भी यहा तैयार होने लगे हैं। चितरजन का कारखाना तो प्रतिदिन एक रेल्वे इजन तैयार कर के दे देता है। फिर भी अभी बहुत-सी कमियाँ है। फिलहाल भारी मशीनो के लिए तो भारत को विदेशो का मुँह ताकना ही पड़ता है। इसी प्रकार इजीनियरिंग व चिकित्सा आदि क्षेत्रो मे भारत अब भी बहुत पीछे है। तभी तो आज भारतीय सरकार पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक-विकास पर बल प्रदान कर भारी मशीनो के निर्माण मे अधिक सलग्न परिलक्षित हो रही है।

इस औद्योगिक उन्नति की तुलना मे भारत ने शान्ति प्रियता के रूप मे जो उन्नति की है वह इससे हजारगुनी महत्व की है। आज विश्व के सभी राष्ट्रो मे भारत एक तटस्थ शान्तिप्रेमी राष्ट्र गिना गया है। यह प्रत्येक समस्या का हल शान्ति व अहिसात्मक नीति से चाहता है। इसी का यह सुफल है कि भारत ने पचशील जैसे महान् सिद्धान्त प्रदान करके विश्व पर बहुत बडा उपकार किया है। यह राष्ट्रो की परस्पर विरोधी भावनाओ मे भी सामजस्य तथा समन्वय करने वाले सिद्धान्त के रूप मे प्रमाणित हुआ है। इसी कारण आज यह जन-जन के नैतिक आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इसके प्रति विदेशी राष्ट्रो ने अपार आस्था प्रकट की है। आइजनहॉवर को तो कहना पडा—"पचशील नीति से पूर्व विश्व मे इतनी सद्भावना नही फैली थी जितनी आज फैली है।"

तटस्थ वैदेशिक नीति के कारण चिरकाल तक भारत को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो मे सदेहात्मकदृष्टि से देखा जाता रहा, किन्तु अब भारत को अधिक निकटता मे देखा जा रहा है, शान्ति का प्रहरी समझा जा रहा है। वास्तव मे भारत ने कई प्रसगो पर शान्ति के लिए उल्लेखनीय कार्य किये है। कोरिया और इण्डोचाईना के युद्ध को रोकने वाला भारत ही था। भारत के प्रयत्नो से वह महाविनाश-लीला रुकी थी। वियतनाम-समस्या पर भारत प्रारम्भ से ही शाति

और न्याय के पक्ष पर चल रहा है, यद्यपि इस कारण उसे अमेरिका जैसे सहयोगी देश का रोष भी सहना पड रहा है। पाकिस्तान युद्ध मे विजयी होने पर भी उसने शान्ति के लिए अपनी ओर से पहल की और तासकद की शान्ति वार्ता मे वह हर मूल्य पर शाति स्थापना के लिए प्रस्तुत हो गया। वर्तमान के अरब-इजरायल संघर्ष मे भी उसने शाति और न्याय के लिए यह नही देखा कि इससे कुछ मित्र व सहयोगी राष्ट्र कितने नाराज होगे ?

विश्व की घटनाएँ साक्षी है कि भारत प्रारम्भ से ही इस नीति पर चलता रहा है, जहा भारत ने कही विश्व के किसी भूभाग पर आग सुलगती देखी, वही पहुच कर यथाशक्ति बुझाने का प्रयत्न किया। भारत के प्रधानमत्री स्वर्गीय श्री नेहरू की विदेश यात्राए व शान्ति वार्ताए भी विश्व के राष्ट्रो मे शान्ति पूर्ण सह-अस्तित्त्व की भावना को विकसित करने वाली सिद्ध हुई हैं। आज उनकी उत्तराधिकारी प्रधानमत्रिणी इन्दिरा गाँधी से भी यही आशा की जाती है कि वह शान्ति के क्षेत्र मे भगवान् महावीर और महात्मा गांधी के आदर्शों को लेकर शान्ति की एक अभिनव ज्योति प्रज्ज्वलित करेगी।

११ | अहिंसा बनाम विश्वशान्ति

•

आज विध्वस और प्रलय के कगार पर खड़े विश्व को हिंसात्मक शक्तियो के आक्रमण से बचाना बहुत जरूरी है। पर किस प्रकार बचाना, यह एक समस्या है, जिस पर गभीर-चिन्तन करना अपेक्षित है। व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण, राष्ट्र द्वारा राष्ट्र के उत्पीडन तथा आर्थिक एव सामाजिक वैषम्य के कारण सभी उद्विग्न बने हुए है। दु ख, शोक व सताप से सतप्त है। कही भी शान्ति दृष्टिगत नही हो रही है। इस विषम अवस्था मे आर्यावर्त के महामानव भगवान् महावीर द्वारा प्रदत्त अहिंसा का दिव्यसन्देश ही हमारे लिए पथ-प्रदर्शक बन सकता है। यही एक मात्र ज्योति है, जिसका समुज्ज्वल और शान्त-प्रकाश युद्ध की तिमिराच्छन्न निशा के अन्धकार को दूर कर विश्व मे शाति का महाप्रकाश जगमगा सकता है।

अहिंसा चिरन्तन काल से मानवता का सरक्षण करती रही है। जब कभी ससार मे विपत्ति के बादल उमड-घुमडकर आए, शोक की बिजलिया चमकी और अन्तर मे शोक-सन्ताप की विभीषिका दहकने लगी, तभी अहिंसा शान्ति का पैगाम बनकर सन्मुख आकर खडी हो गई। उसने प्रलय के मुख मे जाते हुए विश्व को बचा लिया। यह है अहिंसादेवी की प्राणवान्शक्ति। इसी शक्ति को आज का युग उद्बुद्ध करने की आवश्यकता अनुभव कर रहा है, क्योकि अहिंसा से ही विश्व सुरक्षित रह सकता है। यह समस्त प्राणियो का विश्राम-स्थल है, क्रीडा-भूमि है, और मानवता का शृङ्गार। जैसे पृथ्वी जीवो

का आधार-आश्रय है, वैसे ही प्राणिमात्र का आधारस्थल शान्ति अर्थात् अहिंसा है। अहिंसा का सिद्धान्त-ध्रुव शाश्वत एव वैज्ञानिक है। यह सिद्धान्त जीवन के सभी पहलुओ का स्पर्श करता है। सभी क्षेत्रों मे इसका वे रोकटोक प्रवेश है। वह कभी कही असफल नही होता है। इस सम्बन्ध मे गान्धी जी के विचार प्रेक्षणीय है—"मैने जीवन के हर क्षेत्र मे अहिंसा का प्रयोग किया है, घर मे, सस्थाओ मे, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र मे, ऐसे एक भी मौके का मुझे स्मरण नही है, जहाँ अहिंसा निष्फल हुई हो। जहाँ पर कही निष्फलता देखने मे आयी, मैने उसका कारण अपनी अपूर्णता को समझा है।" गान्धी जी ने अहिंसा को साधन नही, साध्य माना है और इसी के जरिये सत्ता-परिवर्तन जैसे दुष्कर कार्य को सम्भव बना कर दिखाया है, जो तब तक युद्ध से ही सम्भव माना जाता था। उन्होने सत्याग्रह, असहयोग, सविनय आज्ञाभग आदि अहिंसा-प्रधान आन्दोलन प्रणाली का आविष्कार किया।

गान्धी जी को अहिंसा पर कितनी गहरी आस्था थी यह निम्न पक्तियाँ स्पष्ट कर रही है—"मै यह दावा नही करता कि मै अपनी पद्धति का जनक हू, पर इतना अवश्य कह सकता हू कि मै इस मत्र का द्रष्टा-मात्र हूँ। अपनी अनुभूति के द्वारा मैने प्रत्यक्ष रूप मे उसे उसी प्रकार देखा है, जैसे—अपने सामने लगे वृक्षो को देख रहा हूँ। भारत का उद्धार इसी पद्धति से होगा। आज देवता भी मुझे इस विश्वास से विरत नही कर सकते।"

वस्तुत अहिंसा का सामर्थ्य असीम है। ससार की जटिल से जटिल समस्या अहिंसा के द्वारा बहुत सुन्दर ढग से सुलझाई जा सकती है और अहिंसा द्वारा युद्ध, अन्याय, अत्याचार का अन्त किया जा सकता है, अब यह विश्वास काल्पनिक नही रहा। दलित व शोषित वर्ग उन्नति का अवसर पा सकते है तो वह अहिंसा के अभियान से ही। किन्तु आवश्यकता है इसे जीवन मे सक्रिय रूप देने की। अहिंसा—नीति या पालिसी की वस्तु नही है, आचरण मे लाने की वस्तु है। डाक्टर बेणीप्रसादके विचारो मे-"सबसे ऊँचा आदर्श जिसकी कल्पना मानवीय मस्तिष्क कर सकता है, अहिंसा है, अहिंसा के सिद्धान्त का जितना व्यवहार किया जाएगा उतनी ही मात्रा मे सुख-शान्ति विश्व-मण्डल मे बढ़ेगी। लौकिक जीवन मे सुख-शान्ति के

लिए आन्तरिक सामजस्य की बडी आवश्यकता है, जो अहिंसा से ही सम्भव है।"

साराश—यदि आज के राजनीतिज्ञ, अहिंसा के मूल-मन्त्र को समझ ले तथा उनके मस्तिष्क मे अहिंसात्मक प्रवृत्तियो पर दृढ आस्था जग जाए तो निश्चय ही विश्व मे शान्ति की सौरभ महक उठेगी।

प्रस्तुत पुस्तक के

टिप्पण में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची

१ उत्तराध्ययन सूत्र
२ आचाराङ्ग सूत्र
३ प्रश्नव्याकरण सूत्र
४ दशवैकालिक सूत्र
५ सूत्रकृताङ्ग सूत्र
६. दशवैकालिक चूर्णि
७. ओघनिर्युक्ति
८. भगवती सूत्र
९ तत्त्वार्थसूत्र
१०. प्रश्नव्याकरणवृत्ति
११ आवश्यक निर्युक्ति
१२. महाभारत
१३ मनुस्मति
१४. महापुराण
१५ ऋग्वेद
१६. षड्दर्शनसमुच्चय
१७ औपपातिक सूत्र
१८ धम्मपद
१९ बौद्ध धर्म क्या कहता है ?—कृष्णदत्त भट्ट
२०. जैन धर्म क्या कहता है ? ,,
२१ वैदिक धर्म क्या कहता है ? ,,
२२ पारसी धर्म क्या कहता है ? ,,

२३ ईसाई धर्म क्या कहता है ? ,,
२४ इस्लाम धर्म क्या कहता है ? ,,
२५ यहूदी धर्म क्या कहता है ? ,,
२६ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति
२७ दर्शन और चिन्तन—पण्डित सुखलालजी
२८ दीघनिकाय (महापरिनिव्वाण सुत्त)
२६ गाथा
३० मत्ती
३१ लूका
३२ मानव-भोज्य-मीमासा
३३ ऋषभदेव एक परिशीलन—देवेन्द्र मुनि, शास्त्री
३४ आधुनिक विज्ञान और अहिंसा—गणेश मुनि, शास्त्री
३५ क्राइस्टनु -अनुकरण
३६ सिफरा लैक
३७. तोरा
३८. नीति
३६ ता० सनहेद्रिन
४० ताओ-तेह्-किंग
४१ श्री यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ
४२ अहिंसा के आचार और विचार का विकास—प० सुखलालजी
४३ भारतीय सस्कृति—सानेगुरुजी
४४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र
४५ उच्चतर माध्यमिक अर्थशास्त्र —प्रो० सत्यदेव
४६ गुरुदेव श्री रत्न मुनि स्मृति-ग्रन्थ,
४७ महावीर सिद्धान्त और उपदेश —उपाध्याय अमर मुनि
४८ फाहियान
४६ प्राचीन भारत वर्ष की सभ्यता का इतिहास
५० अहिंसा तत्त्व-दर्शन —उपाध्याय अमर मुनि
५१ कुरान
५२ आर्दविरफ
५३ मांसाहार-विचार
५४ आरोग्य साधन, गाधी जी

५५ आप्तमीमासा
५६ भारतीय दर्शन
५७ तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ
५८ पारमाणविक विभीपिका—विक्रमादित्य सिंह
५६. अणुयुग और हम —दिलीप
६० गाधी और विश्वशान्ति —देवीदत्त शर्मा
६१ भारतवर्ष का इतिहास, —जी० टी० ह्वीलर
६२ प्रेरणा-प्रवाह —आचार्य विनोबा
६३ शुक्ल यजुर्वेद
६४ त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र
६५ पद्म पुराण
६६ अहिंसा दर्शन —उपाध्याय अमर मुनि
६७ मुद्राराक्षस नाटकम्
६८ अणु से पूर्ण की ओर —मुनि नगराज
६६ अहिंसा के अचल मे
७० अपरिग्रह दर्शन —उपाध्याय अमर मुनि
७१ श्रमण —बनारस
७२ अमरभारती —आगरा
७३ दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली ७ अगस्त १६६३
७४ विचार रेखा —गणेश मुनि शास्त्री
७५. नवभारत टाइम्स, आदि समाचार पत्र।